प्रवचनों में गुरुदेव

1. गुरुदेव का पूर्व जन्मों का स्वाध्याय

वास्तव में तो कर्मो के अनुकूल वेदों का उच्चारण उस प्रकार नहीं किया जाता, जिस प्रकार वेदों का स्वाध्याय किया और जो हमारी धुन थी। उस धुनि से हम वेदों का पाठ कदापि नहीं करते। परन्तु ऐसा कहा है कि वेदों में हमारे विद्वानों ने और हमारे आदि आचार्यो ने भी, न करने से कुछ उच्चारण करना भी विशेष माना गया है। जैसा भी काल आये उसके अनुकूल ही वाणी से उच्चारण होना अनिवार्य हो जाता है। ०७.०३.१९६२

2. उच्चारण का कारण

जैसा हमने पूर्व काल में देखा है उसके अनुकूल अवश्य उच्चारण करेंगे। हम तो इस संसार को लाखों वर्षो से देखते चले आ रहे है। परन्तु यह उस काल की वार्ता है जिस काल में राम राज्य की स्थापना हो रही थी। ०७.०३.१९६२

3. प्रवचनों की यथार्थता

आपके व्याख्यान तो यथार्थ होते है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु भगवन्! आधुनिक काल में ऐसे व्यक्ति है जो नाना प्रकार की विद्याओं को न तो अच्छी प्रकार जानते है और न वेदों का स्वाध्याय ही करते है, उनके हृदय में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ, नाना प्रकार की अशुद्धियां रहती है इसीलिए उनका निर्णय करना आपका कर्तव्य है।

महानन्द जी! जिसके द्वारा यथार्थता न हो, जो यथार्थ कार्यो को भी यथार्थ न मान रहा हो, वह मानव कदापि नहीं मानेगा। वह तो अन्धकार में पहुँचा हुआ है। ०७.०३.१९६२

4. कृष्ण काल के दर्शन

महाराजा कृष्ण के द्वापर काल तक को तो हमने देखा है। आपत्तिकाल होने के नाते हमें प्रतीत नहीं, इस कलियुग में क्या हुआ, क्या न हुआ। ०८.०३.१९६२

5. कर्म गति

आज कर्म गति इतनी महान मानी गई है कि जो कर्म हमने लाखों वर्ष पूर्व किया, आज हम उसको भोग रहे है, यह हमारे कर्मो का भोग है। ०८.०३.१९६२

6. प्रवचनों की वार्ता का आधार

हमारे समक्ष बहुत सी वार्ता आ जाती है क्या करें उस काल को देखा है, काल के अनुकूल व्याख्यान हमारे कण्ठ आ जाते है। ०९.०३.१९६२

7. महर्षि श्रृङ्गी का पूर्व जीवन

महर्षि श्रृङ्गी ऋषि महाराज ने ८४ वर्ष तक मिथ्या का कोई भी वाक्य उच्चारण नहीं किया, जो कहा करते थे, वही यथार्थ हुआ करता था। यदि किसी मनुष्य को यह कह दिया कि मृत्यु को प्राप्त हो जा, तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। १९.०३.१९६२

8. गुरुदेव का लाखों वर्षो पूर्व का कर्म, स्मृति की अमूल्यता

महानन्द जी दूर न जाओ, आज हमारे जीवन पर विचार कर लो। आज से हमने लाखों वर्षो पूर्व उन संहिताओं का पाठ किया और आज पुनः से अपने कर्मो के अनुकूल तुम्हारे समक्ष, उस वेद पाठ को कर रहे है। आज हमें पुनः से सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। यह जो वार्ता तुम्हारे समक्ष आती चली जा रही है यह लाखों वर्ष पूर्व हमने वेदों का मंथन किया है। यह सब क्या है? यह सब अमूल्यता स्मृति की है। जन्म जन्मान्तरों के संस्कार हमारे अन्तःकरण में विराजमान रहते है, उनके जागृत होने का नाम स्मृति है। १२-३-१९६२,

9. गुरुदेव की विनीतता

आज हम सभी महानजनों से क्षमा चाहते है आज एक वेद मन्त्र अशुद्ध उच्चारण हो गया, हमें इसमें कोई विरोध नहीं। महानन्द जी ने जैसा कहा हमने वैसा स्वीकार कर लिया और उस मन्त्र को द्वितीय उच्चारण कर दिया। १२-३-१९६२,

10. गुरुदेव में ज्ञान का समुद्र

गुरुजी के द्वारा ज्ञान का समुद्र है। १२.३.१९६२

11. संस्कारों की गति

हमारी स्थिति को जान करके तुम्हें यह जानना ही होगा कि ये जन्म जन्मान्तरों के संस्कार मानव को कहा तक ले जाते है। ०१.०४.१९६२

12. गुरु ब्रह्मा का आह्वान

हम पूर्व की भांति वेदों का पाठ अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते। परन्तु हमारे गुरु ब्रह्मा जी ने बहुत पूर्वकाल में कहा था, वेद पाठ न करने से कुछ करना भी सुन्दर होता है। ०२.०४.१९६२

13. गुरुदेव के प्रवचनों का आधार

हम जो कुछ व्याख्यान करते है उसकी रूपरेखा परमात्मा के दिये उपदेश वेद मन्त्रों से ही लेकर कुछ व्याख्यान कर पाते है।

14. त्रेताकाल का साक्षात दर्शन

हमने उस त्रेताकाल को देखा है, जिस काल में महाराजा शिव और माता पार्वती थे। यह त्रेताकाल का समय कंठ आ गया। ०२.०४.१९६२

15. प्रवचनों में पुनरुक्ति

अभी-अभी महानन्द जी अपने प्रश्न के समय में कह रहे थे कि हम किसी-किसी काल में किसी वार्ता को द्वितीय बार उच्चारण कर देते है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम आपत्ति काल में है। इसीलिए बिना इच्छा के भी यह हो ही जाता है। आपत्ति काल वश इस पर नियन्त्रण नहीं हो पाता अन्यथा हमारे द्वारा किसी वार्ता

के बार-बार प्रकाश होने का कोई कारण नहीं। ०२.०४.१९६२,

16. प्रवचनों का प्रभाव

हमने पूर्व काल में बहुत सी निधियों को पाया। वे आज सूक्ष्म होती जा रही है, उन निधियों से अब हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पा रहा है। अब तो केवल वह महान शब्द रूप में अन्तरिक्ष में विराजमान है। अन्तरिक्ष को ही वह शुद्ध बना रहा है। २-४-१९६२

17. गुरुदेव का लाभ प्राप्त करने का आह्वान

हमसे भी जितना लाभ प्राप्त कर सकते हो, उतना लाभ प्राप्त कर लो। क्योंकि महाराजा राम और महाराजा कृष्ण आदि की तरह हम सबको भी इस संसार से एक न एक दिन चल ही देना है। हमारा भी समय निकट आ रहा हैं। प्रलयकाल में जैसे सूर्य समाप्त हो जाता है वैसे ही हमारा भी अन्त हो जाना है। इसीलिये बेटा! जितने तुम्हारे प्रश्न है, जितनी तुम्हारी जिज्ञासाएं हो, वे सब पूर्ण करो। जीवन का समय सूक्ष्म रह गया है, उसी सूक्ष्म समय में समाप्त हो जाएंगे। यह आत्मा अपने लोक को चला जाएगा। यह आत्मा उस स्थान पर पहुँच जाएगा। जहाँ से यह आया था। ०३.०४.१९६२

18. द्वापर काल का साक्षात दर्शन

जो तुम उच्चारण कर रहे हो उस सबको हम मान लेते यदि हम स्वयं द्वापर काल को नहीं देखते। ०१.०३.१९६२

19. योगी द्वारा मस्तिष्क बोध

एक आयुर्वेद नाम की विधा है जिससे योगी मस्तिष्क को देखकर जान लेता है कि इस काल में उसकी मृत्यु होगी। जो योगी सत्य का पालन करता है उसका वाक्य सत्य हुआ करता है। योगी उसको शाप देता है, जो कोई ज्ञानी होकर भी दूसरों को दुखित करता है, जानता हुआ भी दूसरों को कष्ट दिया करता है और जो अज्ञानता वश, अज्ञानी होने के कारण, किसी को कष्ट देता है उसको शाप देता है, तो शाप देने वाले की महानता नष्ट हो जाती है, उसकी यौगिकता समाप्त हो जाती है। ०६.०४.१९६२

20. पूर्व काल का दर्शन

हमने अभी द्वापर और त्रेता का समय और उस काल की महानता का वर्णन किया है। ०६.०४.१९६२

21. पूर्व जन्मों का संस्कार

पूज्य महानन्द जी: जिज्ञासु या शिष्य का पूर्व जन्मों का संस्कार होता है, जो ऐसे महान गुरु हमारे समक्ष अपने महान विचारों को नियुक्त किया करते है और हमारी आत्मा तृप्त किया करते है। १५.०५.१९६२

22. पूज्य महानन्द जी सूक्ष्म शरीर से भ्रमण

हम नित्य प्रति मृत मण्डल में भ्रमण किया करते है अन्तरिक्ष में रमण करते है गुरु जी के समक्ष जब आना चाहते है, तो उस समय अन्तरिक्ष में, वायु के समक्ष, बहुत से विद्वत समाज को आकर्षित कर लेते है। आज यह एक आश्चर्यजनक वाक्य हो रहा है। यह कोई नवीन वाक्य नहीं, यह तो हमारे गुरु जी का, न प्रति पूर्व जन्म का कौन-सा अभागा समय बन गया है, जो विद्वत समाज में ऐसा होना पड़ रहा है। यदि वह पूर्व की भाँति विद्वत समाज में होते या वह विद्वत समाज इनका होता, तो आज इनकी यह स्थिति ही क्यों होती? यह बड़ा खेद का वाक्य है। वास्तव में हमारे वाक्य जहाँ मृत मण्डल में जा रहे है वहाँ के मानव के लिए यह महान बड़ा आश्चर्यजनक एक वाक्य बन रहा है। आधुनिक काल के व्यक्ति, विद्वत समाज कहता है कि यह कोई वाक्य नहीं परन्तु यह महान हमारे गुरु जी का जो मनोहर शरीर है जिसके द्वारा हमारी यह आकाशवाणी जा रही है यह बालक जो अपनी सुषुप्ति अवस्था में वेदों का व्याख्यान दे रहा है यह वेदों का वाक्य नहीं है। १५.०५.१९६२

23. वाक्यों के अशुद्ध होने का कारण

हमारे गुरु जी विद्वत समाज में जो वाक्य उच्चारण किया करते है वह सब यथार्थ है। परन्तु यह जो शरीर है, उस वाणी में अभौतिक शक्ति के कारण, यह वाक्य जाते जाते अशुद्ध हो जाते है। वाक्यों का अद्भुत रूप बन जाता है। १५.०५.१९६२

24. महानन्द जी का उद्बोधन क्यों

न प्रतीत यह महानन्द जी का आत्मा कैसे बोलता है? एक शरीर में दो आत्माये कैसे आ जाती है?

अन्तरिक्ष में सूक्ष्म शरीर द्वारा महान आत्माओं से विनोद होता है। यह जो आत्मा हमारे गुरु जी के शरीर में विराजमान हो रहा है, जो आज संसार में अज्ञानी बनी बैठी है, पुनरुक्ति होती है और उस सूक्ष्म शरीर वाले विद्वत मण्डल में जाकर यह ज्ञान प्रबल हो जाता हैऔर इनके पार्थिव शरीर द्वारा गुरु जी के और हमारे व्याख्यानों का इस मृतमण्डल में प्रसार हो रहा है। १५.०५.१९६२

25. पिता विभाण्डक का संकल्प

हमारे गुरुजी के पिता विभाण्डक ऋषि ने यह सोचा कि मैं अपने बालक को ब्रह्मचारी बनाऊंगा। उसी बालक की आत्मा का आज मृत मण्डल में प्रसार हो रहा है। जिसे १७८ वर्ष तक देव कन्या का ज्ञान भी नहीं था, आज यह बालक बना बैठा है। १५.०५.१९६२

26. वार्ता का उच्चारण

हमारा भाग्य है, दुर्भाग्य है कि ऐसे काल में ऐसी वार्ता ये वाक्य प्रकट हो रहे है। हम कहा तक इस वाक्य को उच्चारण करें। १५.०५.१९६२

पूज्य महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर द्वारा गुरुदेव का वर्तमान अवलोकन

हम अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा देखा करते है कि गुरुजी का आत्मा आज ऐसा पात्र बना बैठा है। यह भी पूर्व जन्मों का एक महान विशेषण है आज इस अवस्था में गुरुजी का जो मृत लोकी शरीर है महान, मूर्ख बना बैठा है। आत्मा का, परमात्मा का, ऐसा ही विधान है। हमें बड़ा आश्चर्य आता है कि आधुनिक काल में, ऐसा जीवन कैसे व्यतीत हो रहा है, ऐसा मधु वाक्य कैसे उच्चारण हो रहा है। बड़ा आश्चर्यजनक वाक्य है। पूज्य महानन्द जी। १५.०५.१९६२

27. गुरुदेव का पूर्व काल का जीवन

आज हम अपने गुरु जी के जीवन पर दृष्टि पहुँचाते है उनका जीवन इतना महत्त्वपूर्ण था कि उन्होंने तार्किक बुद्धि में अपने जीवन को ऐसा बनाया कि तार्किक बुद्धि में सोलह प्रकार की बुद्धि का विचार किया। इसके पश्चात विचार आया कि तार्किक बुद्धि में कोई महत्त्वता नहीं। उस समय गम्भीरता आई। गम्भीरता आकर के हमारे गुरु जी का जिस काल में मृत मण्डलों में आकाशवाणी जा रही है, बालक मात्र पुकारा जाता है, उस बालक ने पूर्व जन्मों में ७१, ७१ वर्ष तक निद्रा को जीतने वाले कहलाये गये हैं। परन्तु आज हम क्या उच्चारण करें? यह तो दुर्भाग्य है। हमारा भी कोई दुर्भाग्य है। गुरु जी का तो है ही कि ऐसे काल में आ पहुँचे और गुरुजी के आपत्ति काल में सहायता देनी पड़ रही है। १५.०५.१९६२

28. कर्म का प्रभाव

परन्तु क्या करें, इतने महान दुर्भागी बने बैठे है। विधाता! यह आपका तो कोई दोष नहीं, हमारे कर्मो का ही दोष है जो आपके आंगन में नहीं आ रहे है। अभागे इसलिये है कि आपके नियन्त्रण में कार्य नहीं करते। १२.०७.१९६२

29. गुरुदेव का पूर्व जीवन

समय था, जब था, अब क्या है। वह काल ऐसा था, जिस काल में ऋषियों का समूह, ऋषियों का मण्डल विराजमान होता था और जब जटा पाठ में, मधु पाठ किया जाता था। तो बेटा! मार्ग में पक्षिगण भी शान्त हो जाते थे, सिंह तक आकर विराजमान हो जाते थे और मधु पाठ को पाते थे। १२.०७.१९६२

30. गुरुदेव का भोग

यह तो केवल हमारे किये हुए कर्मो का भोग है। परमपिता परमात्मा या गुरुदेव ने जैसी भी कृपा की है आज हम उन भोगों को भोग रहे है। १६.०७.१९६२

31. गुरुदेव के प्रवचन कैसे

हमारा जो शरीर है, जिसे महानन्द जी मृत लोकी शरीर कहा करते है और जिसके द्वारा हमारी आकाशवाणी मृतमण्डल में जा रही है। वह शरीर तो शैय्या पर आश्वस्त हो जाता है, उसकी अनुभूत अवस्था आ करके, आत्मा का महान संकल्प, जो आत्मा का संस्कार, अन्तःकरण में विराजमान है वह समक्ष आ जाता है और अज्ञानता का जो कारण वशीभूत एक महान दर्पण है, वह समाप्त हो जाता है। इन्द्रियाँ शांतचित हो जाती है। कुछ इन्द्रियाँ जैसे रसना है, वाक् है और अमृति इन्द्रियाँ है वे अपना कार्य प्रारम्भ कर देती है और वही आत्मा का संकल्प का, आह्वान जो पूर्व के जन्मों के संस्कार है, उसका सम्बन्ध अन्तरिक्ष में, सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से लग करके, यह वाणी मृत-लोकी शरीर द्वारा मृत-मण्डल में प्रविष्ट हो रही है। १६.०७.१९६२

32. सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं की वाणी गुरुदेव के शरीर से

आज सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं की वाणी, जिनके महान संकल्प है वे हमारे द्वारा प्रकट की जा रही है। १६.०७.१९६२

33. मूढ़ता

अरे! जो इतनी महान आत्मा है, जो आध्यात्मिकता का इतना प्रसार कर रही है और हम उसकी आत्मा को प्रेत-योनि कहें, यह हमारी कितनी मूढ़ता है। १६.०७.१९६२

34. प्रवचनों से अन्तरिक्ष और वायुमण्डल की शुद्धता

हमारे शब्दार्थ अन्तरिक्ष में रमण कर रहे है। इन वेदों के व्याख्यानों से अन्तरिक्ष भी शुद्ध बन जाता है। वायुमण्डल भी शुद्ध हो जाएगा। १७.०७.१९६२

35. वेदों उच्चारण से अन्तरिक्ष शुद्धि

क्या वेदों के पाठ आदि करने से अन्तरिक्ष शुद्ध हो जायेगा? इस विषय में हमारे गुरु जी ने कहा था कि मानव को सत्य से शुद्ध कार्य करना चाहिए। जब मानव सत्य पर आश्रित होकर, शुद्ध कार्य करता है तब सत्य से पवित्र वाणी, न जाने किन-किन आत्माओं का उत्थान कर देती है। इसलिए मानव को किसी प्रकार से, किसी भी रूप में, मिथ्या व्यवहारी तथा असत्यवादी नहीं बनना चाहिए।

हे परमात्मा! हे विधाता! इच्छा तो ऐसी होती है कि आपके अंक में पहुँचकर, व्याकुल, होकर अपने शरीर को ऐसा बना दें, कि आपके आश्वासनों में जाकर मनोहर बन जाए। १७.०७.१९६२

36. गुरुदेव की शास्त्रार्थ चुनौती

यदि किसी को शास्त्रार्थ करना है, तो वह अपनी आत्मा को इतना बलिष्ठ बनाये, कि हमारे सूक्ष्म-शरीर की आत्मा में आकर, शास्त्रार्थ करने के लिए नियुक्त हो जाये। २२.०८.१९६२

37. पूज्य महानन्द जी के प्रश्न से गुरुदेव के उत्तर

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवान! गुरु जी, आज तो आपके वाक्य बड़े ही महत्त्वपूर्ण रहे। किसी काल में आपका हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। आप हमारे प्रश्नों का उत्तर तो भली भाँति दे रहे हो। भगवन! यदि हम प्रश्न न करें, तो आप इन वाक्यों को उच्चारण नहीं करोगे। यह भी हमारे प्रश्नों का प्रताप है।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य... चलो, बेटा! सब कुछ तुम्हारा ही प्रताप है। हमें इसमें बड़ी शान्ति है। कि सर्वज्ञ तुम्हारा ही प्रताप हो रहा है, जिससे ऐसे महान विषय

चल देते है।

पूज्य महानन्द जीः तब ही तो कहते है भगवन!।

पूज्य महानन्द जीः धन्यवाद। २२.०८.१९६२

38. पूज्य महानन्द जी के प्रश्न

यह महानन्द प्रश्न करता ही रहता है, शान्त नहीं रहता। किसी, किसी समय यह अशुद्ध वायु का आहार कर लेते है। जिससे इनके वाक्यों में रस नहीं रहता और यह प्रश्न करते ही चले जाते है। २२.०८.१९६२

39. द्वापर में पूज्य महानन्द जी व गुरुदेव

द्वापर के काल की एक वार्ता हमारे कण्ठ आ गई है। महानन्द जी तुमने द्वापर काल को देखा होगा। ०६.११.१९६२

40. यौगिक क्रिया

यौगिक क्रिया में जब यह आत्मा प्राणों के सहित कुम्भक और रेचक। ०६.११.१९६२

41. महानन्द जी की आत्मा की वार्ता कैसे?

यह साधारण कोटि के विद्वानों के आंगन में आने वाला वाक्य नहीं है यह उच्च कोटि का योगी ही जान सकता है कि यह आत्मा कैसे बोल रहा है। ०९.१२.१९६२

42. योगी की गतिविधि

योगी अपने शरीर की प्रत्येक क्रियाओं को जानकर, महान विचित्र बन जाते है। शरीर के तीनों रूपों को अर्थात स्थूल, सूक्ष्म और कारण को जाने वाले होते है। योगी, धारणा, ध्यान व समाधि द्वारा मन को इतना शान्तिमय कर लेते है, कि यह तन्मात्राएं सब मन में लय हो जाती है। मन, बुद्धि में लय हो जाता है। बुद्धि, अन्तःकरण में लय हो जाती है। ज्ञान व कर्म इन्द्रियों के जितने विषय है वह सब अन्तःकरण में लय हो जाते। इन सबका समूह बनाकर, यह आत्मा इन सबके ऊपर सवार हो जाता है। और जब इसकी इच्छा होती है तो स्थूल शरीर को त्यागा और सूक्ष्म शरीर द्वारा जहाँ इच्छा हुई भ्रमण कर आया। इसी प्रकार एक योगी की आत्मा, दूसरे योगी की आत्मा से सम्बन्ध करने आ पहुँचती है परन्तु कुछ काल के लिए। ०९.१२.१९६२

43. प्रवचन में दो आत्माएं

इसी प्रकार हमारा या महानन्द जी का आत्मा है और भी ऋषियों की आत्मा है। जिन्होंने उस आध्यात्मिक विज्ञान को जाना है। वह जानते है कि आत्माओं का कैसा संगठन होता है। उनकी वाणी कहाँ की कहाँ चली जाती है। आपत्तिकाल होने के कारण, यह शरीर एक प्रकार का यन्त्र बनाया गया है। सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं का, एक महान संत्सग रूप हो करके, उसकी वाणी, हमारे शरीर द्वारा आने लगता है। एक शरीर में दो आत्माएँ नहीं, परन्तु आत्मा का उत्थान हो करके, सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से सत्संग हो जाता है। उस सत्संग की वाणी, हमारे शरीर द्वारा मृत मण्डल में प्रकट होने लगती है, जैसा भोग वश हमें भोगना है। ०९.१२.१९६२

44. गुरुदेव के भोग के कारण आपत्तिकाल

यदि आज परमात्मा, परम गुरुदेव, ऐसा आपत्तिकाल न देते, स्वतः ही जन्म धारण करा देते और ज्ञान इसी प्रकार का प्रकट रहता, तो हम इन सभी क्रियाओं को तुम्हारे समझ नियुक्त कर देते। आज क्या बनता है? कुछ नही। अपने भोगों को भोग रहे है। इन्हें भोगकर हम भी चले जाऐंगे। हम भी उच्चारण ही उच्चारण करके चले जायेंगे। समय की प्रबलता है, आज कुछ नहीं कहा जा रहा है। ०९.१२.१९६२

45. गुरुदेव के लाखों वर्षो पूर्व कर्म का भोग

आज हमारे जीवन को देख रहे होंगे। न प्रति लाखों वर्षो का पाप, आज भोगना पड़ रहा है, यह सब मानव के कर्मो का भोग है। २७.०६.१९६३

46. सतयुग में पूज्य महानन्द जी

महानन्द जी! तुमने सतोयुग के समय को देखा होगा। परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से हमें भी सतोयुग के मनुष्यों को देखने का सौभाग्य मिला। जहाँ ऋषि मुनियों की ऊँची प्रणाली थी। वहाँ कुछ उच्चारण करने का, कुछ सौभाग्य भी मिला। परन्तु, अब भी लाखों वर्षो का किया हुआ, पाप भोगा जा रहा है। २७.०६.१९६३

47. कर्म का भोग

मैंने कई लाख वर्ष पूर्व, यह कर्म किया था, जो आज भोगा जा रहा है। यह सब कुछ क्या है? यह सब कुछ अपने-अपने कर्मो के संस्कार और भोग है। २७.०६.१९६३

48. कर्म भोग के लिए संसार

मैंने परमपिता परमात्मा की कृपा से, उस समय को देखा है, जिस समय मेरी प्यारी माताओं का अन्तःकरण पुकार कर कहता था, मानव का अन्तःकरण पुकार कर कहता था। कि हम संसार में अपने भोगों को भोगने के लिये आये है। हमें ऐसा कार्य नहीं करना कि भोग ही हमें भोग लें। २०.१०.१९६३

49. कर्म के प्रति क्षमा भाव

हे प्रभु! हम कैसे अभागे है, संसार में। मैं तो भगवन! वह कर्म करना चाहता हूँ जिस कर्म को करके, प्रभु! मैं तुम्हारी गोद में आ जाऊं। भगवन्! मैंने आज से पूर्व काल में जो पाप किया है, उसे क्षमा करो। आज मैं क्षमा चाहता हूँ। प्रभु! तू आज मुझे अपना और अपनाकर अपनी गोद में ले। ०७.११.१९६३

50. आत्मा निर्मल और पवित्र

जब हमारा आत्मा निर्मल और पवित्र हो जायेगा, तो उस समय परमात्मा स्वयं अपने इस प्यारे पुत्र आत्मा को अवश्य अपना लेगा। जब यह आत्मा निर्मल, पवित्र और दुर्गुणों से रहित हो जायेगा तो वह परमात्मा इस आत्मा को अवश्य, अपनी गोद में धारण करेगा। अपनायेगा उसी काल में, जब हम उस प्रभु की आज्ञा में कर्म करेंगे। ०७.११.१९६३

51. कजली वनों में याग

आज से बहुत पूर्वकाल हुआ, जब हमें कुछ यज्ञ कराने का सौभाग्य मिला। उस काल में, जब कजली वन में रमण किया करते थे। ०७.११.१९६३

52. प्रवचन में प्रेरणा

मुझे आज से बहुत पूर्व काल में, ऋषियों ने विशेष कर मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रेरणा दी थी। ०८.११.१९६३

53. गुरु ब्रह्मा का शरीर त्याग, सूर्य लोक में गमन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, जिस समय प्राणों को त्यागा था, तो वह यज्ञ-वेदी पर विराजमान थे। उनका हृदय मग्न हो रहा था। मुग्ध होते हुए, उन्होंने अपने प्राणों को त्यागा था। हृदय मुग्ध वाले मनुष्य, यहाँ से जाकर सूर्य लोकों तक पहुँच जाते है और वहाँ भी अपने उसी कर्त्तव्य का पालन करते है। ०८.११.१९६३

54. उच्चारण कर्ता में चरित्र

आज हम दूसरों को तब ही ऊंचा बना सकते है, जब हमारे द्वारा चरित्र होगा। हमारे द्वारा मानवता होगी, हमारे द्वारा ज्ञान रूपी अग्नि होगी। अन्यथा मेरे जैसे यहाँ नाना उच्चारण करके चले गये है। परन्तु यह संसार उसी स्थान पर रहा, जहाँ रहता चला आया है। ०८.११.१९६३

55. गुरुदेव की विनीतता

आज मेरा इतना दुर्भाग्य, कि मैं, उस यज्ञ वेदी पर जाने योग्य नहीं, जिस वेदी पर मुझे जाना है। मैं प्रभु से याचना किया करता हूँ कि हे प्रभु! आपने जो वेदी मुझे पूर्व अपनाने का अवसर दिया था, मैं उस वेदी को पुनः अपना सकूं। ०८.११.१९६३

56. गुरुदेव की प्रार्थना

विधाता! मुझे वह प्रेरणा दे, वह मानवता दे, वह ऋषिता दे जिससे भगवन्! ऋषि बनकर ऊंचे लोकों को चले जाते है। प्रभु! मैं अपने जीवन का कल्याण चाहता हूँ। मैं जिज्ञासु बनना चाहता हूँ। मैं अपनी यज्ञ वेदी पर जाना चाहता हूँ। मैं यज्ञों का प्रेरक हूँ। प्रभु! मैं आप से यज्ञों की प्रेरणा पाता हूँ। हे विधाता! मुझे वह जिज्ञासु बना। मुझे धर्म में विचरने वाला बना, जिससे विधाता! मैं धर्म की स्थापना कर सकूँ, मुझे वह सदाचारी बना, जिससे मैं संसार में ब्रह्मचारी बनने का आदेश देता चला जाऊँ। हे भगवन! मुझे वह ब्रह्मा बना, जिससे मैं इस वर्ण व्यवस्था को स्थिर कर सकूँ। हे विधाता! मैं वह तुच्छ नहीं बनना चाहता। आज मैं ब्रह्मा के योग्य बनना चाहता हूँ। ०८.११.१९६३

57. गुरुदेव के वेद पाठ का प्रभाव

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, जिस समय कजली वन में, वेदपाठ किया करते थे, तो मैं देखा करता था कि उस समय नाना सिंह आ करके, उस वेद वाणी को पान किया करते थे। उस समय वृक्षों पर, पक्षी भी शान्त हो जाते थे, मेरे गुरुदेव की वाणी को पान करने के लिये। ०८.११.१९६३

58. गुरुदेव का उद्बोधन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे एक वाक्य कहा, वह मुझे अब तक कण्ठ है कि यदि तुम्हें अपने जीवन को ऊँचा बनाना है और अपनी मानवता को जानना है, तो तू मानव से दूर जा, तू उन सिंहों में चल, जिनकी उदरपूर्ति भोग योनि है, वे तेरी वेदवाणी को पान करेंगे। तेरे चरणों में ओत-प्रोत होंगे। आज तू वैराग्य की स्थिति को उत्पन्न कर। ०९.११.१९६३

59. गुरुदेव की वाणी मृत मण्डल पर

पूज्य महानन्द जीः मैंने आज से पूर्व कहा था कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा हमारी आकाशवाणी मृतमण्डल में जा रही है। ०९.११.१९६३

60. गुरुदेव का भोग

पूज्य महानन्द जीः मेरे गुरुदेव मुझे समय नहीं देते। इसका सबसे मुख्य कारण यह है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि भोग मेरा है मैं अपने भोग को किसी को नहीं देना चाहता। ०९.११.१९६३

61. गुरुदेव का महत्त्व

पूज्य महानन्द जीः मेरे गुरुदेव तो वह सूर्य है, जिनकी वेदवाणी को कजली वन में, सिंह भी आकर पान किया करते थे। आज मेरे गुरुदेव का वह अभागा समय है, कि आज के संसार का व्यक्ति इन वेद मन्त्रों को कहता है कि यह पाखण्ड है। ०९.११.१९६३

62. संसार की स्थिति

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मुझे कई स्थानों में मधु उच्चारण का आदेश दिया करते है, परन्तु मैं क्या करूँ। जब संसार की स्थिति ऐसी ही है। ०९.११.१९६३

63. संहिता पाठ

आज से पूर्व काल में हमने कहा था, कि इस समय हमारा यजूंष मुनि संहिता का पाठ चल रहा है। अभी कुछ सूक्त रह रहे, इससे पूर्व हमने आंगिरस संहिता का पाठ किया था। यजूंष मुनि महाराज ने इस संहिता में, वेद मन्त्रों को कैसी सुन्दर चुनौती दी है। १३.११.१९६३

श्रृङ्गी ऋषि का कजली वन से अयोध्या

मुझे त्रेताकाल की एक वार्त्ता कंठ आ गई। जिस समय महाराजा श्रृङ्गी ऋषि को कजली वन में से, अयोध्या में पुत्रेष्टि यज्ञ के लिये लाया गया तो। उस समय वे १८८ वर्ष के ब्रह्मचारी थे, परन्तु उन्होंने सबके चरणों को स्पर्श किया। चाहे माता थी, चाहे राजा था, चाहे सेवक था और उच्चारण किया था कि यह तो बड़ा ही सुन्दर देव लोक है। जहाँ ऐसे ऐसे ऊँचे विचार वाले हो, वह परमात्मा को तीन काल में भी शान्त नहीं कर सकते। १३.११.१९६३

64. गुरुदेव का उपदेश

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, योग मुद्रा में जाकर, बहुत सुन्दर उपदेश दिया और कहा कि वास्तव में हम या तो परमात्मा के गर्भ में रहे और यदि स्वर्ग में जाकर रहे तो उस लोक को चाहते है जहाँ मान और अपमान दोनों हों। १३.११.१९६३

65. पूज्य महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर से भ्रमण

पूज्य महानन्द जी: मैं सूक्ष्म शरीर के द्वारा कुछ भ्रमण किया करता हूँ। १४.११.१९६३

66. गुरुदेव की आकाशवाणी, मृत लोक में

पूज्य महानन्द जी: आज मेरी आत्मा बड़ी प्रसन्न है, क्योंकि जिस इन्द्रप्रस्थ भूमि पर, हमारे गुरुदेव की यह आकाशवाणी, मेरे उस गुरुदेव के मृतलोंकी शरीर में से जा रही है उस इन्द्रप्रस्थ भूमि पर चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ की आज पूर्णाहुति हुई। मैं उस यज्ञशाला को देखने पहुँचा और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मैं अपने गुरुदेव की प्रशंसा तो नही करने आया हूं। १४.११.१९६३

67. अभिमान न आए

पूज्य महानन्द जी: मेरे गुरुदेव को, जब परम गुरु ब्रह्मा ने यह स्थिति दी, तो गुरु जी द्वारा एक संकल्प कराया कि हे भगवन! मुझे कही भेजों, कैसा ही शरीर मिल जाये। परन्तु किसी काल में भी मुझमें अभिमानी बनने की आशा न आये। आज मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे पूज्य गुरुदेव के द्वारा अभी तक तो वह स्थिति आई नहीं है। आगे की प्रभु जाने और भगवन के कर्म जाने। १४.११.१९६३

पूज्य महानन्द जी का सामर्थ्य

68. यौगिक क्रिया में जब यह आत्मा प्राणों के सहित कुम्भक और रेचक

मेरे प्यारे महानन्द जी ऐसे विचित्र आत्मा है कि यह यहाँ विराजमान है अह, हम आज्ञा दें, तो लोक लोकान्तरों की क्या प्रत्येक राष्ट्र की वार्ता हमारे समझ नियुक्त कर देंगे, यह स्वतः जान लेते है।

पूज्य महानन्द जी: भगवन! आपने एक समय कहा है कि मैंने इस संसार को द्वापर से पूर्व देखा और उसके पश्चात नहीं देखा। ०१.०४.१९६४

69. पूज्य महानन्द जी के प्रश्नोत्तर से ऋषियों के विचार

मुझे ऋषि महानन्द जी ने एक समय ऐसा भी कहा-परन्तु मुझे इनके प्रश्नों का उत्तरदायी बनते हुए, ऋषियों के विचारों को प्रगट करने का सौभाग्य मिल रहा। ०३.०४.१९६४

70. भगवान कृष्ण और ऋषि श्रृङ्गी

भगवान कृष्ण ने महर्षि श्रृङ्गी नाम के ऋषि के आदेशों का पालन किया। १७.०४.१९६४

71. महानन्द जी के प्रश्न

मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ प्रश्न करते चले जा रहे थे, इनका उत्तर किसी अन्य काल में दिया जायेगा। १७.०४.१९६४

72. महानन्द जी द्वारा आधुनिक काल के राष्ट्र की प्रेरणा

मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी जब आधुनिक काल के राष्ट्र की प्रेरणा देते है। ०१.०४.१९६४

मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज प्रेरणा दी। ०१.०४.१९६४

73. पूर्व काल में स्मरण की गई संहिताओं का पाठ मेधावी बुद्धि से पाठ

आज तुम्हें स्मरण होगा कि हमने आज से बहुत पूर्व काल में, इन संहिताओं का पाठ किया, परन्तु इतने काल के पश्चात भी हमारे स्मरण होती चली जा रही है और तुम्हारे समक्ष इन वेद ऋचाओं और संहिताओं का प्रसार करते चले जा रहे है इसका नाम मेधावी बुद्धि है। मेधावी बुद्धि उस विवेक का नाम है जब मानव संसार से विवेकी होकर, परमात्मा के रचाये हुए तत्त्वों पर विवेकी होकर जाता है। १९.०४.१९६४

74. त्रेताकाल में माता पार्वती के दर्शन

त्रेता के काल में, माता पार्वती, हिमालय के राजा की पुत्री का भी नाम था। मुझे उनको देखने का सौभाग्य मिला। २१.०४.१९६४

75. माताओं को नक्षत्र बोध

पूज्य गुरुदेव से जब मैंने प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि मेरी प्यारी माताओं को नक्षत्रों का ज्ञान होना चाहिए। २१.०४.१९६४

76. महानन्द जी द्वारा गुरुदेव को आधुनिक काल का बोध

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे आधुनिक संसार का वर्णन कराया। २१.०४.१९६४

77. पूर्व वर्षों की विद्या का वर्तमान में प्रसारण

आज जिस विद्या को हमने करोड़ों वर्ष पूर्व पान किया, उस विद्या का गुरु बनकर, शिष्य मण्डल में प्रसार कर रहे है। २२.०४.१९६४

78. पूज्य महानन्द जी की प्रेरणा

ऋषि महानन्द जी से मुझे ऐसा संकेत मिला है। २२.०४.१९६४

मुझे ऋषि महानन्द जी ने निर्णय कराया। २२.०४.१९६४

79. सूक्ष्म शरीर भ्रमण व अवलोकन

पूज्य महानन्द जी: आज जब हम अपने सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे थे, तो सूक्ष्म रूप से हमने कुछ श्रवण किया। २२.०४.१९६४

80. त्रेता काल

मुझे त्रेताकाल को देखने का सौभाग्य मिला है, मुझे नारान्तक को देखने का सौभाग्य मिला। २२.०४.१९६४

मुझे प्रभु की कृपा से नारान्तक और मकरध्वज दोनों के दर्शन करने का अनुपम सौभाग्य मिला है। २२.०४.१९६४

81. गुरुदेव से विद्या बोध

पूज्य महानन्द जी: मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! आज हम उस परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से, गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत हो रहे है। आज ही नहीं, नित्य प्रति गुरुदेव के चरणों में उस विद्या का पान करते है, जिसे हम लाखों वर्षों पूर्व पान किया करते थे। सौभाग्य से वह आज भी प्राप्त होती चली जा रही है। हमारा जीवन कितना सौभाग्यशाली है, जो हम गुरुओं के चरणों में ओत-प्रोत होकर के उस अनुपम विद्या को पान करते है जिसे पान करके देवता बन जाते है। १५.०७.१९६४

82. पूज्य महानन्द जी का कटुता वर्णन

पूज्य महानन्द जी: मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मुझे बार-बार समय प्रदान किया करते है और कहा करते है कि तुम भी कुछ अपनी इस अमृतमय वाणी से, कुछ उच्चारण करते चले जाओ। परन्तु मैंने एक काल में अपने पूज्य गुरुदेव से कहा था कि मेरी वाणी से कुछ कटु अवश्य उच्चारण हो ही जाता है, उसका कारण है कि आधुनिक काल का जो संसार है, वह इस प्रकार का विचित्र है, कि जिसका कोई प्रमाण ही नहीं दिया जा सकता। जैसा मेरे गुरुदेव वर्णन करते चले जा रहे थे, कि आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक भद्र मण्डल अपने उस विज्ञान को जानना चाहता है, जो हमें विनाश के मार्ग पर ले जाता है। आज किसी मनुष्य ने यह नहीं जाना, जब से यह कलियुग का अनुपम प्रभात आया कि किसी काल में मुझे वह कार्य भी करना है, उस विज्ञान को जानना है जिससे चरित्र ऊँचा बने। १५.०७.१९६४

पूज्य महानन्द जी: मैं पान करता रहता हूँ, वायु मण्डल में उन वाक्यों को श्रवण करता रहता हूँ कि सबसे प्रथम संसार में गुरुडम चलता है उसके पश्चात विचारों का आक्रमण होता है। १५.०७.१९६४

83. गुरुदेव की वाणी

पूज्य महानन्द जी: आज इस पवित्र भूमि पर भी, जहाँ पूज्यपाद गुरुदेव की और हमारी आकाशवाणी जा रही है यहाँ भी वेद के मन्त्रों पर नाना प्रकार की चर्चायें हो रही है। १५.०७.१९६४

84. कर्म भोग की अनिवार्यता

पूज्य महानन्द जी: मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूं कि हे गुरुदेव! आप इस शरीर को क्यों नहीं त्याग रहे हो। आपके विचारों को इस प्रकार नष्ट किया जा रहा है। क्यों नहीं, इस शरीर को त्याग करके, उस महान पूर्ण शरीर में आ जाते। परन्तु क्या करें। मेरे पूज्य पूज्यपाद गुरुदेव एक ही वाक्य कहा करते है कि कर्मफलं भोगश्यतताः। जब कर्म फल की चर्चा आती है तो शान्त रह जाते है। १५.०७.१९६४

85. वेद का रहस्य

पूज्य महानन्द जी: आज यह विद्वत मण्डल है और सब ही कुछ जानता है कि आज के वेद मन्त्रों में संक्षेप रूप से क्या था। १९.०७.१९६४

86. योग मुद्रा

कल, मैं योग मुद्रा की चर्चा कर रहा था। मेरे प्यारे महानन्द जी का कथन तो यह है कि आज योग मुद्रा का कोई वाक्य उच्चारण न किया जाये, परन्तु मैं अपने वाक्य को मिथ्या नहीं करना चाहता, मैं अपने उस अमूल्य वचन से मिथ्या नहीं होना चाहता, जो मैंने कल कहा था। योग मुद्रा की सूक्ष्म-सी रूपरेखा अवश्य निर्णय करूंगा। १९.०७.१९६४

87. महानन्द जी की गुरुदेव को उच्चारण में हताशा

मुझे प्रतीत नहीं, आज तुम इस प्रकार क्यों उच्चारण कर रहे हो। आज तक किसी काल में तुमने उच्चारण करने में हताश नहीं किया, परन्तु सहायता दी, परन्तु आज सहायता से दूर चले जा रहे हो। १९.०७.१९६४

88. निद्रावस्था में आत्मा परमात्मा मिलन

निद्रा अवस्था में आत्मा परमात्मा से मिलान करता है और यह प्राण उसी प्रकार रक्षा करने वाले रहते है जैसे जब गृह का स्वामी, किसी अन्य स्थान में रमण करता है तो उसके सेवकों को आज्ञा मिली होती है कि इस गृह की सुरक्षा करना। १९.०७.१९६४

89. प्राणों से शरीर रक्षा

निद्रा अवस्था में जब आत्मा, परमात्मा, सविता देव से मिलान करती है, तो उस समय यह प्राण रक्षा करते है। १९.०७.१९६४

90. प्रवचन समय शरीर की स्थिति

जब यह आत्मा शरीर से पृथक् होता है और तुम जैसी आत्माओं से पुनः की भांति, इस आत्मा का मिलाप होता है तो वह जो प्राण रक्षक है उनका संचार पूर्व जन्मों का जो अभ्यास, हमने किसी काल में किया, उस अभ्यास का आक्रमण जो अनुपम मुद्रा है, उन पांचों प्राणों का आधात, सूक्ष्म प्रादुर्भूत है उनका सम्बन्ध कण्ठ से ऊपर के भाग में ब्रह्मरन्ध्र से लेकर, घ्राण के निचले विभाग कण्ठ तक रहता है। इसीलिये कण्ठ से ऊपर के भाग की कम्पन होती है। १९.०७.१९६४

91. प्रवचन की अनुपम क्रिया

जब योगी-जन इस स्थिति को प्राप्त हो जाता है जो मैंने अभी-अभी वर्णन की अर्थात जिनका सम्बन्ध आत्माओं से मिलान करने का हो जाता है उनका कोई न कोई हृदय स्थल जो प्राण रक्षा कर रहे है, उनका भी कुछ सूक्ष्म भूत है, सूक्ष्म तत्त्व है जिनका सम्बन्ध तन्मात्राओं का सम्बन्ध, मस्तिष्क से, ब्रह्मरन्ध्र से रहता है और ब्रह्मरन्ध्र में महा पंचतत्त्व जिनको पंच तन्मात्रायें कहते है, इनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से, अन्तरिक्ष से मिलान करता हुआ उस यन्त्र का सम्बन्ध, मेधावी और प्रज्ञा बुद्धि दोनों का जब मिलान होता है, तो इस आत्मा का सम्बन्ध, उन महान आत्माओं से हो जाता है और यह जो प्रणश्चति आत्मा है, इसका मिलान वहाँ और वह जो शरीर का कम्पन है यह पूर्व का जो उसका अनुभव है, उन ऋषियों की जो चर्चायें आती है, उनके जैसे हमारे विचार है और इनका तारतम्य उस शरीर से होता है। वह तारतम्य प्राणों के सहित होता है और महान प्राणों के सहित होकर के वाक्य अपना कार्य करता है और प्राणों का जो आधात है, प्राणों से उनका तारतम्य होकर के ब्रह्मरन्ध्र की एक अनुपम गति हो जाती है और गति होने के कारण, वह इस प्रकार की अनुपम क्रिया है। १९.०७.१९६४

आज यदि हमें इस स्थिति को पान करना है तो बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ब्रह्मरन्ध्र में इस आत्मा को रमण कराने को विरधति कहा है। १९.०७.१९६४

92. आत्मा का आत्माओं से मिलन

आत्मा की जो आन्तरिक वृत्ति है, उसका जो मनोहर तारतम्य है, वह किसी भी आत्मा से मिलान हो सकता है उसका तारतम्य यहां भी है और वहां भी है जहां उन विचारों वाला यन्त्र होता है वहां वह यन्त्र उनको धारण कर लेता है। १९.०७.१९६४

93. गुरुदेव और महानन्द जी का तारतम्य

जैसे हमने वायुमण्डल में एक वाणी का प्रसार किया कि अरे, अमुक व्यक्ति; तो वह उस वाणी से बोल पड़ता है, क्योंकि उसका तारतम्य है, वह उस वाणी का सूचक है, क्योंकि उसी के द्वारा उसका प्रसारण हो जाता है। जैसे आज मैंने, प्यारे महानन्द जी को कहा कि अरे! महानन्द! तो महानन्द जी वाणी से कुछ कहेंगे। क्यों कहेंगे? क्योंकि मेरी वाणी का, मेरे हृदय का जो तारतम्य है वह महानन्द जी से है। मेरा जो वाक्य है वह महानन्द जी का सूचक है। मैंने उस वाणी को वायुमण्डल में प्रसारित किया और जहां उस वाणी वाला विराजमान है, उससे वाणी का तारतम्य मिलता है और उसी तारतम्य से वह मनुष्य कहता है, हाँ भगवन, जो आज्ञा हो। १९.०७.१९६४

94. गुरुदेव की आत्मा का सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान

हमारी आत्मा का जो तारतम्य है वह उन सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से मिलान होता है और मिलान होकर शरीर की कम्पन्न वह अनिवार्य है क्योंकि उस श्रुत में कोई न कोई अग्रणी होता है और अग्रणी होने के नाते उन पर प्राणों का संचालन होने लगता है। संचालन होने के नाते, वह सब कम्पन्न स्वाभाविक हो जाती है। १९.०७.१९६४

95. निद्रा अवस्था में महान जीवन की प्राप्ति

जब हम निद्रा अवस्था से निवृत्त होते है तो उस समय हमें एक महान जीवन प्राप्त हाता है जिसको महा-आनन्द कहते है। १९.०७.१९६४

96. चित एकाग्रता ही योग

चित्त की एकाग्रता करना ही एक अनुपम योग है। इन्द्रियों का सम्बन्ध मन से होता है, मन का चित्त से होता है तो चित्त एक विशाल स्वरूप धारण कर लेता है, चित्त के विस्तार से कई प्रकर की श्रेणियां होती है। १९.०७.१९६४

97. गुरुदेव का भोग रूप आशीर्वाद

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझसे कहा करते है कि आज का संसार, जब मैं मृत लोक के मनुष्यों की भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चाओं को पान करता हूं। तो देखता हूं कि उनके हृदयों में दुर्व्यसन है, वह आपको, कोई ढोंगी कहता है और कोई पाखण्डी कहता है। यह तो मैंने महानन्द जी से पूर्व काल में कहा था कि यह तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का एक अनुपम आशीर्वाद है। और क्यों आशीर्वाद कहा करता हूं? क्योंकि जब सत्यवादी मनुष्यों पर किसी प्रकार का आक्रमण किया जाता है, तो सत्यवादी मनुष्य से किसी काल में कोई पाप हो जाये तो वह भी नष्ट होता रहता है। १९.०७.१९६४

मैंने उस जन्म में पाप किया था और यदि आज का संसार पाखंडी या ढ़ोंगी कहकर नहीं पुकारेगा तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वाक्य मिथ्या हो जायेगा। इसीलिये वाक्य मिथ्या न होने के कारण, आशीर्वाद मानता हूं। परम्परा से मैं इन विचारों को मानता चला आया हूं। १९.०७.१९६४

98. मनुष्य का मानवत्व

जो मनुष्य आपत्तियों से अपने महान विचारों को त्याग देता है, उससे अधिक कोई पापी नहीं होता संसार में। उसका कारण यह है कि यह प्रकृति का आक्रमण है, मनुष्यों के विचारों का आक्रमण है और यदि इन आक्रमणों से मनुष्य अपनी वृत्तियों से हिल गया या उसकी शान्त मुद्रा क्रोध में छा गई। तो उसका मानवत्व कोई महत्त्वदायक नहीं। १९.०७.१९६४

99. भोग को शालीनता से भोगना

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे जो आज से लाखों वर्ष पूर्व आदेश दिया था, उसको भोग रहा हूं और भोगता चला जाऊंगा। जब तक इसकी अवधि है। जो किया

हुआ कर्म है, वह भोगना प्रत्येक मानव को अनिवार्य है और भोगना चाहिये, आनन्दपूर्वक भोगना चाहिये, क्योंकि वह कर्म हमने किया है न करते तो न भोगते। १९.०७.१९६४

जिस प्रकार हम किये हुए कर्मो के फल भोगने में, अपने कर्तव्य का पालन कर रहे है, इसी प्रकार प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या और प्रत्येक ऋषि मण्डल को, राजा महाराजा को अपने अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। १९.०७.१९६४

100. पूज्यपाद का आश्रम

जहां मेरे पूज्यपाद का आश्रम था, वह उस महान वाणी से, विद्या से सुशोभित था जैसे वृक्ष के पुष्प आ जाते है। या फल वाले वृक्ष पर फल आ जाते है और वह वृक्ष फलों से सुशोभित रहता है। इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के सदाचार और सतोगुण से आश्रम परिपूर्ण रहता था, जिससे मृगराज भी उस महानता के इच्छुक रहते थे, पक्षीगण भी शान्त रहते थे, जो कोई मानव चला जाता, तो उसका हृदय भी पवित्र हो जाता है। २७.०९.१९६४

101. अन्तःकरण

अन्तःकरण वह स्थान है, जिसमें मानव के जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते है। २७.०९.१९६४

102. सतोगुणी आत्मा

पूज्य महानन्द जीः जो सतोगुणी आत्मा होती है वह इस शरीर को त्याग करके सौ-सौ वर्ष तक विमुक्त आत्माओं के निकट रमण करती रहती है। जैसे मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी का प्रमाण मिलता है, कि उनकी आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करती रहती है। परन्तु सूक्ष्म शरीर का माध्यम बना करके कर्मफल भोगने के नाते यह सब कुछ हो रहा है। २७.०९.१९६४

103. अन्त:करण में संस्कार

अन्तकरण में जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते है, आज तुम्हें स्मरण होगा, जिन वेद संहिताओं का आज पाठ करते चले जा रहे थे। पिप्पलाद संहिता, आरुणि संहिता यजूंष। मुनि संहिता, वायु मुनि संहिता आदि नाना प्रकार की संहिताओं का आज से लाखों वर्ष पूर्व पाठ किया। परन्तु आज भी करता चला जा रहा था, इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि हमारे अन्तःकरण में जो निधि है, जन्म-जन्मान्तरों का जो लाखों वर्षो का अंकित किया हुआ ज्ञान है, वह कर्मो के वश आज भी उसका प्रसार होता चला जा रहा था। यह हो सकता है कि उस रूप में न होकर के कर्मो के वश, किसी और रूपों में इसका परिवर्तन हो जाता हो। २७.०९.१९६४

104. गम्भीर विषय

कल हम एक ऊंचा गम्भीर विषय इस महान समाज में प्रस्तुत कर रहे थे। उसको जानने के लिये मानव को बहुत तीव्र बुद्धि की आवश्यकता है। १९.०८.१९६२

पूज्य महर्षि लोमशः हमें ऐसा अवसर किसी किसी काल में प्राप्त होता है मेरी बहुत सूक्ष्म-सी तुच्छ बुद्धि है। उस बुद्धि में गुरुजी के आदेशों का पालन करना हमारा कर्तव्य है। १९.०८.१९६२

105. प्रवचनों का गम्भीर ज्ञान

पूज्य महर्षि लोमशः गुरुजी नित्य प्रति महान और गम्भीर विषयों पर पहुंच जाते है, जो हमारे लिये बड़े उपयोगी है, जिनको जानने के लिये मानव के जीवन के जीवन समाप्त हो जाते है, तब भी वह पदार्थ उसके आंगन में नहीं आता। १९.०८.१९६२

106. गुरु जी की स्थिति

पूज्य महर्षि लोमशः गुरुजी तो कुछ देख नहीं रहे, उनका तो आपत्तिकाल है, जिसके कारण वह आधुनिक संसार के विशेषण में कोई आदेश नहीं दे सकते, केवल सुनी हुई वार्ताओं का विश्लेशण कर सकते है, उनमें कुछ प्रकाश दे सकते है। जैसे आधुनिक काल में, इस महान ऋषि भूमि पर जहां हमारी यह आकाशवाणी, गुरुजी के शरीर द्वारा मृत-मण्डल में जा रही है इस पवित्र भूमि पर यवनों का राज्य रहा। १९.०८.१९६२

पूज्य महर्षि लोमशः गुरुजी के शरीर की व्याख्या हम नहीं दे सकते, परन्तु आज यह अवश्य है कि गुरुजी के यौगिक आदेश के अनुकूल आत्माओं का पुनः उत्थान हुआ, अन्तरिक्ष मण्डलों में सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से सम्बन्ध हुआ और व्याख्यान प्रारम्भ हो गये। इन व्याख्यानों के स्वरूप को हम तभी जान सकेंगे, जब हम चन्द्र लोक में, सूर्य लोक में, बृहस्पति लोक, में और नाना लोकों में बिना यन्त्रों के भ्रमण करेंगे। १९.०८.१९६२

107. प्रवचन

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी के कुछ वाक्य, गुरु जी का पुनरात्मा इन सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं में आ पहुंचा, और पूर्व की भांति, वही शिक्षा हमें प्रदान करके चले जाते। १९.०८.१९६२

108. कर्म का भोग अनिवार्य

पूज्य महर्षि लोमशः आज के इस स्वार्थी संसार को जानकर, बड़ा आश्चर्य आ रहा है, कि विधाता ने, गुरु के उन तुच्छ कर्मों ने ऐसे काल में उन्हें जन्म प्रस्तुत किया, परन्तु खेद होने से क्या होता है? मानव, जो कर्म करता है, वह तो भोगना अनिवार्य ही है। १९.०८.१९६२

109. गुरुदेव का पूर्व जीवन

पूज्य महर्षि लोमशः आज का मानव तो कह रहा है, कि राम-राम किया और पाप समाप्त हो गये। राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण कहा और पाप समाप्त हो गये। परन्तु आज मानव को विचारना चाहिए, कि जिस महान आत्मा ने अपने जीवन के सौ-सौ वर्ष, वेद के स्वाध्याय में लगाये और उसका सूक्ष्म-सा तुच्छ कर्म आया, तो

आज यह गति बन गई। १९.०८.१९६२

110. अन्तःकरण में वेद मन्त्र

अन्तःकरण में उस महान वेद मन्त्र को अंकित कर लेते है, तो वह अन्तःकरण में उपजता है और हमारा हृदय विशाल बन जाता है। ०२.१०.१९६४

हमारे कंठ से निचले भाग में, हृदय चक्र होता है। हृदय चक्र में एक सुरित नाम की नाड़ी होती है और सुरित नाम की नाड़ी के द्वारा एक चक्र होता हैं; तुरिण और मिथिरण नाम की नाड़ियों का एक चक्र होता है। उस चक्र में मेधावी बुद्धि का संक्षेप रमण करता है, उसमें वह वेदों की पोथी की पोथी का ज्ञान रमण करने लगता है। उसमें रिघिन्न होता रहता है। जैसा अन्तरिक्ष में वाक्य रमण करते है, जिस विद्या को हमने पान किया है, उसी विद्या से, जो वाक्य हम उच्चारण करना चाहते है, वहीं वाक्य अन्तरिक्ष से आता है। वाक् से सम्बन्ध हो करके, वही वाक्य प्रारम्भ होने लगता है। ०२.१०.१९६४

111. भाषा

जितनी भी संसार में वाणी होती है, इन सब वाणियों का सम्बन्ध, इस संस्कृत से होता है, वाणी कह लो, भाषा कह लो, जितने भी भाष्य होते है, वे सब इस संस्कृत से सम्बन्धित होते है। ०२.१०.१९६४

पुरातन काल से संसार में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के मनुष्य चले आ रहे है, पुरातन काल में ऐसा था, कि जो मनुष्य संस्कृत उच्चारण नहीं कर सकता था, विद्या में इतना पारंगत नहीं था, तो वह देव नागरी का प्रयोग करता था। ०२.१०.१९६४

112. सभी भाषाएँ सदैव रहती हैं।

हमारे यहां परम्परा से यह माना जाता है कि प्रत्येक भाषायें अंकुर रूप से रहती है, रही यह वार्ता कि किसी काल में बुद्धिमान अधिक होते है, ऋषि मुनियों का प्रसार होता है, संस्कृत का प्रभाव हो जाता है। परन्तु वह जो देवनागरी भाषा है, वह भी अंकूर रूपों से रहती है। यदि अंकूर रूप से कोई वाणी न रहे, संसार में कोई व्यक्ति ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ, जिसने नवीन भाषा को संसार में उत्पन्न कर दिया हो। ०२.१०.१९६४

जिस वाणी का भी विकास होता है, उस वाणी का भी अंकुर रूप से, उस संस्कृत से मिलान रहता है। ०२.१०.१९६४

113. देव नागरी

मनुष्य वाणी से वाक्य उच्चारण करता है। जब इस शरीर को त्याग देता है, तो इसका सूक्ष्म रूप हो जाता है। तो कर्म इन्द्रियां इस प्रकार न रहकर, इन इन्द्रियों का जो सूक्ष्म स्वरूप है, वह उस सूक्ष्म शरीर के साथ अवश्य होता है। इसी प्रकार इस देव नागरी का भी सम्बन्ध इस संस्कृत के साथ रहता है। ०२.१०.१९६४

114. अंकुर रूप से देवनागरी

वेदवाणी से जैसी बुद्धि वाला होता है वैसी ही उसकी बुद्धि विकास दायक होती है। जहां राष्ट्र की जैसी वाणी होती है, उन्हीं वेद मन्त्रों से वह उन्हीं का विकास कर लेता है, उसी वाणी का विकास कर लेता है। वह वाणी उसके द्वारा आ करके ओत-प्रोत हो जाती है क्योंकि उसके कंठ से उसका मिलान होता है। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर यह है कि देवनागरी अंकूर रूप से रहती है संसार में। ०२.१०.१९६४

मैंने परम्परा से परमात्मा की अनुपम कृपा से गुरुओं में ओत-प्रोत हो करके संस्कृत को जाना था, जाना तो नहीं था, परन्तु कुछ सूक्ष्म-सा अभ्यास था। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा था कि जैसा चरण होगा, जैसा समाज होगा, जैसा प्रबन्ध होगा, अन्तरिक्ष में वाक्य रमण करते है वहीं वाक्य वाणी द्वारा अंकित हो करके प्रारम्भ होने लगते है। ०२.१०.१९६४

जितनी भाषायें होती है वे सब अंकूर रूपों से रहती है और इनका मिलान उच्च संस्कृत से होता है। ०२.१०.१९६४

115. गुरुदेव! गम्भीर विषय में मत जाओं।

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी! आज का आपका आदेश वास्तव में विचित्र और गम्भीर रहा, इतनी गम्भीरता में आप न पहुंचा करो।

पूज्यपाद गुरुदेवः अरे क्यों?

पूज्य महानन्द जीः भगवन! वाणी प्रसारणं मृत मण्डले वृचति अशति।

पूज्यपाद गुरुदेवः कोई बात नहीं यह तो होता ही रहता है जैसा विषय और जैसा तुम्हारा प्रश्न, उसके अनुकूल वाक्य उच्चारण करना अनिवार्य हो जाता है। ०२.१०.१९६४

116. गुरुदेव की वेद ध्वनि

तो आज कुछ वाक्य उच्चारण करने का समय नहीं, आज तो अपने कर्मो में, उन फलों को, जो किसी समय में किया गया था। भोगा जा रहा है। कोई समय था, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत होता था और जिस समय यह वेद ध्वनि अन्तरिक्ष में रमण करती थी, तो मार्ग में विचरण करने वाले मृगराज भी, इन वेद मन्त्रों को पान किया करते थे। ०३.१०.१९६४

117. गुरुदेव को भगवान शिव के दर्शन

मुझे परमपिता परमात्मा की कृपा से, भगवान शिव के दर्शन करने का सौभाग्य मिला, जो रावण के गुरु कहलाते। राजा हिमाचल की कन्या पार्वती के साथ जिसका संस्कार हुआ था। १८.१०.१९६४

118. गुरुदेव की स्मृति

आज मुझे वह दृश्य स्मरण है, जब यहां भगवान राम, गुरु के चरणों में ओत-प्रोत हो करके उनके चरणों को छुआ करते थे। १८.१०.१९६४

119. गुरुदेव को महर्षि अगस्त्य के दर्शन

मुझे महर्षि अगस्त्य के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। १८.१०.१९६४

परमपिता परमात्मा की कृपा से भगवान राम के दर्शन करने का सौभाग्य भी मिला। १८.१०.१९६४

120. महर्षि पिप्पलाद मुनि के दर्शन

हम नित्य प्रति वेद के अमूल्य ज्ञान का प्रसार किया करते थे। इनको पान करने का सौभाग्य भी मिला। यह वह पिप्पलाद मुनि संहिता है, जिस ऋषि का जीवन संसार में अग्रणी माना जाता है, उनके जीवन में अग्रे था। २०.१०.१९६४

121. वेदों का पाठ

वेद ज्ञान अरबों वर्षों से अधिक हो चुका है, जब से वेदों का ज्ञान ऋषियों की परम्परा से, यहां प्रकाशित हुआ और आज हमें भी पुनः से प्रभु की कृपा से इसे उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। २०.१०.१९६४

122. पूज्य महानन्द जी का विनोद

आज के वेदपाठ ने, मेरे प्यारे महानन्द जी के जो प्रश्न उत्तर थे वह तो समाप्त कर दिये। अब इस मूर्खानन्द की वार्ता उच्चारण कर रहे है कि अब कुछ अहिल्या की विवेचना दे दीजिये। २०.१०.१९६४

123. राम काल के दर्शन

मुझे त्रेता काल को, राम के समय को दृष्टिपात करने का सौभाग्य मिला। २०.१०.१९६४

हमें त्रेता काल को देखने का सौभाग्य मिला है। २२.१०.१९६४

124. पूज्य महानन्द जी द्वारा संसार अवलोकन

पूज्य महानन्द जीः आधुनिक संसार को मैं सूक्ष्म रूप से दृष्टिपात किया करता हूं। २२.१०.१९६४

पूज्यपाद गुरुदेवः आधुनिक काल का प्रतीत नहीं, क्या कहते हैं, तुम्हें ज्ञान होगा। २२.१०.१९६४

125. श्रृंगकेतु संहिता

आज श्रृंगकेतु संहिता का पाठ चल रहा था, यह संहिता बड़ी सुन्दर है, इसमें बड़ी उदारता आती है, पवित्रता आती है। इसमें जब वेदों का पाठ आयेगा, नाड़ी विज्ञान सम्बन्धित आयेगा तो किसी काल में प्रकट करेंगे। २०.१०.१९६४

126. लोमश मुनि

लोमश मुनि उच्चारण कर रहे है, कि गुरु जी मुझे आज्ञा दें, तो कल मैं चन्द्रमा के विषय में व्याख्यान दूंगा। १८.०८.१९६२

127. पूज्य महानन्द जी द्वारा गुरुदेव को वर्तमान का बोध

आधुनिक काल का मुझे विशेष ज्ञान नहीं, परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराया हैं। २४.०४.१९६५

मुझे आज भी महानन्द जी की प्रेरणा है। २४.०४.१९६५

मुझे ऋषि महानन्द जी का संकेत मिलता रहता है। इनका प्रत्येक वाक्य बड़ा महत्त्वपूर्ण होता हैं इन्होंने मुझे आधुनिक काल की चर्चायें कई काल में प्रकट की है। २४.०४.१९६५

128. त्रेता काल की स्मृति

वह समय था जब महाराजा विश्वामित्र थे, वशिष्ठ थे, अरे! शान्ति का पाठ दिया करते थे। मुझे प्रभु की कृपा से वह समय देखने का सौभाग्य मिला। अरे! वह समय कितना उज्ज्वल होता है जहां गुरु होते है। २४.०४.१९६५

मेरे प्यारे महानन्द जी का मुझे एक संकेत मिला। २४.०४.१९६५

129. गुरुदेव को नरान्तक के दर्शन

मुझे तो प्रभु की अनुपम कृपा से राजा रावण के पुत्र अक्षय कुमार के दर्शन करने का सौभाग्य मिला, जो भौतिक विज्ञान से लोकों की गणना किया करते थे। २४.०४.१९६५

130. महानन्द जी की प्रेरणा

महानन्द जी! रही यह वार्ता जैसी तुम्हारी प्रेरणा प्राप्त हो रही है। १६.०७.१९६५

131. महानन्द जी का भय

आज मेरे प्यारे महानन्द जी को कुछ आदेश देना हैं, वास्तव में वेद पाठ तो कुछ यह निर्णय दे रहा था कि कल ही इन्हें समय प्रदान किया जाये, परन्तु क्या करें, महानन्द जी का भी भय है कि यह किसी काल में रूष्ठ न हो जाये। १९.१०.१९६५

132. योगी की भाषा

योगी जिस भी काल की भाषा को लेना चाहता है, उस काल की भाषा को अपने में धारण कर सकता हैं। जैसे महानन्द जी। आज हम वर्तमान में एक वाणी का प्रसारण कर रहे है जहां वेद मन्त्रों का पाठ आता है वह पूर्व की भांति इतना स्पष्ट और इतनी महानता से उच्चारण नहीं होता, परन्तु उसके साथ-साथ, हम केवल देवनागरी का काव्य लेते है वास्तव में यह काव्य भी शुद्ध रूप में नहीं माना जाता है क्योंकि हमारे कुछ कर्मों के वशीभूत जब ऐसी वार्त्ता आती है, तो ऐसा ही

सम्बन्ध इसके समीप आना प्रारम्भ होने लगता है। २४.०४.१९६६

133. महापुरुषों की चर्चा

इस संसार में जितने महापुरुष हुए है, मैं उन सभी को चर्चा प्रगट किया करता हूं। २४.०४.१९६६

134. गुरुदेव द्वारा पुत्रेष्टि याग

मुझे स्मरण आता है। जब राजा दशरथ के यहां पवित्र यज्ञ कर्म हुआ, उस समय तीनों पत्नियों और राजा दशरथ लगभग एक वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। जब यज्ञ का समय हुआ तो ब्रह्मा की आवश्यकता हुई। महर्षि वशिष्ठ से कहा कि प्रभु! यज्ञ का समय हो गया है, यज्ञ आरम्भ कराइये, तो ऋषि बोले मैं तो यज्ञ कर्म कराने का अधिकारी नहीं हूं, जिस विषय को जानता नहीं, उस विषय को ले करके, मैं यज्ञ कर्म करूंगा, तो यह मेरे में सामर्थ्य नहीं। हे राजन्! उस यज्ञ को कराने का अधिकारी, तो महर्षि श्रृङ्गी कहलाते है, उन्हें किन्ही गुणों से, कजली बन से लाइये, जहां उनके पिता की उन्हें संयमी बनाने की धारणा है। उस समय राजा दशरथ उर्वशी आदियों के द्वारा भयंकर वनों से, उस ऋषि आत्मा को लाये, कहा जाता है उस समय वह १८८ वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचारी थे। ११.०७.१९६६

135. महानन्द जी की बात गुरुदेव के समक्ष नियुक्ति

आज पुनः से मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह पवित्र समय दिया, जिसमें मैं अपने हृदय की वेदना अपने गुरु के समझ नियुक्त कर सकूं। आज हमारे यहां वायुमण्डल में जो परमाणु रमण कर रहे है, वह दूषित हो चुके है, वह चिन्ता के परमाणु है। (पूज्य महानन्द जी) ८-७-६६,

गुरुदेव के समय में महानन्द जी के सूक्ष्म विचार गुरुदेव को आपत्ति

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव मुझे किसी-किसी काल में समय दिया करते है, इस सूक्ष्म समय में, अपने जो मौलिक विचार है, जो मैं दृष्टिपात करता रहता हूं, उन्हीं को सारांश रूप में प्रगट कर देता हूं। मैं तो यह कहा करता हूं, कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो यह मृत-लोकी प्रभात शरीर है इसमें पता नहीं कितनी आपत्तियां आयेगी। ०६.०७.१९६६

136. शरीर में आत्माओं का केंद्र

आत्मा की जब यह सुन्दर गति हो जाती है, कि यह ब्रह्मरन्ध्र में, उन वाहक नाड़ियों को जानने वाला बनता है, तो उस समय आत्मा की अव्याहत गति हो जाती है। ब्रह्मरन्ध्र से भी निचले विभाग में रीढ़ के जो मनके होते है, मनकों की ग्रन्थियां खुलती चली जाती है। जिसको हम अभाक चक्र कहते है। जब इसके आंगन में जाते है और रीढ़ की जो अन्तिम ग्रन्थि होती है, वह स्पष्ट हो जाती है। तो उस समय इस यौगिक आत्मा में यह शक्ति हो जाती है, कि वह अपने शरीर को त्याग करके, लोक लोकान्तरों में भ्रमण करके पुनः उस शरीर में आ सकता है। वह भ्रमण भी करता है और उसी के शरीर में आत्माओं का केन्द्र भी हो जाता है। वह अपना ज्ञान और प्रयत्न के साथ संकल्प करता है और उसी से उस सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा के समीप पहुंच जाता है क्योंकि संकल्प शक्ति उसके सहित है। वह अब एक धारण बनाता है, वह जो सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा है, उनसे मेरा सम्बन्ध होना चाहिये। प्राण के आश्रित होकर ज्ञान और प्रयत्न के सहित वह उनसे सम्बन्ध करता है। प्राणों की क्रिया और मन के द्वारा मानव का शरीर जीवित रहता है। परन्तु आत्मा इसमें विराजमान हैं। २९.०७.१९६६

137. पवित्र आत्माओं का अन्तरिक्ष से सम्बन्ध

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी कहा है कि वह जो पवित्र आत्मा है जिसका अन्तरिक्ष में यौगिक आत्माओं से सम्बन्ध होता है वह प्राण संकल्प द्वारा इतना अव्याहत गति वाला होता है, संकल्प मन का होता है जिसको विश्वभान मन कहते है, अब इस मन की एक गति नहीं विश्वमान मन होता है, जो सबसे रमण करने वाला है। मन की विश्वभान गति हो जाने के पश्चात मन और प्राण जिसको ज्ञान और प्रयत्न कहते है। ये दोनों इतने व्यापक है कि यह शरीर से भी कार्य करते है। आत्मा की इतनी प्रबल गति होती है कि आत्मा इन प्राणों पर सवार होकर, आवागमन करता है और आवागमन करके उसी के द्वारा एक यौगिक आत्माओं के सत्संग का अपना माध्यम बना लेती हैं। २९.०७.१९६६

138. ज्ञान प्रयत्न की शक्ति सबसे प्रबल

जो ज्ञान और प्रयत्न दोनों की शक्ति है वह संसार में सबसे प्रबल मानी जाती है क्योंकि संकल्प परमात्मा का होता है। २९.०७.१९६६

139. महानन्द जी की भी विराजमानता

आज मेरे प्यारे महानन्द जी भी विराजमान है वह भी कुछ उदार वाक्य प्रगट करेंगे। १२.११.१९६६

140. गुरुदेव की गम्भीर चर्चा से समय बोध नहीं रहता

पूज्य महानन्द जीः मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई समय से प्रार्थना करता आ रहा था, कि हमें कुछ संक्षिप्त समय प्रदान कीजिये। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव तो ज्ञान के इतने अथाह सागर में चले जाते है, कि यह भान ही नहीं रहता, कि किसी ओर को भी कुछ वाक्य उच्चारण करना है। १२.११.१९६६

141. समाज और राष्ट्र की हानि

न प्रतीत आधुनिक काल में ऐसा ही होता है या नहीं, यह तो महानन्द जी जाने या प्रभु जाने। यदि ऐसा होता है तो यह समाज की और धर्म की एक बड़ी हानि है। १२.११.१९६६

142. महानन्द जी की प्रेरणा

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ प्रेरणा देते चले जा रहे है। १३.११.१९६६

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो आधुनिक काल को दृष्टिपात नहीं करते। १३.११.१९६६

143. महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर द्वारा अवलोकन

पूज्य महानन्द जी: आज मुझे परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से सूक्ष्म शरीर के द्वारा इस पुण्यकर्म, यज्ञ वेदियों पर विराजमान होकर दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। १३.११.१९६६

144. गुरुदेव का विनोद

महानन्द जी ने आज भी समय ले ही लिया। जहां यह उदार वाक्य कह करके फिर कठोरता में चले जाते है। चलो, कोई वाक्य नहीं। हम तो यह कहा ही करते है, कि नम्र बनो और महानन्द जी अब तक नम्र नहीं बने। क्योंकि विचारधारा और संसार का प्रभाव इनके ऊपर आ गया है। जैसा यह आधुनिक काल के समाज का उच्चारण करते है, इन पर प्रभाव आ गया। तो अब मैं यह वाक्य समाप्त कर रहा हूं, विनोद का वाक्य। १३.११.१९६६

145. महानन्द जी द्वारा गुरुदेव की स्तुति

पूज्य महानन्द जी: मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपने कुछ वाक्य प्रकट किया करते है तो बड़ा मग्न होता हूं और कहा करता हूं कि गुरुदेव बड़े ही भोले है यह जो वाक्य प्रकट किया करते है वह वेद से लेते है परन्तु यदि वह संसार के उस वातावरण में पहुंच जाये, तो इन्हें यह प्रतीत हो जाये, कि यह राष्ट्र और समाज कैसे ऊंचा बनेगा और स्वर्गमय होगा। २८.०७.१९६७

146. गुरुदेव के वाक्यों से वायुमण्डल शुद्धि

पूज्य महानन्द जी: वास्तव में मेरे उच्चारण करने से कोई लाभ नहीं, परन्तु मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह वाक्य वायुमण्डल में तो अवश्य जायेंगे और वायुमण्डल में जायेंगे तो वातावरण भी पवित्र बनेगा। मानव के हृदय में तो इन वाक्यों से परिवर्तित होने से रहे, क्योंकि वह इतने परिपक्व हो गये है कि उच्चारण करते है, कि यह सब पाखण्ड है। उनके मस्तिष्क में, मानव समाज में इस प्रकार की वार्ता आ पहुंची है कि वह पाखण्ड शब्द उनके हृदय से जाता ही नहीं, क्योंकि स्वार्थ है। २८.०७.१९६७

147. महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर द्वारा भ्रमण

पूज्य महानन्द जी: भगवन! आज मैंने अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा एक राष्ट्र का भ्रमण किया। वहां इस प्रकार के यन्त्र का निर्माण हुआ है, जो चन्द्रमा के ऊपरले विभाग में भ्रमण करेंगा। २८.०७.१९६७

148. गुरुदेव के वाक्य

पूज्य महानन्द जी: वास्तव में मेरे वाक्यों को जो मृत मण्डल में जा रहे है, वहां कहते होंगे कि यह तो मूर्ख वाले शब्द है। २८.०७.१९६७

149. महानन्द जी के गुरुदेव की टिपण्णी

मेरे प्यारे महानन्द जी का वाक्य तो सुन्दर हुआ, परन्तु कटुता अधिक थी। जब यह अपने बाल्यकाल के आंगन में आ जाते है, तो यह अपनी वाणी पर संयम नहीं कर सकते। २८.०७.१९६७

150. अशुद्धता का महानन्द जी को भोग

मेरे प्यारे महानन्द जी! तुम किसी काल में बहुत अशुद्ध वाक्य उच्चारण कर देते हो। यह जो तुम्हारी अशुद्धता है, यह तुम्हें भोगनी तो होगी ही। २९.०७.१९६७

151. आत्मा की शक्ति कर्मों का भोग

आत्मा में, जिसमें जितनी शक्ति होती है, उसमें उतना ज्ञान होता है और जितनी महानता होती है वह प्रभु के गर्भ में होती है, यह बहुत विचारने वाला वाक्य है, इसको बहुत गम्भीरता से विचारना है। हम तो इतने विचारक नहीं है, और न इतना हमें बोध ही है कि इसको हम अच्छी प्रकार विचार सके। क्या करें, कुछ तो आपत्तिकाल है। गुरु के चरणों में कुछ ज्ञान प्राप्त किया था, वह प्रकट कर देते है। परन्तु अब तो न तो ज्ञान कहीं से आता है, न कहीं जाता है। अब जैसा है जैसे पंच तन्मात्रों में, कर्मों के कारागार में है। इन कर्मों के कारागार की जो गति होती है, वह बड़ी विचित्र होती है। यह प्राणियों को भोगनी ही पड़ती है। प्राणियों के द्वारा नाना प्रकार के आक्रमण होते है, कहीं सांसारिक प्राणियों के आक्रमण होते है। कहीं किसी के आक्रमण होते है परन्तु कर्मो का भोग प्रारम्भ ही रहता है। २९.०७.१९६७

152. महानन्द जी की प्रेरणा

आज मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे ओर ही प्रेरणा देते चले जा रहे है। जैसा मुझे वायुमण्डल से प्रतीत हो रहा है और जिस अग्राण में महानन्द जी उच्चारण कर रहे है मैं भी अपनी शुभकामनाएं देता चला जाऊं। १७.१०.१९६७

153. गुरुदेव का ४० लाख वर्ष पूर्व का कर्म

पूज्य महानन्द जी: पूज्यपाद गुरुदेव का यह वह आपत्ति काल है और प्रायः भोगा जा रहा है। मुझे इसमें बड़ी प्रसन्नता रहती है कि करोड़ों करोड़ों वर्षों के संस्कार भी मानव भोगा करता है। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस कर्म को भोग रहे हैं, जो आज से लगभग चालीस लाख वर्ष पूर्व किया था। मानव को इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह प्रायः ऐसा ही चलता रहता है। संसार की प्रक्रियाएं चलती रहती हैं और संसार में ऐसा प्रायः प्रत्येक मानव के साथ होता रहता है। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वह समय स्मरण नहीं कराना चाहता हूँ, जब यह राजा दशरथ के यहाँ, यज्ञशाला में लाए जाते थे। केवल नग्न रहते थे। २८४ वर्ष तक कोई वस्त्र धारण नहीं किया। उन वार्त्ताओं को स्मरण कराने नहीं जा रहा हूँ। ०६.०३.१९६९

154. गुरुदेव का आदि ब्रह्मा के यहाँ अध्ययन

मुझे भी स्मरण आता रहता है, जब हम किसी काल में अपने बाल्य पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते रहते थे, तो गुरूजन एक समय जब भयंकर वनों में, गान गा रहे थे तो सर्पराज, मृगराज उनके चरणों की वंदना कर रहे थे। चरणों को स्पर्श कर रहे थे, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा हे प्रभु! यह क्या कारण है जो देखो, हिंसक प्राणी भी, आपके चरणों की वंदना कर रहे है, और आप के स्वरों को ध्वनियों को श्रवण कर रहे है। पूज्यपाद गुरुदेव ने, मुझे जो उत्तर दिया था, उस समय वह बड़ा प्रियतम है। उन्होंने कहा था कि यह जो मानव, जब वेद का गान गाता है, सामगान गाता है, वह हृदय से जब गाता है, श्रद्धामयी हो करके गाता है, तो ये सब जितने भी प्राणी मात्र है, वह सब उस परमपिता परमात्मा के पुत्र के तुल्य है, और जब वेदों का गान क्योंकि वेदो का गान, उस प्रभु की महती है, उसमें प्रभु का विज्ञान है और उसमें प्रभु की प्रसन्नता है, तो उन स्वरों को कौन पान करके कौन अपने अपने में कौन नहीं प्रसन्न होगा? इसलिए सर्पराज हो, मृगराज हो, ऋषि मुनि तो उनसे खिलवाड़ करते रहे है, और खिलवाड़ करके उसको अपने कण्ठ से आलिंगन करते रहे है। १९.०४.१९८८

155. प्रवचन वेद वाक्य

पूज्य महानन्द जी: एक वार्ता हम जानना चाहते हैं, कि यह वेद वाक्य नहीं, तो और क्या है? तुमने कौन कौन-सी संहिताओं को जाना है। रही यह बात, कि वेदवाणी अशुद्ध होती है। हमारे गुरुवर विद्वत समाज में जो वाक्य उच्चारण किया करते हैं, वह सब यथार्थ हैं। परन्तु वह जो शरीर है, उस वाणी में अभौतिक शक्ति के कारण वह वाक्य, जाते जाते अशुद्ध हो जाते हैं। वाक्यों का अद्भुत रुप बन जाता है। जैसे आज हमारा एक मधु आदेश चल रहा है। हम इस योग्य तो नहीं कि गुरुजी के समक्ष कोई वाक्य उच्चारण करें।

156. महानन्द जी का आत्मा

पूज्य महानन्द जी: आज का मानव यह भी कह रहा है, कि न प्रतीत यह महानन्द जी का आत्मा कैसे बोलता है? एक शरीर में दो आत्माएं कैसे आ जाती है? अरे, आज के विद्वत समाज में तार्किकता रह गई है, गम्भीरता का लेशमात्र भी नहीं रहा है। जब मानव में गम्भीरता आ जाती है, अपने आध्यात्मिकता को विचारता है, तो उस काल में विचार आता है कि यह क्या पदार्थ है? आज का मानव भौतिक विज्ञान को ही मान बैठा है। आध्यात्मिक विज्ञान का कोई महत्वदायक नहीं मान रहा है। क्या कारण है?

इसका मुख्य उद्देश्य यह ही है कि आज का मानव अपने कर्तव्य से, अपने आहार व्यवहार से इतना तुच्छ बन चुका है कि अपनी तार्किक बुद्धि को ही बुद्धि समझ रहा है और यह नहीं विचारता कि आध्यात्मिक विज्ञान भी कुछ महत्वपूर्ण है या नहीं। हमारा व्याख्यान या गुरुजी का आदेश, यह सब आध्यात्मिक विज्ञान के अनुकूल हैं। प्रश्न आता है, कैसे हो रहा है?

157. प्रवचन कैसे

पूज्य महानन्द जी: अन्तरिक्ष में सूक्ष्म शरीर द्वारा महान आत्माओं से विनोद होता है। यह जो आत्मा हमारे गुरुजी के शरीर में विराजमान हो रहा है, जो आज संसार में अज्ञानी बनी बैठी है, पुनरुक्ति होती है, और उस सूक्ष्म शरीर वाले विद्वत मण्डल में जाकर वह ज्ञान प्रबल हो जाता है और इनके पार्थिव शरीर द्वारा गुरुजी के और हमारे व्याख्यानों का इस मृतमण्डल में प्रसार हो रहा है। यह है हमारा आध्यात्मिक विज्ञान। आज मानव यह विचार कर लेवे कि मैं इस तार्किक बुद्धि से इसको विचार लूं, तो कदापि नहीं जानी जाएगी। इसका क्या कारण है? क्योंकि मानव में गम्भीरता नहीं, केवल तार्किकता रह गई है, कि यह वेदमन्त्र नहीं। वेदमन्त्र तो यथार्थ हैं, परन्तु आज के वेदमन्त्रों से क्यों नहीं मिल रहे हैं।

158. परमात्मा की याचना

हमारे आज के प्रारम्भ के वेद मन्त्रों में उस परब्रह्म परमात्मा की याचना की जा रही थी। हे परमात्मन! किसी भी लोक लोकान्तर का प्राणी हो, परन्तु जब उसे अशान्ति प्राप्त होती है, तो वह तेरी ही शरण आते हैं, वह उस परमपिता परमात्मा के शरणागत आ करके और अपनी मानवता को शान्ति प्रियता बना करके प्रस्थान कर जाते हैं। इसी प्रकार आज हम उस प्रभु की याचना करते हुए, उस ब्रह्मा की याचना करते हुए आज हम अपने जीवन को ऊँचा बनाते चले जाएं। क्योंकि मानव किसी भी आँगन मे भ्रमण करने वाला हो परंतु एक समय उसका हृदय कष्ट प्रतीत होने लगता है, आज हम प्रभु से याचना कर रहे हैं कि हे प्रभु! तू संसार के प्राणियों को ऊँचा बना। हे प्रभु! इनके द्वारा ओज और तेज हो। इन्हीं से यह समाज और राष्ट्र ऊँचा बना करता है, भगवन!, जब हम प्रभु की याचना करते हैं तो हमारा हृदय गद्-गद् होने लगता है। मैं अपने प्रभु से यह कहा करता हूं कि हे परमात्मन! तू कितना उज्ज्वल है, तेरी महानता कितनी महान है, तू उस महानता का दिग्दर्शन करता है, जिसे मानव किसी काल में स्वप्नवत भी दृष्टिपात नहीं कर पाता। आज हम उस मनोहर देव के द्वारा जाना चाहते हैं। प्राय:मानव की उत्कट इच्छा रहती है मेरा प्यारा कोई भी मानव हो परंतु वह प्रभु के लिए उत्सुक रहता है, क्योंकि आनन्द जो प्राप्त होता है, आनन्द के लिए वह अपने जीवन को सदैव प्रगतिशील बनाता रहता है। यह उत्कृष्ट इच्छा जागृत रहती है, कि मैं आनन्द को प्राप्त करने वाला बनूं, आज मैं उस अपने आनंद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जिस आनन्द में वास्तव में परम अग्रित आनन्द प्राप्त होता चला जाएं। आज हम उस मनोहर देव की याचना करते हुए, उस देव की शरण में जाते हुए हमउसकी याचना करते चले जाते है और कहा करते है कि हे प्रभु! तू हमें अपनी गोद में धारण कर, अपने आँगन में धारण कर, जिससे हमारा जीवन आपसे सुगठित रहेगा, तो भगवन्! हमारे जीवन में अशान्ति न होगी। ०२.०८.१९६८

159. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं, वायुमण्डल से भी मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि यह जो कल का आगे दिवस आ रहा है। वह दीपावली का दिवस, हमारे समीप आता चला जा रहा है समय आता रहता है, जीवन की सिद्धान्तों में विचारधारा बनती रहती हैं। २०.१०.१९६८

160. आदि ब्रह्मा का उपदेश

वास्तव में हम यह उच्चारण कर सकते है, कि पूर्व की भांति, तो पठन-पाठन नही किया जाता, परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते थे, कि न करने से कुछ करना सुन्दर होता हैं क्योंकि वेदवाणी इस प्रकार अगम्य हैं, कि मानव अनुसन्धान करता रहता हैं, इस पर विचार-विनिमय होता रहता हैं, कि किन स्वरों से शब्दों का उच्चारण होना चाहिए। इस प्रकार अगम्य ज्ञान और अगम्य ज्योति जो मानव के अन्तःकरण को उज्ज्वल और प्रकाश में लाने वाली हैं, उस वेदवाणी का प्रसारण करते चले जा रहे थे। यह वेदवाणी सामान्य प्राणियों के लिए नही, देवताओं के लिए भी और प्राणीमात्र के लिए, इसमें ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा हमें प्रतीत होने लगती हैं इसीलिए इसे हमारे यहाँ वेद ध्वनि कहा गया हैं। ०८.११.१९६८

161. गुरुदेव को वर्णन परिचय

पूज्य महानन्द जीः मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इस संसार की परिस्थिति का वर्णन कराना चाहता हूं, कि यह संसार कैसा है। इस संसार में हो क्या रहा है। मेरे मस्तिष्क में तीन प्रकार के विवाद रहते हैं। सबसे प्रथम विवाद है, कि राष्ट्र कैसा हो, उसके पश्चात ब्राह्मण समाज कैसा हो और तृतीय वाक्य मेरा यह है कि यह भूमि जिसमें हमारी आकाशवाणी जा रही है, इस भूमि पर त्रेताकाल में किसका प्रभाव था, कौन यहाँ का राजा विराजमान रहता था। इसके सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देना है, उनका विस्तार नहीं देना है, जिससे यह ज्ञान मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को भी श्रवण हो जाएँ, कि वास्तव में प्रायः ऐसा होता रहता है। ०६.०३.१९६९

162. गुरुदेव के प्रवचनों की वाणी का मृत मण्डल में विमर्श

पूज्य महानन्द जीः जब मैं विचारता रहता हूं, कि यह हमारी आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है, और मृत मण्डल का प्राणी विद्वत मण्डल भी इन वाक्यों को श्रवण करने के लिए तत्पर रहता है, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। मानव के मस्तिष्क में प्रायः एक वाक्य और रहता है, कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो स्थूल शरीर है जिसके माध्यम से हमारी वाणी जाती है, यह वाणी क्या है? इसके ऊपर हमारे शास्त्रोक्त वाक्य और अनुभवी वाक्यों को श्रवण कर लेना चाहिए। कोई तो मानव पठन-पाठन करने के पाश्चात्य अपनी पाण्डित्य दृष्टि से इसको दृष्टिपात करना चाहता है, कोई यौगिक दृष्टि से इसको दृष्टिपात करना चाहता है, कोई यह उच्चारण करना चाहता है, कि शब्दों में कितनी अशुद्धियां हैं, नाना प्रकार की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता है और किया जाना चाहिए। इसमें हमारा किसी प्रकार का विवाद नहीं है, क्योंकि जब मानव आपत्ति के लिए चलता है, तो नाना प्रकार की आपत्तियां उसके समक्ष आती रहती हैं। उनको सहन करना, उनको विचार विनिमय करना और उनको अपने जीवनचर्या में लाना, यह मानव का स्वाभाविक गुण होना चाहिए। मानव को किसी भी काल में हताश नहीं होना चाहिए। ०६.०३.१९६९

163. प्राणों का संघात

पूज्य महानन्द जीः मैंने अभी-अभी जब यज्ञ की परम्परा चल रही थी, अपने पूज्य गुरुदेव को प्रेरणा दी, कि भगवन्! आप यज्ञ के सम्बन्ध में अपना कुछ प्रकाश दीजिए, परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कुछ प्रकाश दिया और उसके पश्चात मुझे कुछ समय प्रदान किया। मैंने कुछ यौगिक प्रक्रियाओं का वर्णन कराया था, कि मानव को विचारना चाहिए, कि दर्शनों का सिद्धान्त क्या है? विचारधाराएँ क्या है, मानव ने अपने सिद्धान्त को ही सिद्धान्त बना लिए हैं, परन्तु दर्शनों का सिद्धान्त उसके सिद्धान्तों के आगे, दूर चला जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में एक वाक्य कहा था, कि प्राणों का संघात होता रहता है। आज मानव यह नहीं जानता, कि प्राणों की परिभाषा क्या है, प्राण शरीर में क्या-क्या कार्य करते हैं, यौगिक क्रिया में क्या-क्या कार्य करते हैं। प्राणों से लेकर जब मानव अनुसन्धान करना प्रारम्भ करता है, तो अनुसन्धान सहज हो जाता है। ०६.०३.१९६९

164. अन्तरिक्ष की आत्माएं

यह जो बाह्य जगत हमें प्रतीत हो रहा है, इसकी कल्पना मानव शरीर से की जाती है। मानव की जो आन्तरिक प्रवृत्तियां हैं, इनमें अन्तरिक्ष भी है, उसमें सर्वश है। हमारा तटस्थ सिद्धान्त यह कहता है कि अन्तरिक्ष में आत्माएं विराजमान रहती हैं, परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। हमारे यहाँ धर्मज्ञ शास्त्रों ने और महर्षि कपिल जी ने जो आत्मा का परिमाण माना है, वह इस प्रकार माना है कि मानव के सिर का जो एक बाल होता है, उसका एक गोल विभाग बना लिया जाएं और उस गोल विभाग के साठवां भाग किए जाएं, और साठवां जो भाग है, उसके ९९ भाग किए जाएं, तो उतनी सूक्ष्म आत्मा अन्तरिक्ष में भ्रमण करती है। आज जब मानव के द्वारा मानव का सिद्धान्त यह कहता है, कि जैसा यह पिण्ड है, इसी प्रकार का यह ब्रह्माण्ड है। मानव को यह विचार विनिमय यह होगा, कि यह बाहरीय जगत में अन्तरिक्ष है, इसमें सब परमाणु ओत-प्रोत हो जाते हैं, वह जो परमाणुवाद का क्षेत्र है, वह अन्तरिक्ष है, तो क्या जो हमारा आन्तरिक अन्तरिक्ष है उसमें परमाणुवाद भ्रमण नहीं करता होगा? अवश्य करता होगा। यदि नहीं करता होगा, तो आंतरिक जगत में आकाश का स्वीकार करना व्यर्थ हो जाता है, इन वाक्यों को लेकर जब हम प्रायः अनुसन्धान की दृष्टि से इसका दृष्टिपात करते है, तो हमें यह प्रतीत होता है, कि प्राणों का जो संघात है, उस प्रक्रिया के साथ-साथ यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। हमें प्राणों का संघात स्वीकार करना होगा। प्राणों की प्रक्रियाओं में, प्राणों की एकता में सहकारिता का होना बहुत अनिवार्य हो जाता है। यह साधारण योगियों का विषय नहीं है, यह पुस्तकों की लेखनीबद्ध करने के पश्चात योगी कहलाने के पश्चात, मानव का यह विषय नहीं रहता, परन्तु यह उन महापुरूषों का विषय होता है, जो जनता में जनार्दन समाधिष्ट लगाने वाले होते हैं, जो ब्रह्म समाधिष्ट हो जाते हैं, उनका यह अनुपम विषय रह जाता है। यह लेखनी का विषय तो है ही, परन्तु लेखनी के साथ अनुभव का विषय विशेषकर रहता है। ०६.०३.१९६९

165. गुरुदेव का चालीस लाख वर्ष पूर्व का कर्म

इस सम्बन्ध में एक वाक्य ओर भी उच्चारण करना था, पूज्यपाद तो यह वाक्य सर्वथा जानते ही हैं, मैं तो सूर्य के समक्ष एक सूक्ष्म से प्रकाश के तुल्य जा पहुंचा हूं, उनके चरणों को वन्दना करने के लिए। मैंने अपने जीवन में क्या-क्या किया है, यह नहीं उच्चारण करना चाहता, क्योंकि गुरुदेव सब कुछ जानते हैं। आज मानव दुराचारी भी बन जाता है, परन्तु उसके पश्चात भी मानव जीवन मुक्त की प्रवृत्तियों में जा सकता है। यह मैंने अपने जीवन में स्वयं अनुभव किया है। इस

वाक्य को हम यहीं समाप्त कर दें, तो सुन्दर नहीं होगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे पूज्यपाद गुरुदेव का यह वह आपत्ति काल है और प्रायः भोगा जा रहा है। मुझे इसमें बड़ी प्रसन्नता रहती है कि करोड़ों करोड़ों वर्षों के संस्कार भी मानव भोगा करता है। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस कर्म को भोग रहे हैं, जो आज से लगभग चालीस लाख वर्ष पूर्व किया था। मानव को इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह प्रायः ऐसा ही चलता रहता है। संसार की प्रक्रियाएं चलती रहती हैं और संसार में ऐसा प्रायः प्रत्येक मानव के साथ होता रहता है। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वह समय स्मरण नहीं कराना चाहता हूं, जब यह राजा दशरथ के यहाँ, यज्ञशाला में लाए जाते थे। केवल नग्न रहते थे। २८४ वर्ष तक कोई वस्त्र धारण नहीं किया।। ०६.०३.१९६९

166. गुरुदेव की प्रवचन विधा

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव की यह आकाशवाणी कैसे जाती है? हम माध्यम बनाकर कैसे वाक्य प्रारम्भ करते हैं? परन्तु जब हृदय में आकाश होता है, तो उस आकाश में आत्माएं भ्रमण करती रहती हैं और जब बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों की समता हो जाती है, दोनों का मिलान हो जाता है, उस समय ऐसी-ऐसी वार्त्ता कोई आश्चर्यजनक नहीं रह जाती। यह तो महापुरूषों का केवल एक खिलवाड़ होता है, एक अग्रणीय होता है जैसे सूक्ष्म सा बालक माता की लोरियों में खिलवाड़ करता है, आनन्द करता रहता है इसी प्रकार यह तो सब आनन्द हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं है। जिस मार्ग में जो मानव चलने लगता है, उसे उस मार्ग का सब कुछ प्रतीत होने लगता है। ०६.०३.१९६९

पूज्यपाद गुरुदेवः जैसे मानव का शरीर है, जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी विराजमान हैं, मैं इनको दृष्टिपात कर रहा हूं, परन्तु यह स्थूल शरीर में परिणत हो जाएं, तो मुझे महानन्द जी अपने में अभाव प्रतीत होगा, क्योंकि जब शरीर से यह आत्मा चला जाता है तो शरीर में वह महानता नहीं रहती है, इसकी सत्यता में परिवर्तन आ जाता है। ०८.०३.१९६९

167. गुरुदेव की स्मृति

आज भी मुझे स्मरण आती चली आ रही है क्या हमारे यहाँ एक महात्मा अगस्त हुए हैं, बहुत परम्परा की वार्त्ता है। १२.०३.१९६९

168. महानन्द जी की प्रेरणा

परन्तु आज का मेरे प्यारे महानन्द जी का द्वितीय वाक्य ओर भी है, प्रेरणाबद्ध है, जिसको हमने सभी को विचार विनियम करना है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से, आदि ब्रह्मा से लेकर के और वर्तमान काल का तो इतना प्रतीत नहीं है, परन्तु समय आता रहा, प्रत्येक मानव, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल, विचार-विनिमय करता चला आया, अपने मन की परिस्थिति को विचार-विनिमय करने के लिए, प्रत्येक मानव, मन के ऊपर अनुसन्धान करता रहा।

169. आदि ब्रह्मा के आश्रम में अहिंसक विचारों का प्रभाव

जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में जाता, तो पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में, मैं यह दृष्टिपात करता रहता था, कि यह जब हम उनके चरणों में ओत-प्रोत होते, तो एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान हो जाते, और द्वितीय पंक्ति में मेरी पवित्र माताएं, और तृतीय पंक्ति में, मार्ग के मृगराज आते उनके चरणों में ओत-प्रोत हो जाते थे। एक समय मैंने, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा-प्रभु! यह क्या कारण है, जो हिंसक प्राणी, आपके चरणों को छूते हैं, नमस्कार करते हैं? उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक बहुत सुन्दर उत्तर दिया, कि मानव जब विचारों के क्षेत्र में चला जाता है, और वह विचार, अहिंसा परमोधर्म से सने हुए होते हैं, जब वह विचार अहिंसा परमोधर्म से सने हुए होते हैं, तो उनमें इस प्रकार की विचारधारा, जिस प्रकार का मानव का परमाणुवाद, विचार इस प्रकार के बन जाते हैं, कि उसके हृदय में, उसके एक परमाणु में भी हिंसक भाव नहीं रहते, और जब हिंसक भाव नहीं रहता, तो जो हिंसक प्राणी होते हैं, वह परमाणु उनके अन्तःकरण को छुआ करते है, उनकी अन्तरात्मा को छूते है, परन्तु वह जो उनका अन्तर्भाव है, वह समाप्त हो जाता है। परन्तु वह अहिंसा परमो धर्म का पालन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। ११.०४.१९६९

170. गुरुदेव का याग अनुसन्धान

एक समय जब यागों का हम किसी काल में जब अनुसन्धान कर रहे थे तो उस समय महाराजा कुम्भकरण एक समय उस यज्ञशाला में पधारे थे, हम उस समय में सप्तकोण की यज्ञशाला का निर्माण करते रहते थे, उनमें याग करते रहते थे। कुछ समय के पश्चात उन्होंने याग के कर्मकाण्डों को जानने का प्रयास किया था। उस समय हमने उनके आहार और व्यवहार को प्रायः श्रवण किया था। उनका आहार और व्यवहार बड़ा पवित्र था। उनकी पत्नी, एक समय यज्ञशाला में पधारी और जिस भी काल में यज्ञशाला के उत्सव या नृत्य होते रहते थे, तो उस काल में वे यज्ञ में विराजमान हो करके प्रभु की स्तुति, नमस्कार अपनी आभा में सदैव रमण करती रहती थी। १८.०१.१९८२

171. अन्तरिक्ष मानव हृदय में

एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्मुख एक वाक् कहा था। आज मुझे बहुत काल हो गया है, जब मैने उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके, एक वाक्य कहा था, कि प्रभु! यह जो अन्तरिक्ष हमें प्रतीत हो रहा है। कि यह अन्तरिक्ष मानव के हृदय में भी विराजमान होता है? उस समय पूज्य गुरुदेव ने कहा कि यह हृदय में भी है, क्योंकि यह तो इसी का एक सूक्ष्म रूप है। जैसा यह ब्रह्माण्ड है, ऐसा ही हमारा यह पिण्ड कहलाया गया है। इस पिंड में भी जैसे इस लोक में एक साम्य गति हो रही है, और अन्तरिक्ष अपना कार्य कर रहा है, नाना प्रकार के परमाणु भ्रमण कर रहे हैं, इसी प्रकार हमारे, इस मानव शरीर में भी अन्तरिक्ष होता है। आकाश होता है। इसमें हमारे यहाँ जो गति, क्योंकि इसमें अन्तरिक्ष नहीं होगा, तो मानव कोई वाक् उच्चारण नहीं कर सकता। ११.०४.१९६९

172. आत्माओं का कर्तव्य

यह महान आत्माओं का कर्त्तव्य होता है, कोई कोई आत्मा होती है, जो मानव को सुन्दर मार्ग देकर चली जाती है, उस महान पुरूषों को विचार लेना चाहिए और

उन के ऊपर हमें अपने जीवन को न्यौछावर कर देना चाहिए। ११.०४.१९६९

173. अरबों वर्ष पूर्व विचारार्थ एकत्रित ऋषि समाज का

मैं इससे पूर्व शब्दों मैं इसका और भी गम्भीरता से विश्लेषण करूंगा। आज तो केवल मैं इतना वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ, कि महर्षि वायु मुनि महाराज, अंगिरा जी, आदित्य जी, महर्षि तत्त्व मुनि महाराज, सोमकेतु मंगलांग ऋषि महाराज, सौमान्ची, अन्वाष्णी ऋषि आदि ऋषियों का समाज यह आज नहीं हुआ, इन वाक्यों को लगभग अरबों वर्ष हो गएं, जब यह समाज एकत्रित होता था, यह ऋषि मुनियों के विचारार्थ होते थे। परम्परा से होते चले आए हैं, आज कोई नवीन वाक्य नहीं है। १२.०४.१९६९

174. महानन्द जी के वाक्य, मंगलेतरु ऋषि महाराज

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे उच्चारण किया है, उन्होंने कहा है, आज का मानव इसको ढकोसला उच्चारण कर देता है, तो मैं महानन्द जी के वाक्यों पर नहीं जाना चाहता, क्योंकि न जाने ये कहाँ कहां से, क्या-क्या वाक्य लाया करते हैं। इन वाक्यों में मैं ही नहीं जाना चाहता हूँ। केवल हमारा यही विचार है, कि जीवात्मा का सन्निधान भिन्न है और प्रकृति का भिन्न है और जहाँ ब्रह्म और प्रकृति का व्याप्य और व्यापक स्वरूप है इसी प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का व्याप्य और व्यापक स्वरूप है, परन्तु अपने-अपने व्याप्य और व्यापक स्वरूप में अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, क्योंकि प्रकृति को ही ऋषि मुनियों ने अकर्त्ता ही स्वीकार किया है। अन्त में मंगलेतरु ऋषि महाराज का यह निर्णय किया, कि यह वाक्य वास्तव में, सर्वोपरि सिद्धान्त हो सकता है। परन्तु आगे चल करके, इस सिद्धान्त में सूक्ष्मता आ सकती है, यह अमिट हो सकता है, परन्तु जो सार्वभौम, जो बुद्धि की पराकाष्ठा है, परा परम्परा है, परा प्रणाली है, परन्तु उस दृष्टि से अमिट नहीं होगा, परन्तु यह निर्णय होने के पश्चात सभा समाप्त हो गई। सभा समाप्त हो जाने के पश्चात, मैंने अभी अभी अपने कुछ सूक्ष्म से विचारों को प्रगट किया है यह वाक्य तो ऐसा भंयकर वन है, इसमें जाने के लिए किसी काल में जाते थे, अब तो समय इतनी आज्ञा नहीं देता है, अब तो भोगो की प्रतीति होने के, भोगो को भोगने के नाते, सब कुछ होता रहता है। परन्तु कोई काल था जब इन गम्भीर वाक्यों पर कई-कई माह वाक् चलता रहते थे। १२.०४.१९६९

175. महानन्द जी के विरोध विचारधारा प्रकट कराने के लिए

हे मेरे आदि आचार्य जनों! हे मेरे भद्र पुरुषों! मैं तो एक ही प्रार्थना करने आया हूँवह केवल क्या है? मैं गुरुजी से विरोध किया करता हूँ, गुरुजी को अपशब्द भी कहता हूँ क्यों कहा करता हूँ? केवल अपनी विचारधाराओं को तुम्हारे समक्ष नियुक्त करने के लिए। २१.०६.१९६९

176. गुरुदेव को प्रेरणा का आधार

तो मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं। आधुनिक काल की चर्चा अधिक प्रगट करने लगते हैं। परन्तु जब आधुनिक काल की चर्चा आने लगती है, तो यहाँ हमें ऐसा प्रतीत होता है परमाणुओं से भी ऐसा प्रतीत होता है। वायु मण्डल से ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में अराजकता का प्रसारण होता चला जा रहा है। २०.०८.१९६९

177. गुरुदेव का पुरातन अध्ययन

क्योंकि मुझे बहुत पुरातन काल में यागों के सम्बन्ध में, बहुत अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। १६.१२.१९८१

178. पूज्य महानन्द जी भारद्वाज ऋषि के आश्रम में

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय मुझे आज्ञा दी, कि आप भारद्वाज आश्रम में पंहुचो, जब मैं उनके आश्रम में पंहुचा, तो उनके आश्रम में महर्षि रेवक और महर्षि पिप्पलाद दोनों ऋषि विराजमान थे। वह ब्रह्म और प्रकृति की चर्चा करने आए थे। जब दोनों यह चर्चा करने लगे, तो मैं भी वहाँ पंहुचा। वहाँ एक दूसरी धातु का मिलान हो रहा था, महर्षि भारद्वाज की विषेश विज्ञानशाला थी, वहाँ ब्रह्मचारियों की विद्या अध्ययन कराते थे, महर्षि भारद्वाज ब्रह्मचारियों से यह भी कहा करते थे, कि तुम इस विद्या को जान लो, और इसका प्रयोग भी कर लो, इसको सब कुछ करो, परन्तु इससे आचरण की भ्रष्टता हो जाती है। इसीलिए इसके ऊपर तुम अधिक न जाओ। ब्रह्म की चेतना को अधिक जानने का प्रयास करो।

179. ब्रह्म चेतना से मानव की अन्तरात्मा का विकास

महर्षि भारद्वाज जी ने जब ऐसा कहा, तो मैं बड़ा व्याकुल होकर के, अपने गुरुदेव के द्वारा आया और प्रश्न किया, कि महर्षि भारद्वाज ऐसा क्यों उच्चारण कर रहे हैं? क्योंकि संसार में मानव का विकास विज्ञान से होता है, जितना विज्ञान होता है, उतनी ही सुविधाए होती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि नही, पुत्र! ऐसा नही होता है। उन्होंने इसीलिए कहा है क्योंकि ब्रह्म की चेतना से मानव की अंतरात्मा का विकास होता है, और अन्तरात्मा का जो विकास होता है, वह भौतिक विज्ञान से सहस्रों लाखों गुणा अधिक होता है, इसीलिए उसको जानने के लिए अधिक बल दिया करते थे।

180. सूक्ष्म शरीर से सभी लोकों में भ्रमण

हमारे ऋषि मुनि इस विद्या और इस विज्ञान की परम्परा को जानते थे, हमारा तो जन्म सिद्ध अधिकार है, क्योंकि जिसने अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण, तीनों शरीरों को जाना है, उसके यहाँ यह जो कहीं भौतिक विज्ञान है, वह उससे दूर नही होता। एक योगी सूक्ष्म शरीर वाला है और एक भौतिक विज्ञानवेता है, वह केवल अपने यन्त्रों द्वारा जाता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर वाला जो है, वह सर्वशः लोकों में भ्रमण कर आता है। अग्नि उसको भस्म नही कर सकती, जल उसको नष्ट नही कर सकता, वायु उसको तीव्र गति नही दे सकती। जब तीव्र गति नही दे सकती, क्योंकि वह तत्वों का समूह रहता है और उसको अग्नि नष्ट नही कर सकती, तो उसके लिए चन्द्रमा की और सूर्य की यात्रा करना बहुत सहज हो जाता है। परन्तु आज का मानव कहता है कि वह केवल कल्पना मात्र है क्योंकि ऐसे योगी अब नही हैं, परन्तु योगी है, जो पर्वतों की कन्दराओं में विराजमान हैं, जो अपनी यात्रा कर लेते हैं, शान्त हो जाते हैं।

181. योगी

आज कोई मानव यह उच्चारण करे, कि इन बड़े बड़े ऊँचे गृहों में योगी प्राप्त हो जायें, तो यह असम्भव है। क्या कहीं ऊँचे गृहों में, राष्ट्र गृहों में योगी प्राप्त होंगें? योगी तो कहीं ओर प्राप्त होंगे। जैसे महर्षि रेवक मुनि को कहा था, महाराजा ज्ञानश्रुति जी के मन्त्री जी ने कहा कि आप रेवक हैं। हां महाराज! गाड़ी के नीचे अपने जीवन को व्यतीत करने वाले थे।

182. महर्षि लोमश

महर्षि लोमश के जीवन से मुझे प्राप्त होता है, कि वह एक आसन लिए रहते थे, सहस्रों वर्षों की अवस्था होते हुए एक आसन पर रहते थे। तो आज कोई मानव यह कल्पना करने लगे, कि आज मुझे योगी प्राप्त हो जाए, परन्तु योगी तो तब प्राप्त होंगें, जब तुम योगी के जिज्ञासु बनोगे। आज जब जिज्ञासा नही है, जिज्ञासा तो भोगविलासों की हैं, जिज्ञासा तो रसना की पूर्ति करने की है, रसना तो दूसरे के रस को पान करने की है, आज मानव यह कल्पना करे, कि वह ऋषि आज क्यों नही है, यह सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा तुम्हें कैसे प्राप्त हों, जब तुम्हारे ज्ञान के द्वारा ही अन्तर्द्वन्द समाप्त नही होता।

आज का मानव यह कहता है कि मांस का आहार करने वाले ही चन्द्रमा पर जा पंहुचे और जो अहिंसा का उपदेश देते हैं, वह यहाँ से यहाँ भी नही जा सकते। यह वाक्य बहुत सुन्दर हैं, आज मानव इन विडम्बनाओं में क्यों जाने लगा, इसीलिए जाने लगा, क्योंकि उसे भी अपनी रसना की पूर्ति करनी है, उसी प्रकार जब उसके मन में यह विडम्बना रहती है, कि आज मांस का आहार करने वाला प्राणी कहाँ चला गया।

183. मांस भक्षण से दोष

जो भौतिक विज्ञान होता है, तो वह मानव के संस्कारों से ही होता है, यह मांस से सम्बन्धित नही होता। यह जो मानव के द्वारा प्रकृतिवाद है, इसमें मानव हिंसक बन जाता है। उसके मस्तिष्क पर हिंसक का इतना प्रभाव नही होता, क्योंकि वह प्रकृतिवाद में जो है, जब चेतना को जानोगे और चेतना वाला जो विज्ञान है, उसको जानोगे, तो तुम्हें प्राप्त होगा, कि मांस प्राप्त करने में कितनी हानि होती है, और मुझे
कितना सूक्ष्म बनना था।

चन्द्रमा में जाना है अथव मंगल में जाना है, यह भी तो सूक्ष्म विज्ञान है। मैं यह उच्चारण नही करता हूँ, कि यह सूक्ष्म नही हैं, परन्तु इसे अति सूक्ष्मता में जाने से, इसकी प्रतिभा का ज्ञान होता है। जहाँ तक एक दूसरी धातु के मिलान का प्रश्न हैऔर प्रकृति उसकी देन देती है, तो मांस खाने से इसका कोई प्रश्न नही हैं, यह तो विषय ही दूसरे हैं। आज का मानव यह उच्चारण करता रहता है, कि मांस खाने वालो ने चन्द्रमा की यात्रा कर ली और अहिंसा परमोधर्म का जानने वाला पर्वतों तक भी नही जा सकता, मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ, कि अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा क्या है यह मानव को विचारना होगा।

अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराई हैऔर बहुत सुन्दर रूपों में इसका निरूपण किया है। रहा यह वाक्य कि मेरा जो विषय दूसरा न बन जाए। मैं इन प्रश्नों का उतर इसीलिए दे रहा हूँ, क्योंकि यह मेरा विषय है मेरे हृदय में स्वयं यह उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है, हम यह जानने का स्वतः प्रयास करेंगें, कि हम अहिंसा परमोधर्म कहते किसे हैं।

184. प्रभु चेतना में लाभ

अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा क्या है और यह जो चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों की मीमांसा है, यह क्या है, भौतिकवाद की जो मीमांसा है, वह यह है, कि भौतिकवाद केवल इस वाक्य को जानता है, परन्तु इस प्रकार का मांस पान नही करता, जैसे आज के प्राणियों ने यहाँ का जो मानव है, कि आज का वैज्ञानिक मांस पान करता है, परन्तु उसकी जो सूक्ष्म तरंगें, जो वेदना होती है, वह अन्तरात्मा को ही प्रभावित करती हैं। परन्तु वहाँ जो नाना प्रकार के यन्त्र है, उसका उसके ऊपर किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द, उस पर नही आता, तो उसका यहाँ प्रश्न ही उत्पन्न नही होता, परन्तु अहिंसा परमोधर्म की आवश्यकता मानव को आत्मिक ज्ञान में होती है, और मानव की मानवता में होती है।

185. गुरुदेव का लाखों वर्षों का पूर्व ज्ञान

मानव को बहुत विचारना है, प्रत्येक वाक्य और सूक्ष्मता से विचारना है। मांस को और चन्द्रमा में जाने वाले का प्रश्न उत्पन्न नही होता। यहाँ प्रश्न है कि मानव यन्त्रों के द्वारा चन्द्रमा में चला गया, यथार्थ है। क्योंकि नाना प्रकार की धातु हैं, तरंगें हैं, इनको जानता है। इनको मैं भी जानता हूँ। मेरे पूज्यपाद ने मुझे आज से लाखों वर्षों पूर्व इस का ज्ञान करा दिया था, और इन धातुओं का भी ज्ञान कराया था। परन्तु उनको उच्चारण करने से लाभ क्या? मैं चन्द्रमा में क्यों चला जाऊं? मुझे यह लाभ है जाने से, मुझे कोई अन्तर्द्वन्द नही हैं। मेरे लिये स्पष्ट मार्ग है, मैं उस मार्ग को प्राप्त कर सकता हूँ। परन्तु उससे मुझे कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा। लाभ तो केवल उस प्रभु की चेतना में हैं क्योंकि प्रभु की चेतना सर्वत्र ओत-प्रोत है, उसको जानना हमारे लिये बहुत अनिवार्य है। २३.०८.१९६९

186. आदि ब्रह्मा का आश्रम

मुझे स्मरण आता रहता है, जब मुझे ये संसार स्मरण आने लगता है, तो आश्चर्य जनक प्रतीत होने लगता है, मुझे स्मरण है, वह भी समय स्मरण है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में ओत-प्रोत होता था, पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब मैं परिणत हो जाता था, तो एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान रहते, द्वितीय पंक्ति में मेरी पवित्र माताएं, और तृतीय पंक्ति में मार्ग से मृगराज आते, वह भी उसी पंक्ति में विराजमान हो जाते। कैसा सुन्दर समय, मुझे स्मरण है, मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा-प्रभु! यह क्या है? जो मृगराज है, हिंसक प्राणी है, ये मानव का भक्षण कर जाते हैं। परन्तु आपके चरणो में ओत-प्रोत हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक् कहा था हे पुत्रवत! ये तुम्हें प्रतीत है, कि मानव को, जो विचारों में अहिंसा परमोधर्म चरित्र की सुगन्धि आ जाती है, उस समय यह सब प्राणी भी प्रभावित हो जाता है। वह भी अपने हिंसा को त्याग करके, अहिंसा परमोधर्म में परिणत हो जाता है। १७.०९.१९६९

187. गुरुदेव को स्मृति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में, महात्मा जमदग्नि मुनि के यहाँ, एक सभा हुई, और सभा विचार विनिमय में करने के लिए कि यह मृत्यु क्या है? प्रत्येक मानव मृत्यु के ऊपर अपना विचार-विनिमय करता रहा है, यह मृत्यु संसार को रूला देती है, और मृत्युंजयी बनना चाहता है, परन्तु मृत्यु उसके पश्चात भी रूलाने वाली है, उसे रूद्र कहते हैं। क्योंकि रूद्र भी उसी को कहते हैं, जो रूलाने वाला है। २०.०९.१९६९

188. पूज्य महानन्द जी के प्रश्न

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपना यह अमूल्य समय प्रदान किया, जिस समय में हमारे लिए यह कहा गया, कि कुछ विचार व्यक्त करें, परन्तु मैं पूज्यपाद गुरुदेव के समीप कौन-सा वाक्य प्रगट करूं। कौन-सा ऐसा मेरे अन्तरात्मा का रहस्य है, जिसको मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नही जानते, मैं तो केवल एक विडम्बना भरी वार्त्ता को प्रगट कराने आ ही जाता हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव को अशान्ति में लाने के लिए, प्रायः मैं आ ही जाता हूँ। ०९.११.१९६९

189. महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर से भ्रमण

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी याज्ञिक बनने के लिए कहा है, वास्तव में मानव को याज्ञिक ही बनना चाहिए। आज मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा भ्रमण कर रहा था, मैं उन सुन्दर यज्ञों को दृष्टिपात कर रहा था, जिनमें मुझे आज दीपावली के दिवस का वह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। यह एक बड़ा दुखित वाक्य है, और मुझे वह वाक्य भी स्मरण आता रहता है, जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस दीपावली के सुन्दर अवसर पर वह याज्ञिक राजा महाराजाओं के यहाँ ब्रह्मा बनाकर के भयंकर वनों से ब्रह्मचारी को लाया जाता और वह याज्ञिक कर्म होते थे। मुझे इसका कोई कष्ट विशेष नही हैं, क्योंकि प्रायः संसार में मानव आपत्तियों के लिए ही आता है और यह नाना प्रकार के कर्म भागों के लिए आता रहता है और जहाँ मैं यह विचारता हूँ कि मानव को अपने जीवन में वह अभिमान नही करना चाहिए, संसार में जो बुद्धिमान होते हैं, जो ऋषि भी बन जाते हैं, उनका कर्म फल ऐसा बन जाता है कि वह मूर्ख भी बन जाते हैं, वह कोई आश्चर्य वाला वाक्य नही, परम्परा से यह वाक्य चला आ रहा है संसार में, सृष्टि के प्रारम्भ से ले कर अब तक इसकी प्रतिभा और इसकी विवेचना भी इसी प्रकार आई है। ०९.११.१९६९

190. पूज्य महानन्द जी का आशीर्वाद यज्ञ का सौभाग्य

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी है, कि मै कुछ शब्दों को उच्चारण करूं। सबसे प्रथम जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के अन्तरात्मा के सम्बन्ध शरीर के मुखारबिन्दु के द्वारा आज मैं इस वाक्य को गम्भीरता में नही ले जाना चाहता। सबसे प्रथम उस स्थान के लिए, सुन्दरवाद के लिए, मैं अपने हृदय की कामना प्रगट कर रहा हूँ। उसके पश्चात मैंने जो याज्ञिक के, यज्ञ की पूर्णता दृष्टिपात की है, उससे मेरा हृदय बहुत ही प्रसन्न हो रहा है। क्योंकि जो भी मानव जैसे विचारों का होता है, जन्म-जन्मान्तरों से उन्हीं विचारों में यह प्राणी परिणत हो जाता है, वह मूर्ख बनने के पश्चात भी वह उसी में निहित रहता है। इसी प्रकार आज मुझे अनुभव हुआ, परन्तु मैं सबसे प्रथम ब्रह्मा को यह अवश्य कहना चाहता हूँ, ऐसे यज्ञों का ब्रह्मा बनने के लिए मानव का बड़ा सौभाग्य होता है, क्योंकि जहाँ वेद की परम्परा को पुनः से जागरूक करने वाले होते हैं, उनके हृदय में उनके पुण्यों की कितनी महानता आ गई है, इसीलिए सबसे ऊँचा तो हमारा यह सौभाग्य होना चाहिए। द्वितीय वाक्य यह होना चाहिए, कि हृदय में किसी प्रकार के संकल्प विकल्प न होने चाहिए। किसी प्रकार की विडम्बना नही होनी चाहिए। क्योंकि प्रथम काल में मुझे इस संसार को दृष्टिपात करते हुए अधिक समय हो गया है। १९.११.१९६९

191. गुरुदेव की पुत्रेष्टि याग पर पुस्तक

पुत्रेष्टि याग के कई भागों में मैंने कई प्रकार की लेखनी लिखी, आज मुझे यह लेख प्राप्त नही होते हैं परन्तु न प्रति महानन्द जी उन लेखों को ला सकते हैं, आज मुझे प्रतीत नही यह लेख कहाँ प्राप्त हो जाएं। परन्तु उस पोथी के एक-एक भाग में लगभग एक-एक हजार पृष्ठों का मैंने एक-एक निदान बनाया। उससे ही मुझे ज्ञान हुआ कि वास्तव में यह कितना बड़ा विज्ञान है, इसकी कितनी ऊँची प्रतिभा है, मानव अनुसन्धान करने के लिए तो आया ही है।

आज मानव नाना प्रकार के भोगों के लिए तो आता ही नही जगत में, क्योंकि भोग तो केवल इन्हीं के लिए आता है, कि जो भी कुछ हम जानते हैं उसका हमें भोग भोगना है, आज हम एक कन्या से क्रीड़ा करने लगते हैं, परन्तु वास्तव में हमारा भोग नही है, वह तो केवल हमारी एक धृष्टता है, हमारे विनाश का समय आ गया है, परन्तु भोग और हमें जो क्रीड़ा करनी है, वह तो हमें ज्ञान और विज्ञान से ही करनी होगी। क्योंकि जब तब हम उससे क्रीड़ा नही करेंगें, अपने मे मन्थन नहीं करेंगें, तो उसका हमें कैसे ज्ञान प्राप्त होगा, हम कैसे संसार को आगे मार्ग दिखा सकते हैं, क्योंकि हमें स्वयं को ही जानना है, दूसरों को मार्ग तो हम तभी चेता सकते हैं, जब मार्ग के स्वयं पथिक होंगें। १७.०१.१९७०

192. पूज्य महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर द्वारा अवलोकन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नाना प्रकार की विचारधारा मुझे प्रायः प्रकट होती रही है। मैं यह जानता रहता हूँ कि जिस आसन पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, आज मैं उस आसन को जो दृष्टिपात करके अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा मैं बड़ा प्रभावित हो रहा हूँ। मेरा हृदय सदैव गदगद रहा है। १७.०१.१९७०

193. गुरुदेव की पुस्तक

मेरे पूज्यपाद ने एक पुस्तक लेखनीबद्ध की थी, जिसमें लगभग तीन हजार पृष्ठ थे। उसमें कितना मुधर ज्ञान था, वह जैनकाल में अग्नि के मुख में चली गई, वह प्राप्त नही होती। कोई वाक्य नही होता, उसमें क्रोध की कितनी उज्ज्वलता थी, कितना उसमें स्पष्टीकरण था कि क्रोध करने से कौन-सी नाड़ी कैसे नष्ट हो जाती है, कैसे ज्ञान की सूक्ष्म-सूक्ष्म नाड़ियां समाप्त हो जाती हैं, परन्तु न जाने क्यों इस प्रकार की प्रवृत्तियां बनती चली जा रही है। यह नही जान पाता। क्रोध के कारण ही नाना प्रकार की यातनाएं, आपतियों को सहन करना स्वीकार हो गया, क्योंकि क्रोध का दण्ड देना मुझे तो शोभा नही देता, परन्तु दण्डित करना भी शोभा नही देता। जहाँ क्रोध ही एक प्रकार की मात्रा है, यह मुझे कोई सुन्दर प्रतीत नही होता। इसीलिए मैं कलियुग के प्राणी से यह वाक्य अवश्य उच्चारण करता रहता हूँ।

194. आकाशवाणी

जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है कि क्रोध नही करना चाहिए। मैं अपने सूक्ष्म शरीर से दृष्टिपात कर रहा था, कि क्रोध में जब मानव को अपने शरीर का ज्ञान नही रहता, तो मानव का ज्ञान और वहाँ की नाड़ी कहाँ रह सकेगी, उनका भी ह्रास हो जाएगा। परम्परा से जाते हुए कि क्रोध पर अनुशासन न करने का परिणाम भयंकर होता चला आया है। परन्तु संसार में जो भी रचना होती है, उसका एक मानवत्व निमित होता है, किसी भी प्रकार की रचना हो, वह कलात्मक रचना हो, मानव की यौगिक रचना हो, परन्तु उसका श्रेय मानव को नही होता, उसका श्रेय प्रभु को ही होता है। क्योंकि जितने भी शुभ कार्य होते हैं, उनका श्रेय तो मानव को निहित ही होता है, परन्तु उनका श्रेय प्रभु को उत्तम होता है। किसी भी मानव को कभी अभिमान नही होना चाहिए। कि मैं किसी कार्य को करता रहता हूँ। क्योंकि दर्शन नही कहता, इस वाक्य को तो केवल भगवान की जब हृदय में प्रतिष्ठा मानी हैं

195. भौजाई का गुरुदेव से शास्त्रार्थ

क्योंकि मेरी भोजाई परम्परा से पूज्यपाद गुरुदेव से शास्त्रार्थ करते यही कहती थी कि हृदय क्या होता है, हृदय के ऊपर इनका एक हृदयांगिनी पुस्तकम थी, जिसमें चौदह हजार पृष्ठ थे, तो बारह वर्ष की तपस्या के उपरान्त लेखनीबद्ध की थी, आज मानव को यह पुस्तक प्राप्त नही होती। उसमें केवल यही था कि हृदय में भगवान की प्रतिष्ठा कैसे है, भगवान क्या है

196. हृदय में ब्रह्म

मुझे यह वाक्य स्मरण आता रहता है। मैंने उससे प्रतीत होता है कि हृदय में ब्रह्म की प्रतिष्ठा है और जब ब्रह्म में ही भगवान की प्रतिष्ठा है, कितनी भी शुभ प्रेरणा उत्पन्न होती हैं, वह सब भगवान की ही प्रेरणा हुआ करती है। इसके ऊपर बहुत लेखनियां बद्ध की गई हैं। इसके ऊपर पोथियों की पोथयां आरण्यक और शतपथ ब्राह्मण में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भी बहुत सुन्दर अपने विचारों को एक लेखनीबद्ध की। मैं केवल इन वाक्य को इसीलिए उच्चारण करने जा रहा हूँ। कि जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है। मानव को विचार करके अपने वाक्यों को उच्चारण करना बहुत अनिवार्य है।

महानन्द जी का गुरुदेव को क्रोध पर उलाहना

क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो जितना इनको बिगड़ना था, बिगड़ चुके। इनका बिगड़ना ही क्रोध पर अनुशासन नही हुआ है और न आगे रहने की सम्भावना रह पाती है, मुझे सदैव इसके ऊपर बड़ा दुखित होता रहता हूँ, किसी-किसी काल में अनायास ही क्रोध की मात्रा उत्पन्न होना, यह कोई सुन्दर वाक्य नही हैं, यह शोभा नही देता परन्तु इसमें किया भी क्या जाएं। मेरा ऐसा वाक्य नही हैं मैं तो केवल उच्चारण ही कर सकता हूँ। इसीलिए गो घृत को पान करना बहुत अनिवार्य है, परन्तु गऊओं को इस राष्ट्र के राष्ट्रनायक नष्ट करते चले जा रहे हैं, तो गौ घृत कहाँ से प्राप्त हो जाएं कोई वाक्य नही।

यदि पुत्री पर किसी प्रकार का आक्रमण भी करना है, त्रिगत भी करना है, तो उसको बहुत ही विचार करके करना है, आक्रमण का अभिप्राय यह नही है कि डण्डे से आक्रमण किया जाएं, विचारों से आक्रमण करना शोभा देता है, क्रोध से आक्रमण करना शोभा नही देता। १८.०१.१९७०

197. गुरुदेव का क्रोध

पूज्यनीय को किसी काल में मोह को ही प्राप्त नहीं हुए, क्योंकि मुझे जन्म-जन्मान्तरों तक की प्रतिभा स्मरण आती रहती है, न तो मोह को ही प्राप्त हुए हैं और न कामना को ही प्राप्त होते है। न किसी प्रकार का चंचलता, परन्तु क्रोध की मात्रा में इस प्रकार की मात्रा की उद्बुद्ध होने लगती है कि अकारण भी किसी काल में एक समय ऐसा आघात कारण बना, कि क्रोध किस वार्त्ता पर आया, एक वाक्य मैं स्वीकार करना चाहता था। और यह नहीं चाहते थे। क्योकि वास्तव में मैं अशुद्धता में न धृष्टता में आ गया, मैंने यह जाना कि क्या हो सकता है, अपने मस्तिष्क को वज्र से अकृत कर लिया। उसमें मैंने कहा कि भगवन! ऐसा क्या किया गया? कि तुम दुष्ट हो। तुम मेरे आश्रम से चले जाओ, मैं तुम्हारे दर्शनों का इच्छुक नहीं, ऐसे शब्दों का प्रतिपादन करना, पूज्यपाद गुरुदेव को शोभा नही देता था, परन्तु मैं कर भी क्या सकता था, भोजाई ने कहा कि भगवन! आप कहाँ क्या आपने अपने मस्तिष्क से रक्त का पान कर लिया है, आप इस रक्त को स्वयं पान करना चाहते हैं, उससे क्रोध की मात्रा शान्त होने लगी, क्योंकि वहाँ वाक्य सुन्दरवत को प्राप्त होता रहता है, उसी में तो जीवन होता है। मैं नेत्रों के समीप आया तो नेत्रों में जल की वर्षा हो रही है, औषधियों का पान कराया जा रहा है, मैं बड़ा व्याकुल हुआ, कि मैं अकारण ही अपने पूज्यनीय के शरीर का वांछनीय बनता चला गया। परन्तु मैं क्या कर सकता था, मैंने त्रिगात नाम का सोम बनाने के पश्चात पान कराया, तो वह सान्त्वना को प्राप्त हो गए। १८-०१-१९७०

198. पूज्य महानन्द जी की गुरुदेव को ओषध

क्रोध पर संयम करना मानव के लिए बहुत अनिवार्य रहता है, परन्तु गुरुदेव परम्परागत ऐसी रही है कि पर उपदेश बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं, परन्तु किया भी क्या जा सकता है, अभ्यास रहा है, मैंने भी कुछ काल में अभ्यास किया, उसमें संशय भी बनता रहा, परन्तु यह संशय किस ज्ञान का, मुझे भी आज किन्हीं-किन्हीं वाक्यों में व्याकुल होना ही होता है, क्योंकि सदैव गुरु की छत्र छाया में पनपा हूँ। और मुझे पूज्यनीय का अब भी ऐसा प्रतीत होता रहता है, कि जैसे मैं उनकी लोरियों में एक परम उपदेश को पान कर रहा हूँ। रहा यह जगत कि क्या कह रहा है, मुझे इस जगत का कदापि भी संकोच नही होता और पूज्यनीय गुरुदेव का हृदय में इतनी शुद्धता है, कि उनका वर्णन भी नही कर पाता, क्योंकि ऐसा आश्चर्यजनक जो दृश्य है, मैं संसार में दृष्टिपात करता रहता हूँ। यह आज से नही परम्परा से, किस ब्रह्मवेत्ताओं से यह सब सान्त्वना को प्राप्त होता रहा है। उसमें न तो मुझे किसी प्रकार का संशय ही हो पाता है और न आगे होने की सम्भावना रहती है क्योंकि सदैव समय पर प्रेरणावत करता रहता हूँ। परन्तु इस वार्त्ता से मैं बहुत ही दुखी होता चला जा रहा हूँ। इसका एक ही उपाय मैंने वर्णन किया था कि मेरी भोजाई का कर्तव्य सदैव गो घृत का पान कराना, गो दुग्ध का पान कराना। संसार में जितना भी क्रोध आता है, वह जानकारी के कारण अधिक आया करता है। क्योंकि एक मानव जिसको जानता नही है, उससे मानव को क्रोध भी क्या आता है क्योंकि उसकी प्रवृत्तियों को यह जानता ही नही हैं। जिसकी प्रवृत्तियों

को जानने लगता है, उसी को क्रोध की मात्रा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। १८.०१.१९७०

199. महापुरुषों पर आक्रमण

रहा यह वाक्य कि संसार में हो क्या रहा है, क्या होने जा रहा है, मैं केवल सदैव एक वाक्य यही प्रगट करना चाहता हूँ, कि मानव के हृदय में या गृह अकृतों के हृदयों में होता रहता है, तो मानव को उससे कदापि संकुचित नही होना चाहिए, क्योंकि वह तो सदैव जो मानव जिससे प्रीति करता चला आया है, यह परम्परा का वाक्य है उसके ऊपर नाना प्रकार के वांछनीय शब्दों का आक्रमण होता रहता है, उन शब्दों से यह मानव प्रभावित नही होता, वह मानव उस काल में तो प्रभावित होता, यदि उस आक्रमण को प्रायः मानव करने लगता है, तब तो यह कई गुणा पापी बन जाता है, परन्तु जब उन शब्दों का, उस मानव के ऊपर इतना वांछनीय शब्दम और उस पर इतना मर्दन है, इतना उस पर संयम है, यह जगत स्वयं पापी ही बनता रहता है, इससे संकुचित मुझे नही आ पाता, परन्तु कोई भी अशुद्ध वाक्यों में प्रतिपादन आ जाएं।

200. गुरुदेव में क्रोध के संस्कार परंपरा से

मैंने आज से पूर्वक काल में यह कहा है कि यह समाज आज तो कोई आक्रमण कहीं हो रहा है परन्तु यहाँ जितने भी ऐसे पुरूष आए हैं, सदा से ही आक्रमण होते चले जाने वाला है, मैं इस वाक्य की पुनःरूक्ति नही देना चाहता, परन्तु केवल एक वाक्य प्रगट करना चाहता हूँ कि मेरी यह आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है, परन्तु मेरी भोजाई का, पुत्री का सभी का यह कर्तव्य है कि क्रोध के आने का कोई मुख्य कारण नही बनना चाहिए। एक वाक्य से यह सदैव दुखित होते चले आए हैं, वह मानव इनके हृदय में परम्परा एक रचना है, कोई भी मानव मन का इतना संकुचित बन जाता है। दूसरों की पुत्रियों पर आक्रमण किया जाता है, मैंने सदैव किए हैं, उसको कितने सुन्दर रूपों से इनकी सान्त्वना रहती है, वास्तव में जहाँ यह इतने क्रोधित होते रहते है, वहाँ कितने त्रुटियों पर कदापि भी इनका विचार ही नही हो पाता। क्यों नही हो पाता? क्योंकि अन्तःकरण में न तो वह संस्कार है और न उसका विचार आता है, परन्तु क्रोध के संस्कार तो परम्परा से रहे हैं। इसीलिए क्रोध की मात्रा उत्पन्न होना इनके लिए स्वाभाविक है, परन्तु जहाँ यह वाक्य है कि एक मानव है परन्तु वह दूसरों की कन्या पर आक्रमण करना चाहता है, परन्तु उनका प्रभाव, उसका कृत, उसका चिन्तन कदापि नही हो पाता, मूल कारण उसका यह है क्योंकि उसके अन्तःकरण में उसके संस्कार करोड़ो जन्मों को भी संस्कार ऐसा नही है वह उद्बुद्ध हो सकता है, मानव के समीप आ सकता है। परन्तु जहाँ संस्कार उत्पन्न होते ही नही, वहाँ ऐसा आना भी कोई स्वाभाविक नही हो पाता। परन्तु इसमें मेरा हृदय सदैव प्रसन्न रहता है

201. गुरुदेव की महानन्द जी पर कृपा

मैंने सदैव धृष्टता की है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कितनी सान्त्वना दे करके, कितना उपवास कराया, औषधियों का पान कराया, पुत्री को नाना शिक्षा देकर के मुझे आक्रमणों से सान्त्वना दी है, मैं उसका कितना कृतज्ञ रहता हूँ। मैं कितना आभारी बना रहा हूँ। उस कार्य में परन्तु सदैव यह जानता रहता हूँ, कि ऐसे-ऐसे कार्य मानव के समीप प्रायः आते रहते हैं अहा मैं सदैव धृष्टता में रहा हूँ। आज यदि मैं स्थूल शरीर में परिवर्तन हो जाऊं तो हो सकता है कि मेरा वह संस्कार उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है, परन्तु उससे मुझे कोई संकुचितता नही हो पाता, इसीलिए मैं आज यह एक वाक्य उच्चारण करना अवश्य चाहता हूँ कि एक सदैव मेरे पूज्यनीय गुरुदेव को क्रोध की मात्रा इतनी नही आनी चाहिए, क्योंकि अनानायास का जो क्रोध होता है, अशुद्धवत वाक्य उच्चारण करना, दूसरो से श्रवण करना, यह बुद्धिमता का कार्य नही होता, परन्तु इनको बुद्धि कौन लाए, वाक्य उत्पन्न है। १८.०१.१९७०

202. महर्षि भारद्वाज जी की पुत्री पर आक्रमण

एक समय महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा था कि भगवन! आपकी पुत्री ने मेरी पुत्री और भुजों में नाना प्रकार का आक्रमण करके रक्त और मेरी वह पुत्री समाप्त हो गई, मैं भी आपकी पुत्री को नष्ट करना चाहता हूँ। उन्होंने भारद्वाज से कहा कि मैं इस वाक्य को कदापि स्वीकार नही करूंगा। क्योंकि मेरी पुत्री में किसी प्रकार का दोष नही हैं, यदि मेरी पुत्री में किसी प्रकार का दोष हो, तो वास्तव में उसे मैं अपने भुजों से नष्ट कर सकता हूँ परन्तु ऐसा नही होगा कि तुम्हारी पुत्री स्वयं दोषी हो, और पुत्री पर अनायास ही आक्रमण हो। उससे जो कुछ हुआ, वह यथार्थ हुआ, तुम में इतना बल नही है, कि तुम मेरी पुत्री को इस प्रकार नष्ट कर सको, क्योंकि यदि तुममें इतना बल उत्पन्न हुआ होता, तो तुम्हारी पुत्री तुम्हारे गृह में उत्पन्न होने वाली इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त नही हो सकती थी।

महर्षि भारद्वाज के गोत्र में इस प्रकार की महान क्रान्ति आई, महर्षि भारद्वाज के मस्तिष्क में एक महान क्रान्ति उत्पन्न हो गई। उस समय जब वह क्रान्ति उत्पन्न हुई, तो रात्रि काल में ही पूज्यनीय गुरुदेव के आँगन में से ही, उस पुत्री को अपने आँगन में धारण कर लिया और उसे धारण करने के पश्चात जब निद्रा से जागरूक हुए और कहा अरे, भारद्वाज! तुझमें इतना बल नही है या तो उस कन्या को त्याग दीजिए, अन्यथा उस कन्या के अपराध से तेरा मस्तिष्क फट जाएगा।

जब यह वाक्य आया तो महर्षि भारद्वाज ने कहा कि मेरा मस्तिष्क ही नही फटेगा तुम्हारा मस्तिष्क तो फटने वाला है। मेरे पूज्यनीय गुरुदेव ने क्रोध की मात्रा से जो वाक्य उच्चारण किया, उसमें भारद्वाज के मस्तिष्क में एक पीड़ा हो गई और पीड़ा होने के पश्चात कन्या को त्यागना पड़ा। त्याग देने के पश्चात महर्षि भारद्वाज ने कहा कि कैसे हो सकता है कि मेरा सुकृत नष्ट हो जाएं? उन्होंने कहा था, तुम्हारा सुकृत उस समय नष्ट हो गया था, जिस समय गर्भ से तुम्हारी कन्या का जन्म हुआ है, वह महाराज वृष्ट की पुत्री थी, परन्तु वरतेन्तु ब्रह्मचारी से उसने मोह कर लिया था, उसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि कन्या को लाने के पश्चात तुम्हारी पुत्री भी इसी प्रकार की दोषी बनी है, तुम अपनी पत्नी को दोषी क्यों नही उत्पन्न कर रहे हो। महर्षि भारद्वाज को इसका इतना ज्ञान नही था और अब कर भी क्या कर सकते थे, मेरे हृदय में उस काल में ऐसी क्रान्ति उत्पन्न हुई कि क्यों न महर्षि भारद्वाज को नष्ट कर दिया जाएं, परन्तु उस समय पूज्यनीय गुरुदेव ने कहा कि कदापि भी नहीं, महर्षि भारद्वाज तपस्वी हैं महान हैं इनको इसका परिणाम स्वयं प्राप्त हो जाएगा।

203. क्रोध

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः है कि अपने विचारों में हर प्रकार से स्वतन्त्र रहे हैं परन्तु इनकी स्वतन्त्रता में अन्तर्द्वन्द्व तो उस काल में आ सकता है, क्योंकि मानव के तीन कारण होते हैं, या तो कोई मानव कामी होता है और उसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है, यदि कोई मानव अकृत होता है, उस मानव में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व आ सकता है, परन्तु इनमें कोई वाक्य ऐसा नही है, केवल क्रोध की मात्रा से क्रोध में मानव सदैव स्वतन्त्र रहता है, क्यों क्रोध में कोई भी वाक्य उच्चारण किया जाता है, इसमें वह स्वतन्त्र है और उसके ऊपर टिप्पणी करने में भी स्वतन्त्र हैं और उसके ऊपर सान्त्वना देने में भी सदैव स्वतन्त्र रहता है।

जब महर्षि भारद्वाज ने कन्या को त्याग दिया, तो कन्या ने कहा कि दुष्ट भारद्वाज!तुझे लज्जा नही आती। तूने अपनी कन्या से विचार विमर्श नही किया, विचार विनिमय करता, तो तुझे आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की गोद में से अपने अकृतों में धारण नही कर सकता था, आज तू पाप से संसार को विजय करना चाहता है परन्तु पाप से यह जगत कदापि विजय नही होता विजय तो महानता से हुआ करता है

जब इस सम्बन्ध में तुम मेरे से शास्त्रार्थ करोगे या ब्रह्मवेत्ता बन कर आओगें, मेरे समीप, उस समय मैं स्वयं तुम्हारे आँगन को स्वीकार कर जाऊंगी, यदि आपको अपनाना है, तो तेरे से मेरा एक ही वाक्य है, कि किसी काल में महान ऋषियों की एक महान सभा होनी चाहिए और उसमें मेरा और आपका शास्त्रार्थ होना चाहिए, जब शास्त्रार्थ हो जाएगा, उस समय मैं आपके स्वयं स्वामीतव को प्राप्त हो जाऊंगी, परन्तु यह वाक्य होने वाला नही था।

204. महर्षि जमदग्नि के आश्रम में सभा

जमदग्नि महर्षि के आश्रम में जब सभा हुई तो महर्षि भारद्वाज परस्त हो गएं। जब महर्षि भारद्वाज निःशब्द हो गएं, तो कन्या उसके मस्तिष्क पर वज्र का आक्रमण करने के पश्चात अपने आश्रम में प्रविष्ट हो गई। बुद्धिमानों का ऐसा समाज नही होता था, वहाँ केवल प्रतिभा मे जो पाप का शास्त्रार्थ होता, वह भी मानव को नष्ट करता रहता है। महर्षि जमदग्नि ने भारद्वाज से एक वाक्य कहा था कि सदैव तुम्हारे मन में एक ग्लानि होने के कारण तुम एक कन्या से परास्त हो गएं हो। यह हमारी सभा में पहला अवसर है इस प्रकार का। मैं भी उस सभा में प्रविष्ट हुआ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे भी उस सभा में प्रविष्ट किया, क्योंकि किसी प्रकार का ऐसा वाक्य होने लगे, परन्तु इतनी स्वतन्त्रता रही कि कन्या पर कौन आक्रमण कर सकता था, बुद्धिमानों का समाज था भारद्वाज के मन में इस प्रकार की ग्लानि रही परम्परा से।

अहा! मुझे ऐसा सौभाग्य सदैव प्राप्त होत रहा है, मैं हर्षित होता रहता हूँ। परन्तु एक वार्त्ता का मुझे कितना बड़ा दुख होता रहता है, उस दशा में सदैव व्याकुल रहा हूँ। परन्तु यह क्यों हैं वह इसीलिए है, क्योंकि क्रोध की मात्रा अधिक होने के कारण। क्रोध की मात्रा का मैंने एक ही उपाय निर्धारित किया है कि जल कृत कराके पान करा, गऊ दुग्ध का पान कराना, गऊ घृत का पान कराना, यह मेरे पूज्यनीय गुरुदेव का सदैव परम्परा से औषध रहा है, जिससे इनका क्रोध शान्त हो सकता है, परन्तु अनानास भी क्रोध नही आता, किसी वाक्य पर हृदय में ऐसी प्रतिष्ठा हो जाती है और वह वाक्य इनके समीप कोई नवीन वाक्य नही है, एक ही चटाई को ले करके वह चल देते थे, तो हम आश्चर्य करते थे कि कितना ज्ञान है परन्तु क्रोध के कारण किना अज्ञान इनके समीप आ जाता है।

205. गरुदेव का पुत्री से संवाद, क्रोध

पुत्री से एक समय इस प्रकार का विवाद हुआ और विवाद किस वाक्य पर था कि दोनों का एक विचार-विनिमय चल रहा था, कि ब्रह्म क्या है? परन्तु विचार चलते-चलते इस प्रकार का विवाद बढ़ा कि अन्त में नेति पर आ गएं और नेति पर आ जाने के पश्चात कोई ऐसा वाक्य आया कि पुत्री ने कहा कि-प्रभु! यदि मेरा सुकृत है, यदि आप पर चला जाएं, तो उसका क्या कारण होगा, जब ऐसा वाक्य आया तो उन्होंने कहा कि हे पुत्री! सुकृत देना कोई आश्चर्य नही होता, सुकृत को मैं ग्रहण कर सकता हूँ, तुम्हारे सुकृत को मैंने सदैव प्रबल किया है, रहा यह वाक्य कि हमारा सुकृत को अपने में हनन कर लूं, यह मुझे शोभा नही देता, इस पर पुत्री ने कहा कि-प्रभु! ईश्वरीय सृष्टि में इसमें क्या पाप है, तार्किकता से कोई पाप नही,

206. गुरुदेव की अप्रसन्नता

अन्त में यह रहा कि मनों की माला ले करके उन्होंने आक्रमण किया और कहा कि तुम अपने सुकृत को अपने सिर पर अकृत कर लो, मैं यहाँ से चला। क्रोध की मात्रा इतनी आ गई, पुत्री स्वयं व्याकुल होने लगी और कहा-प्रभु! मैंने केवल तर्क के नाते और ज्ञान के नाते, आपसे प्रश्न किया था, मेरा यह वाक्य नही। मेरा जो सुकृत उसका अभिप्राय यह नही है, मेरा जो पुण्य है, उसे आप क्रोध की मात्रा से नष्ट करना चाहते हैं, परन्तु एक सूक्ष्म सा आसन था, उसे ले करके, चार योजन की दूरी पर एक कृत आसन था, उस आसन पर जा विराजे। अब किसको ऐसा साहस था, जो इनको जाकर लाए। मैंने स्वय ही कहा कि हे पुत्री! हम दोनों ही चलें। दोनो गएं, चरणों की वन्दना करने के पश्चात आश्रम में प्रविष्ट कराया।

207. पूज्य महानन्द जी द्वारा गुरुदेव का पूर्व वृतांत

एक वाक्य नही, नाना वाक्य इस प्रकार के परम्परा से प्रगट करता रहा हूँ। यही मूल कारण है कि उसके संस्कार आज भी विद्यमान हैं, मैं एक वाक्य यह उच्चारण करना चाहता हूँ। घृणा से तो मैं होने नही देता, जिससे इनकी परम्परा या प्रतिष्ठा में किसी प्रकार की हानि हो जाएं। परन्तु रही यह वार्त्ता की संसार में जहाँ प्रायः ऐसा होता रहता है, आज मैं, एक वाक्य यह अवश्य उच्चारण करना चाहता रहता हूँ। कि ऐसे प्राणियों को, कलियुग के प्राणियों को, अपने आँगन में धारण करके उन्हें शिक्षा देनी चाहिए कि वह अपने मुखारबिन्दु ऐसे अशुद्ध शब्दों का प्रतिपादन करना यह कोई शोभा नही देता, परन्तु कोई नही गुरुदेव तो स्वतन्त्रता में परिणत रहते हैं, जिनको इतना ज्ञान नही हैं, जिनको इतना प्रध नही हैं उनको अपने आँगन में धारण करके और यह शिक्षा देनी चाहिए। कि तुम्हें इन शब्दों का प्रतिपादक करना कोई शोभा नही देता। परन्तु यह हमारा ग्राह, कई प्रकार की हानि होती है परन्तु श्रेय केवल किसी को नही होता, यह सब परमपिता परमात्मा को प्राप्त होता रहता है।

अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि जहाँ विवाद की मात्रा है परन्तु अन्तःकरण में तो विवाद होता नही

और बाह्य इतना विवाद उत्पन्न नही होता, इसमें मानव को सान्त्वना देना हमारा सभी का कर्तव्य है, क्योंकि आपत्ति काल में सहायक होना भी मानव का पुण्यवर्धक होता है, मुझे कोई आवश्यकता नही थी इन वाक्यों को उच्चारण करने की, परन्तु मैंने कुछ सूक्ष्म से बहुत से आंकड़े प्रस्तुत किए हैं, मुझे समय मिलगा तो मैं पुनः इनसे और भी साहस की चर्चा। किसी काल में प्रगट करूंगा। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज बड़ी ही पोथी का वर्णन किया है परन्तु बहुत समय हो गया, इन वाक्यों को किए हुए। इन वाक्यों को आज उच्चारण करने की कोई आवश्यकता तो थी ही नही। परन्तु तुम यह धृष्टता परम्परा से करते चले आए हो, कोई वाक् नही, संसार में यह प्रायः रहा है कि शुद्ध सा अमृत का पान करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार रहा है और उसमें सदैव हम उपदेश पान करते रहे हैं, जीवन हमारा सदैव परम्परागतों से सुगठित रहा है रहा यह वाक्य कि संसार में जो भी जन्म लेता है उसमें किसी न किसी प्रकार का एक न एक अवगुण अवश्य होता है। परन्तु परा उपदेशक इसका मन्थन बहुत कुछ किया है, अब इन वाक्यों को विराम देना, हमें भी शोभा दे रहा है। १८.०१.१९७०

208. पूज्य महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं परन्तु इनकी प्रेरणा के आधार पर मुझे आज यज्ञ की पद्धति के सम्बन्ध में, यज्ञमान के सम्बन्ध में, मुझे स्मरण आ रहा है। १७.०२.१९७०

209. गुरुदेव की शरण में महानन्द जी

संसार में केवल साधारण प्रजा पर कदापि दोषारोपण नहीं करना चाहिए। न प्रजा कदापि दोषारोपण के योग्य होती है। जब राजा ऊँचा होता है, तो प्रजा स्वयं ऊँची बन जाती है। जब योगी ऊँचे होते हैं तो स्वयं संसार ऊँचा बन जाता है। साधक स्वयं ऊँचे बन जाते हैं। साधक उस काल में ऊँचा बना करता है, जब ऊँची होती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ऐसा ही कहा है, महर्षि पिप्पलाद आश्रम में, मैं संसार में एक दुराचारता से ऊपर उठकर ऋषि की पवित्र भूमि पर पनपा हूँ, मेरे हृदय में उस समय एक विडम्बना थी। क्या मैं ब्रह्मवेत्ता बनना चाहता हूँ? अपने सूक्ष्म शरीर को जानना चाहता हूँ। परन्तु जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आ पहुँचा, तो उस समय यह नियम कराया गया, गुरुदेव की मुद्गल गोत्र में उत्पन्न होने वाली पुत्री ने भी मुझे नाना प्रकार की ताड़ना दी। परन्तु मैं कहाँ शान्त होने वाला था। उस समय पूज्यनीय गुरुदेव ने कहा कि तुम योगी बनना चाहते हो? मैंने उनसे कहा कि प्रभु!मैं आपकी शरणागत आ गया हूँ जैसा आप चाहते हैं, वैसा मुझे बना सकते हैं। तब मेरे पूज्यनीय गुरुदेव ने कहा था यदि आज तुम ऊँचा बनना चाहते हो, तो नाना प्रकार की औषधियों का पान करना होगा। इस समय तुम्हारे मन का शोधन होगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे बारह वर्ष तक पांचांगो का पान कराया। जो बेल के पांचांग का पान कराने के पश्चात, पीपल का पांचांग कराया, बट वृक्ष का पांचांग का पान कराया। बारह वर्ष तक इस प्रकार की कठोर तपस्या करने के पश्चात मुझे यह प्रतीत हुआ था, कि आज मेरा मस्तिष्क ऊँचा बन गया है। क्योंकि मस्तिष्क का जो सम्बन्ध है, वह मानव की प्रवृत्ति से होता है जो अन्तःकरण में संस्कार होते हैं, अन्तःकरण में जो प्रवृत्तियां होती हैं। उन प्रवृत्तियों से मनुष्य का मस्तिष्क अधिक सम्बन्ध होता है।

210. महानन्द जी का जीवन

आज मैं उन वाक्यों को प्रकट कराना चाहता हूँ, जिन वाक्यों में मेरे जीवन की प्रतिभा सदैव विराजमान रही है। उसके पश्चात जब मुझे यह निश्चय हो गया और पूज्य गुरुदेव ने जब आन्तरिक निरीक्षण किया, तो उस समय मध्य रात्रि को मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जागरूक हो रहे थे, परन्तु उनकी चर्चा चल रही थी, कि यह बालक तो अभी उज्ज्वल नहीं बना है। क्योंकि इसके अन्तःकरण में तो ऐसे संस्कार हैं, जिन संस्कारों से मानव भ्रष्ट हो सकता है। इसी समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा। इसको सोमरस का पान कराना चाहिए। बारह वर्ष के लिए मुझे संकल्प करा दिया, कि तुम सोमरस का पान करो।

211. सोमरस

सोमरस क्या होता है? उसमें एक सुमेन नाम की औषधि होती है, सममुना नाम की औषध होती है, सेलखण्डा होती है, कोकजंघा होती है, सोमगागिनी होती है। नाना प्रकार की औषधियों का अग्नि में तपा करके सोमरस बनाया जाता है। उसमें क्या प्रभाव होता है? यह मैं निर्णय करा देता हूँ, जो मुझे अनुभव हुआ है। उसमें यह होता है कि जो मन की गति है, जो संस्कारों को लाती है, जो स्वप्न में मुझे सदैव बाध्य करती रही। उस समय अप्रतम ब्रह्म उसका पान कराने के पश्चात मेरे मन की गति संस्कारों की गति थी वह मन्द हो गई। मन्द हो जाने के पश्चात इसमें मेरी साधना में प्रवृत्ति हो गई। क्योंकि साधक जो होते हैं, वे संसार में अधिक नहीं होते है साधक संसार में कोई कोई होता है। जैसा भगवान कृष्ण ने भी कहा है।

मुझें स्मरण आता रहता है, जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट होते थे, उस समय पूज्यनीय गुरुदेव प्रकट कराते थे कि संसार में महापुरुष कोई कोई होता है। उन महापुरुषों में भी आत्मा को जानने वाला कोई कोई होता है। आत्मवेत्ता में भी पूज्यपाद कोई-कोई होता है। परन्तु ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था। १८.०२.१९७०

212. गुरदेव की बारह वर्षी बालिका

शिक्षक संसार में बहुत होते हैं, परन्तु उसको अपने में क्रियात्मक जीवन में लाने वाले व्यक्ति सूक्ष्म हैं क्योंकि यहा केवल महान पुरूषों का आचरण करने वाला राजा महारजा प्रजा सभी होते है उसका अनुकरण जब सुन्दर रूप में किया जाता हैं, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उसी काल में जगत सुन्दर और धार्मिकता में परिणत होता चला जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है, यहाँ उच्च ब्राह्मणों की आवश्यकता हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के केवल मात्र बारह वर्ष की अवस्था थी, एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ जा पंहुचे, महाराजा अश्वपति के यहाँ कुछ विचार-विनिमय होना था।

परन्तु उस विचार-विनिमय कें केवल, आदर कुछ सूक्ष्म नही रहा, केवल उनके उच्चारण करने में कुछ संकीर्णता रही, उस बालिका के दृष्टिपात करने के नाते, उसी समय राजा को कहा हे राजन! क्या तू शुद्ध है, तू राजा के योग्य नही हैं, महाराजा अश्वपति शान्त हो गएं, अश्वपति ने कहा यह बालिका मुझे क्या उच्चारण कर रही है, जैसे कोई ऋषि पत्नी मुझे वाक्य प्रकट कराती हैं, यह बालिका ही तो है परन्तु उस समय उस बारह वर्षीय कन्या ने कहा था कि ऋषि पत्नी तो बहुत ही समय के पश्चात बना जाता हैं परन्तु मैं एक बालिका हू, हे राजा! तू राजा के योग्य नही हैं, तेरी वाणी तेरा हृदय तो शुद्ध नही हैं, जिस राजा का हृदय शुद्ध नही, उसके राष्ट्र में तो आना भी हमारे लिए पापवर्धक हो जाता हैं, जब इस प्रकार के धार्मिकवाद से, मानववाद में प्रवृत्ति हो जाती हैं, कि राजा को भी हृदय के वाक्यों को धिक्कारने वाला हो तो उसी समय धार्मिकता का संसार में प्रचलन हो जाता हैं, परन्तु इसी काल में यौगिक प्रक्रियाओं में एक सुन्दरवाद आ जाता हैं। १८.०२.१९७०

213. बालिका को गुरुदेव की शिक्षा

उस समय मेरी बालिका बोली कि प्रभु मेरी साधना को उज्वल बनाईए, उस समय कहा गया कि पुत्री !तुम विराजमान हो जाओ, मैं तुम्हारी साधना में सहायक बनूंगा, तब उस समय केवल चार वर्ष की अवस्था की बालिका थी, तो वह जब ध्यानावस्थित होने लगी, तो मैं एक औषध जानता था, उस औषध का नाम था योगाधृतिक, यह योग में बड़ी सहायक होती थी, मैंने उस औषधि को लिया ओर मस्तक पर उसका लेपन कर दिया, लेपन करने से उसकी चेतना उदगमता में परिणत हो गई, इतनी प्रज्वलित चेतना हो गई, कि उसको योग में प्रवृत्ति सहज हो गई। कारण क्या है जब व्यक्ति आत्मसुखी हो जाता हैं, तो व्यक्ति की आत्मा निर्मल हो जाता हैं, अहा उसमे किसी प्रकार का विडम्बनावाद, निराशावाद नही होता। विडम्बना भी नही होती, उस काल में मानव यौगिकता में बहुत ही शीघ्रता से, उस यौगिक प्रक्रिया में सफल हो जाता हैं। इसीलिए इस जगत से उदासीन होना बहुत अनिवार्य हैं। १८.०२.१९७०

214. गुरुदेव को वर्तमान का ज्ञान नहीं

मुझे स्मरण आता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो ज्ञान नहीं है। २०.०२.१९७०

215. महानन्द जी का सूक्ष्म शरीर से अवलोकन

जिस आसन पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, आज मैं उस आसन को जो दृष्टिपात करके अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा मैं बड़ा प्रभावित हो रहा हूँ। मेरा हृदय सदैव गदगद रहा है। २०.०२.१९७०

216. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरणा दे रहे हैं। ०६.०३.१९७०

मेरे प्यारे महानन्द जी ने अभी-अभी प्रगट कराया, मुझे प्रेरणा दी है। १०.०३.१९७०

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं। १०.०३.१९७०

217. महर्षि लोमश जी जी कि माता की इच्छा

जब महर्षि लोमश मुनि महाराज अपनी माता के द्वारा थे, सोमकृति माता भुन्जुक ऋषि महाराज की पत्नी थी। उनसे लोमश जी ने कहा-हे मातेश्वरी! मेरे लिए क्या आज्ञा है? उस समय माता ने भुन्जुक से कहा कि हे प्रभु! इसके लिए क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा तुम क्या चाहती हो देवी! तुम्हारी ईच्छा क्या है? क्योंकि पिता की इच्छा भिन्न होती है और माता की इच्छा भिन्न होती है। उस समय माता ने कहा कि भगवन्! मेरी इच्छा तो ऐसी है, कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक, संसार में तपस्वी होना चाहिए। क्योंकि जब माता का प्रिय बालक तपस्वी होगा, तो माता को धन्यवाद प्राप्त होगा। यह आगे आने वाला जो मानव समाज है, यह माता को आदर की दृष्टि से दृष्टिपात करता है। जब उसके प्रति श्रद्धा और निष्ठा हो जाती है, तो वास्तव में वह माता ही बन जाती है। इस प्रकार की धारा में चाहती हूँ। भुन्जुक ऋषि ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ। क्योंकि हमारा ब्रह्म गृह है, ब्रह्म की जानने वाली परम्परा हमारे यहाँ प्रायः रही है।

जब लोमश मुनि महाराज ने ऐसा कहा कि माता क्या आज्ञा है? तो माता ने आज्ञा दी-पुत्र! तुम तपस्वी बनो। तुम महान बनो। अपनी आत्मा का शोधन करो। क्योंकि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने का केवल एक ही अभिप्राय है। कि तुम अपने जीवन में कलंकित न हो जाना। जब माता का यह निर्देश, माता की यह पवित्र भावना, बालक के हृदय में ओत-प्रोत हो जाती हैं तो, बालक का अन्तःकरण माता के विचारों से इतना पवित्र बन जाता है, कि माता को आज्ञा का वह पालन करना लगता है।

हमारे यहाँ यह भी एक विचार है, ऋषि मुनियों का विचार है और प्रकृति के सिद्धान्त से भी यह विचार होता है कि माताओं को अपने जीवन से कितना सुन्दर बनना है। कितना तपस्वी अपने जीवन को बनाना है, क्योंकि यह तो वसन्धुरा है, वसुन्धरा कहते हैं मानव जिसमें वशीभूत रहते हैं। ऋषि मुनि इसी द्वारा से आते रहते हैं, जब माता के हृदय में एक निष्ठा उत्पन्न हो जाती है, पवित्रवाद आ जाता है, उस समय माता अपने बालक को कर्तव्य की वेदी पर परिणत कर देती है। यह नहीं उसका गर्भाशय ही इस प्रकार का होता है कि विचारधारा गर्भ में ही उसकी बन जाती है। ०२.०८.१९७०

218. गुरुदेव का सुमन राजा के यहाँ शिक्षण

मुझे भी परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से कई स्थानों में कई राजाओं में शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय महाराज सुमन के यहाँ यह चर्चा आई कि हमारे यहाँ शिक्षार्थी कौन होना चाहिए? मुझे वह समय और काल स्मरण आता रहता है, सुमन राजा के यहाँ शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। सबसे प्रथम आयुर्वेद का पण्डित बनना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेद में इस प्रकार की विद्या आती है, जो मानव के, ब्रह्मचारी के मस्तिष्कों का अध्ययन किया जाता है और मस्तिष्कों का अध्ययन करने के पश्चात आचार्य यह जान लेता है, कि यह इस विद्या का अधिकारी है, इस विद्या का अधिकारी नहीं है। आचार्य इसी विद्या

को पान कराता चला जाता है। ऐसा प्रायः हमारे यहाँ प्राचीन काल में होता रहा है, प्रतीत नहीं होता कि वह समय कहाँ चला गया।

एक समय महाराज सुमनम नाम के राजों के तीन पुत्र थे। जो ज्येष्ठ पुत्र था, उसके राष्ट्रीय, क्षत्रीय विचार नहीं थे! वह पाण्डित्य विचारों वाला था तीसरा पुत्र उनका अन्य विचारों का था और जो सबसे सूक्ष्म बालक था वह राष्ट्रीय विचारों में धनुर्वेद की विद्या में पारंगत था। राजा सुमनम से कहा हे सुमनम यह तीनों तुम्हारे पुत्र भिन्न-भिन्न विचारों के हैं, तुम क्या चाहते हो? कौन-सी विद्या दिलाना चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैं तो उन्हें धनुर्वेद की विद्या में पारंगत चाहता हूँ। उन्होंने कहा तो गुरु किसी और को चुन लिया जाए। क्योंकि मैं इनको यह शिक्षा दिलाने में असमर्थ हूँ। क्यों असमर्थ हूँ? क्योंकि ये तीन प्रकार की प्रवृत्ति के हैं, इनकी प्रकृति जिस प्रकार की है जो विद्या ये चाहते हैं, वह विद्या दिलाना चाहते हो, तो मैं इनका आचार्य बनने के लिए तत्पर हूँ। जब यह विचार आया तो सुमनम ने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा हो। तो तीनों पुत्रों को सुयोग्य बना दिया। तीनों पुत्र सुयोग्य बन गए। परन्तु अधिकार और अनधिकार की चर्चा कहाँ आती है? जहाँ अधिकारी को शिक्षा प्रदान नहीं की जाती। संसार में सबसे प्रथम धनुर्विद्या है, उसके पश्चात पाण्डित्य अभीष्ट है। पाण्डित्य में जितना विज्ञान है और जितना कर्मकाण्ड है, वह सब पाण्डित्य की दृष्टि में आ जाता है। और जैसे वाणिज्य है, जितना कर्मकाण्ड है, व्यापार है, व्यवहार है वह सब उस वाणिज्य के व्यापार में आता है। तीन ही प्रकार की धाराएं होती है मानव की। इसी प्रकार की विचारधाराओं को लेकर के संसार में अधिकार अनधिकार के ऊपर विचार विनिमय किया जाता है। तो यह समाज और राष्ट्र तभी ऊँचा बना करता है। गृह के गृह पवित्र बन जाते हैं। ०२.०८.१९७०

219. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे! महानन्द जो आज कुछ प्रेरणा दे रहे हैं। उसी प्रेरणा के साथ मैं अपने वाक्यों का प्रतिपादन करने वाला हूं। क्योंकि मानव के हृदय में ब्रह्म की प्रेरणा जागरुक होती है। उसी प्रेरणा के आधार पर मानव प्रेरित होकर के अपना कर्म प्रारम्भ कर देता है। अपने कर्त्तव्य की प्रतिभा पर मानव सदैव आरूढ़ हो जाता है। २९.१०.१९७०

मेरे प्यारे महानन्द जी आज मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं। २९.१०.१९७०

220. अश्वपति के राज में गुरुदेव

एक समय महाराजा अश्वपति ने पूज्यपाद गुरूदेव से कहा-प्रभु!? आप उसके अन्तःकरण को दृष्टिपात कीजिए, वह कैसा है। समाधिष्ट हो करके राजाओं का मस्तिष्क आयुर्वेद की दृष्टि से मस्तिष्क का निदान, हृदय का निदान, इन्द्रियों का निदान करने के पश्चात हमारे यहाँ राजा-महाराजा बनाया जाता है और ऐसा राजा जो योगियों के द्वारा, ब्राह्मणों के द्वारा चुना जाता है, वह प्रजा को सुखी बना देता है। १२.०२.१९७१

221. अश्वपति का पुत्र

महाराजा अश्वपति के पुत्र के अन्तःकरण को यौगिकता से दृष्टिपात करके अश्वपति को कहा कि हे अश्वपति! अभी तुम एक वर्ष तक राष्ट्र पालन ओर करो, एक वर्ष में यह सुयोग्य बन जाएगा। उस समय ऐसा ही हुआ। एक वर्ष तक अश्वपति ने ओर राष्ट्र का पालन किया, उसके पश्चात पुत्र को दृष्टिपात किया गया। वह इस योग्य बन गया कि उसको राष्ट्र देकर के वह ऋषि मुनियों के पास जा पहुंचे। अरे, उन राजाओं का प्रजा पर कितना प्रभाव होता था। १२.०२.१९७१

222. योगी से मानव सुधार

आज का हमारा वाक्य अब समाप्त। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। कोई कटु शब्द उच्चारण हो गया हो तो मैं क्षमा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य.....धन्य हो! मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक विचार दिया, परन्तु वह जो विचार है वह एक विडम्बना भरा विचार है और समाज के निर्माण का विचार है। मानव को यह विचारना है कि हमें अपने समाज को उसी प्रकार का बनाना है और राजा के राष्ट्र में ऊँचे-ऊँचे योग स्थान होने चाहिए, जिनका राष्ट्र के द्रव्य के खान-पान की व्यवस्था होनी चाहिए और जितने योगी होंगे उतना ही मानव का सुधार होगा, पवित्रता में परिणत हो जाएंगे। यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत शब्द उच्चारण किए। बहुत ही सुन्दर विवेचना की है। कहीं-कहीं कटु शब्द भी हुए हैं परन्तु आज का यह वाक्य समाप्त। अब वेद का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जीः प्रकृति भी पूर्ण है, प्रकृति के बिना संसार नहीं हमारा शरीर भी नहीं और ब्रह्म भी पूर्ण है परन्तु प्रकृति के आँगन में जाने में हीनता क्यों मानी जाती है?

पूज्यपाद गुरुदेवः जैसे हमारे शरीर में अहंकार है, रसना है, जितनी ज्ञानेन्द्रियां हैं, कर्म इन्द्रियां हैं, इनसे सूक्ष्म मन है, जो इन्हें नियन्त्रण में प्रस्तुत करता है, इस मन से सूक्ष्म बुद्धि है, और बुद्धि से सूक्ष्म अन्तःकरण है, जिसे हम चित्त भी कहते है और चित्त से सूक्ष्म वह आत्मिक ज्योति है और जितनी यह पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्म इन्द्रियां हैं, यह सब प्रकृति का स्वरूप है, प्रकृति में यह मन और बुद्धि यह चित्त भी आ जाता है। यह सब प्रकृति के आवेशों से आता है और जब हम इस पर नियन्त्रण करने लगते हैं ओर यह जितना प्रकृति का सूक्ष्म रूप है यह हममें समाहित हो जाता है। उसके पश्चात हम अन्तिम ज्योति पर जाते हैं। आत्मा प्रकति से सूक्ष्म है और परमात्मा आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है और परमात्मा आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है और परमात्मा चैतन्य है और उनके माध्यम में यह आत्मा है। सबसे सूक्ष्म गुण प्रकृति में है और उसके पश्चात जीव में है और सबसे अधिक गुण परमात्मा में है। जो जैसे गुणों वाले के द्वारे सत्संग करता है, वैसे गुण उसमें ओत-प्रोत हो जाते है जैसे कोई मनुष्य दुराचारी का सत्संग करता है, तो उसमें दुराचारी के अंकुर विराजमान हो जाते है, इसी प्रकार प्रकृति सूक्ष्म गुणों वाली होने के नाते और जीव उससे अधिक गुणों वाला होने के नाते, यदि वह जीव अपनी उन्नति चाहता है, तो अधिक गुण वाले से उसका सम्पर्क होना चाहिए और जब वह प्रकृति के आँगन में आ जाता है, प्रकृति का सत्संग करता है, तो उस समय उसके द्वारा हीनता ही आती चली जाती है और वह हीनता को प्राप्त करता रहता है। उसे ब्रह्म के आँगन मे जाने से महान आनन्द प्राप्त होता है। प्रकृति सत है, जीव सतचित्त है, वह आनन्द के लिए इच्छुक रहता है

और आनन्द परमात्मा मे मिलता है और प्रकृति में आनन्द नहीं है। इसलिए प्रकृति का जो सम्पर्क है वह इतना लाभदायक नहीं होता। १२.०२.१९७१

223. गुरुदेव की स्मृति

मुझे स्मरण आता रहता है, आज मैं कोई विशेष वार्त्ता प्रकट करना नहीं चाहता हूं। १२.०४.१९७१

ब्रह्मरन्ध्र से सम्बन्ध

एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था-हे प्रभु! यह जो वेदों की शब्दावलियों की धारायें हैं, इसकी उपलब्धि कहाँ से होती है। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा था कि हमारा जो ब्रह्मरन्ध्र है जिसको हम अनहद कहते हैं, जब हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होता है दोनों का मिलान हो जाता है, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों का जो इसका विषय है उसकी सामग्री बन करके जब हृदय रूपी यज्ञशाला में आहुति देने के पश्चात वह जो सामग्री है वह कई गुनी वनस्पतियों की धाराओं को लेकर के सातवें जन्म प्रतीत करने लगती है, इसी प्रकार जब इन्द्रियों की सुन्दर-सुन्दर आभाओं की धाराओं को हृदय में अन्तःकरण की आकृत धाराओं के साथ में जब हृदय में उसकी आहुति दी जाती है, जो इन्द्रियों की सहस्रों-सहस्रों प्रकार की धाराओं का जन्म होकर के उनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से होता है। १३.०४.१९७१

224. करोड़ों करोंड़ों वर्षों के ऋषि विचार आज भी द्यौ लोक में

मुझे स्मरण आता रहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो यह वाक्य बड़े गौरव के साथ स्मरण था, वह वाक्य मुझे आज तक स्मरण आता रहता है। हमारे यहाँ करोड़ों-करोड़ो वर्षो की जो ऋषियों की वाणी होती है, जो ऋषियों के योग के विचार होते हैं वह आज भी इस द्यौ लोक में रमण कर रहे हैं, उन विचारों को वह योगी अपने में धारण कर लेता है, वह योगी अपने उन विचारों को आकर्षित कर लेता है जो सूक्ष्म शरीर है उसकी रश्मियों को अच्छी प्रकार जान लेता है। १३.०४.१९७१

225. योगाभ्यास से दिव्यात्माओं से सम्बन्ध

मैं यह वाक्य उच्चारण कर रहा था कि वह जो दिव्य आत्माएं हैं उनसे अपना सम्बन्ध करना है। मेरे प्यारे महानन्द जी! तुम्हें स्मरण होगा, कि हमारा जो परम्परा का अभ्यास माना गया है, जन्म-जन्मान्तरों के योगियों के अभ्यास के कारण ही मानव दिव्य आत्माओं से अपना समन्वय कर लेता है और उसके विचार, उसकी महान धारा, उसके मन की धारा, वाणी की धारा, और बुद्धि की धारा और अन्तः करण की धारा इतनी पवित्र हो जाती है।

226. परमात्मा की छाया

आज मैं इस वाक्य को और अधिक गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूं, क्योंकि ओर भी गम्भीर बनाया जा सकता है, इन वाक्यों को मैं केवल इतना ही उच्चारण करने आया हूं कि हम परमपिता परमात्मा की छत्र छाया में रहने वाले बनें। १३.०४.१९७१

227. गुरुदेव की स्मृति

आज मैं तुम्हें एक दिव्य वाक्य प्रकट करा रहा हूं। मुझे स्मरण आता रहता है, वर्तमान के समय में जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे स्मरण कराया है कि सौममिती नाम का एक वैज्ञानिक इस पृथ्वी मण्डल पर कितने समय परिक्रमा कर गया है। १३.०४.१९७१

228. गुरुदेव का लाखों वर्षों का अनुभव, दिव्य चक्षु

यह हमारा लाखों वर्षों का अनुभव रहा है। लाखों वर्षों से इस पर बड़ा अनुसन्धान करते रहे हैं। आज तो अपने आपत्तिकाल के कारण कुछ नहीं कहा जाता है, न इस की परिस्थिति को जान पाते हैं परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि न उच्चारण करने से कुछ करना बहुत ही सुन्दर है। वह समय कितना भव्य और महान था, जिस समय में मध्य रात्रि होती, उस समय अपने अन्तःकरण के प्रकाश से साधारण अक्षरों का बोधिक किया जाता था। मुझे स्मरण आता रहा है जिस योगी के दिव्य चिक्षु हो जाते हैं उनके लिए अक्षर रात्रि में भी निकट आ जाते हैं, उनको आभास होता है इस प्रकार का। १३.०४.१९७१

229. योगी की प्रक्रिया

वाणी उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है, कि आज हम इस योगी की प्रक्रिया को अच्छी प्रकार जानने वाले बनें, क्योंकि परमपिता परमात्मा का जो विज्ञान है, वह कितना महान है। सन्निधान मात्र से ही इस प्रकार का विज्ञान है, कि मानव उसमें चकित रहता है। जब धाराओं को वर्णन करने लगते हैं, तो साधारण प्राणी उनको पाखण्ड ही कह देते हैं, क्योंकि उनका मस्तिष्क वहाँ तक पहुंच नहीं पाता। अपने हृदय स्थल की, मस्तिष्क की, मन की रश्मियों को, जब तक नहीं जाना, तो वह कैसे उच्चारण कर दे कि वास्तव में यह यथार्थ है। क्योंकि अपनी कुछ वार्ताओं को प्रकट करने वाले प्राणी, इस प्रकार की वार्ताओं को एकत्रित कर लेते हैं, जिससे साधारण समाज में उसका नृत्य होता रहता है। जब उज्ज्वल पुरूषों में जाते हैं, महान पुरूषों में जाते हैं, दिव्य आत्माओं में जाते हैं, तो वहाँ यह प्रतीत होता है कि वेद क्या है, समाज क्या है, दिव्य जगत क्या है, और मोक्ष किसे कहा जाता है। मोक्ष को वही प्राणी पहुंच सकता है, जो नाना प्रकार के पंच महाभूत, पंचतत्व, जो होते हैं, इनमें जो तरंगों का जन्म होता है, उन तरंगों को अच्छी प्रकार जान लेता है, कि इतनी तरंगे अपने में अपृत्य अग्नि में होती है, इतनी वायु में होती हैं, इसी प्रकार कृतों सन्निधान होने लगता, उनका जो दिव्य स्वरूप है, वह दिव्य आत्मा अच्छी प्रकार जान लेते हैं। इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के प्रश्न उपलब्ध होने लगते हैं। तो आज हम अपनी इस महान पवित्र धारा को जानने वाले बनें, जहाँ मानव दिव्य आत्माओं के सत्संग करता है, दिव्य आत्माओं से अपनी शंकाओं का निवारण करने लगता है, वहाँ वाणी का एक सूक्ष्म नृत्य होता है, उसको दिव्य वाणी कहते हैं। उसी दिव्य वाणी का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से होता है, लिंग शरीर से होता है, और जहाँ इन सब तत्वों की तरंगे होती हैं, जिस मानव का दिव्य आत्माओं से भी सम्बन्ध होता है, उनका जब निग्रह हो करके, मन और प्राण दोनों की एकाग्रता हो जाती है। अणु की दो धाराओं का जब मिलान हो जाता है, उस समय यह अणु जिसे आत्मा कहते हैं, यह परमपिता परमात्मा के आनन्द में आनन्दित हो जाती है, जिसे मोक्ष कहा जाता है।

हम परमपिता परमात्मा की पवित्र धारा को जानने का प्रयास करते रहें। इन्द्रियों का जो विषय होता है, इसको जब हृदय में एकत्रित किया जाता है और उसमें ब्रह्मरन्ध्र का चक्र चलता है, जिसको अनहद कहते हैं, उस अनहद की जो ध्वनियां होती हैं, उन ध्वनियों को जानने वाला जो पुरूष होता है, वह व्याकरण की उत्पत्ति को जान लेता है। शब्दों की जो धाराएं होती हैं, वह भी मानव की रश्मियों से होती हैं। १३.०४.१९७१

230. देव का गुणगान

आज मैं अपने प्यारे देव की महिमा का गुणगान गाने चला हूँ, मेरे प्यारे महानन्द जी भी दो शब्दों की विवेचना प्रगट करेंगे, क्योंकि यह सदैव ज्ञानी ही बने रहते हैं, सदैव उत्कृष्ट इच्छा रहती है, कि मैं भी कुछ वाक् उच्चारण करूं तो आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ विचार प्रगट करेंगे। २२.०४.१९७१

231. गुरुदेव का महत्त्व

हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप इस प्रकार हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश में रात्रि नष्ट हो जाती है। रात्रि उसके गर्भ में परिणत हो जाती है, इसी प्रकार आज के हमारे जो शब्द हैं, जो उनके द्वारा हमने जिन शब्दों का अध्ययन किया है जिस यौगिकता का अध्ययन किया है, आज हम उनके द्वारा उनकी विवेचना प्रारम्भ करने लगते हैं। तो रात्रि का जिससे हमारे समीप आने लगता है। २२.०४.१९७१

232. गुरुदेव को वर्तमान का महानन्द जी द्वारा बोध

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आग्रह कर रहा हूँ, कि यह जो समाज है, यह रसना में इतना अशुद्ध बन गया है। आज इसमें वातावरण को, गृहों को अशुद्ध बना दिया है। २२.०४.१९७१

233. गुरुदेव की अन्तरिक्ष आत्माओं के साथ विराजमानता

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते थे, शब्द के द्वारा ही जब प्राण चला जाता है, आत्मा चला जाता है, इस वाणी के द्वारा, इस वाणी में भी ८४ प्रकार की धाराएं होती हैं। परन्तु एक अप्रेत जो शब्द के द्वारा यह आत्मा चला जाता है परिवार चला जाता है वह द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता है द्यौ लोक में रमण करने वाला अन्तरात्मा इस अन्तरिक्ष में आत्माओं के समाज के साथ विराजमान हो जाते हैं। आज वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि आज हम एक दूसरे में एक दूसरे की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते चलते जाएं। इन आत्माओं का जो स्रोत है, वह वास्तव में ब्रह्म ही तो माना गया है। ये सब गतियां ब्रह्म को प्राप्त होती रहती हैं। ब्रह्म ही इनका रचयिता कहलाता है। ब्रह्म ही इनका स्थान नियुक्त करने वाला है। ०९.०४.१९७१

234. महानन्द जी के प्रश्न

मेरे प्यार महानन्द जी के कुछ वैज्ञानिक रूपों को भी प्रकट करना है। उनके ऊपर भी मुझे कुछ अपना संक्षिप्त प्रकाश देना है। एक मानव जब चित्रण करता है, चित्त नाम की इस महान संस्कार को उद्बुद्ध करने को तत्पर होता है। ०३.०८.१९७१

235. आदि ब्रह्मा की वाणी का प्रभाव

एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक प्रश्न किया कि हे प्रभो! आपकी इस वाणी के प्रभाव में आ करके मृगराज भी मौन हो जाते हैं। हिंसक प्राणी हिंसा को त्याग देते हैं, इस वाणी का सम्बन्ध द्यौलोक से रहता है। क्या प्रभो! आप इस वाणी का यान बना करके लोक लोकाँतरों में रमण कर सकते हैं? उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था, कि हे पुत्रवत! मैं वाणी का यान बना लेता हूँ। इसका यान किस प्रकार बनता है। जब हृदय में विचार आता है, यह विचार मस्तक में जाता है, उसमें हुआ वाणी के मुखारबिन्द में आ जाता है, वही एक यंत्र बन गया। यदि हम हृदय के विचार को अगमता (गहराई) में ही, हृदय के विचार को जहां से वाणी का स्रोत चलता है, उस स्रोत को हम हृदय स्थल में ही, हृदय को पवित्र बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। वाणी को वहीं मौन कर लेते है, उसको मस्तिष्क में लाते हैं, उसमें जो तरंगे उत्पन्न होती हैं, उन तरंगों को जान करके उनके ऊपर सवार हो करके इस परमाणुवाद पर अपना इतना अधिपथ्य कर लेते हैं कि हिंसक परमाणु भी उस वाणी के परमाणु में आ करके निगला जाता है। ऐसा हो जाता है जैसा अग्नि में अन्न तपा करके उस अन्न में उपजाऊ शक्ति नहीं होती, इसी प्रकार हमारे यहाँ एक अमोघ शक्ति हो जाती है। उस वाणी के वाहन के द्वारा हम संसार का वशीकरण कर लेते हैं, हिंसक प्राणियों का वशीकरण कर लेते हैं। इसी प्रकार हमारा सर्वत्र का एक ही विचार रहता है, कि संसार का वशीकरण कर लेना चाहिए। संसार को एक महान ज्योति का दिग्दर्शन कराना चाहिए, जिससे चन्द्रयान का मगलयान का, शुक्रयान का, सब का एकीकरण होकर के समाज अपने अपने कर्तव्य का पालन करने में, अपनी-अपनी धाराओं में, अपने हृदय प्रकाश में रमण करता हुआ रात्री का जो संदेह रहता है वह समाप्त हो जाता है। ०३.०८.१९७१

236. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं वाक् उच्चारण करता हुआ कहा चला गया हूँ। मेरे प्यारे! तुम मुझे प्रेरणा दे रहे हो। ०३.०८.१९७१

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट कराया संसार का विज्ञान मुझे स्मरण आने लगता है, जब मैं संसार के विज्ञान में जाने लगता हूँ। ०४.०८.१९७१

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा थ कि यह जो चन्द्रमा है इस में आज का प्राणी भ्रमण कर रहा है। ०४.०८.१९७१

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे दृष्टिपात कराया। कल ही दिग्दर्शन करा रहे थे, कि विष्णु राष्ट्र में जो महाराजा गरुड थे, नाना लोक-लोकॉतरों तक उनकी उड़ान रही, बृहस्पति तक और ध्रुव तक उनकी उड़ान रही। हमारे ध्रुव नाम के आचार्य हुए हैं। ०४.०८.१९७१

मैंने अपने प्यारे महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि यह संसार चन्द्रयान पर जाने से कदापि ऊँचा नहीं बना करता। द्वापर के काल में महाराज भीम और उनके पुत्र घटोत्कच्छ दोनों की चन्द्र शालायें होती थी। जब वो शालाओं में विराजमान हो करके निर्माण करते थे। २३.०८.१९७१

237. गुरुदेव का महत्त्व

क्योंकि पूज्यपाद गुरूदेव के समीप कोई वाक्य प्रकट करना सूर्य और जुगनू का यह प्रमाण है। २३.०८.१९७१

238. गुरुदेव का अमूल्य जीवन

हमारे पूज्यपाद गुरूदेव का अमूल्य जीवन है, जब मैं इन जीवनों का दृष्टिपात करने लगता है तो मुझे बड़ा एक हर्ष होता है। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव के मृत लोकीय शरीर साधारणतया क्रिया में दृष्टिपात करता हूं, तो मेरा हृदय किसी-किसी काल में दुखित ओर किसी-किसी काल में प्रसन्नता होती है। आज मैं उन वाक्यों को प्रकट करने जा रहा हूं। २३.०८.१९७१

239. बरनावा भूमि

इसके पश्चात जब उनका एक साल वन के लिए रह गया वह बृहार पुरी को चले गये। बृहार पुरी इन्द्रप्रस्थ से दक्षिण भाग में मानी जाती है। जहाँ उन्होंने अपने जीवन को गुप्तचर रूपों से व्यतीत करने का प्रयास किया। यह तो वह स्थली है जहाँ मुझे भी, मेरे पूज्यपाद गुरूदेव को और भी नाना ऋषि-मुनियों को उस काल में आने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। २३.०८.१९७१

240. वायुमण्ड के परमाणुओं का हृदय को स्पर्श

आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ चर्चायें की है। उस पुरातन काल की चर्चायें की हैं, मुझे तो इसका अधिक भान नहीं है जैसा इन्होंने कहा है। उस यज्ञ शाला को तो दृष्टिपात करने का तो प्रायः हमें भी सौभाग्य प्राप्त होता रहा है परन्तु उसका साहित्य कुछ प्रतीत नहीं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने उस साहित्य की पुनारोक्ति की है। अभिप्राय यह कि हमें विज्ञान की वेदी पर महान और पवित्र बनना चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ ऐसा कहा है कि वायुमण्डल में ऐसे परमाणु हमारे हृदय को छूते हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि कुछ समय के पश्चात इस संसार में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। ऐसा यह उच्चारण कर रहे हैं। हो सकता है। परन्तु इस विचार में हमें भी अधिक नहीं जाना चाहिए। वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि हमें अपनी मानवता की रक्षा करनी है, अपने जीवन को सुन्दर बनाना है, वैदिक परम्परा को अपनाते हुए अपनी मानवीयता की रक्षा करते हुए इस संसार सागर से पार होना है। २३.०८.१९७१

241. आदि गुरुदेव से अध्ययन

मेरे प्यारे ऋषिवर! बहुत पुरातन काल हो गया, जब मैं अपने पूज्यपाद-गुरुदेव के चरणों में नाना प्रकार की उस वैदिक-विद्या का प्रायः अध्ययन करता रहता था। वह समय आज भी ऐसा स्मरण आने लगता है जैसे आज भी मैं उस महान देव पूज्यपाद-गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत हूँ। वह दृश्य स्मरण आता है, जिसमें मृगराज भी उस शिक्षा को पान करते थे। उस काल में मानव का हृदय इतना स्वच्छ हो जाता था। वेद के अनुकूल हृदय योगियों का हुआ करता है, जो मल विक्षेप आवरणों से पृथक हो जाते हैं। वैदिक प्रकाश से उनका हृदय प्रकाशित रहता है क्योंकि आत्मा तो प्रायः पिपासु रहती है। १६.०८.१९७१

242. अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग

मुझे स्मरण है एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ यज्ञ हुआ। वह वृष्टि-यज्ञ था। वृष्टि-यज्ञ में जो समिधा प्रदान की जाती हैं, तो वह इतनी स्वच्छ होनी चाहिए कि उसमें किसी प्रकार भी रूग्ण नहीं होना चाहिए क्योंकि समिधा अप्रोत कहलाया गया। १६.०८.१९७१

243. महानन्द जी की वेदना

आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपनी कुछ वेदनाएं प्रगट की हैं। इन वेदनाओं को हम तो अच्छी प्रकार जान नहीं पाते, इनके हृदय में क्या वेदना है? परन्तु इन वाक्यों में जो सारगर्भित जो वाक्य हैं, वह तो थे। इसके साथ-साथ कुछ कटुता की तो प्रतिभा रहती ही है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी क्या कल हम और भी सुन्दर वाक् प्रगट करेंगे। आज का वाक् अब यह समाप्त होता जा रहा है। १६.०८.१९७१

244. महानन्द जी की प्रेरणा

मुझे महानन्द जी का कुछ संकेत, इनकी प्रेरणाएं मुझे बारम्बार प्राप्त होती रहती है। कौन-सा काल ऐसा नहीं था जब इनकी प्रेरणा नहीं थी। परन्तु इनका संकेत जब मुझे प्राप्त होता है, तो मुझे कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता, कि हम क्या उच्चारण करने लगें। वेद का जो विज्ञान है अथवा ज्ञान है, वह नितान्त है। वह इतना क्रियात्मक मानव के हृदय में आना चाहिए, जिससे मानव का हृदय इतना पवित्र हो जाए कि हम वेद के उन वाक्यों का श्रवण करना ही नहीं, क्रियात्मक में लाना, अपने लिए सहज स्वीकार करें। परन्तु यदि हम वेद का अनुकरण नहीं करते, अपने जीवन में उनको धारण नहीं करते, तो वेद का पण्डित अक्षरों का बोधि भी वह वैदिक नहीं कहलाया जाता। तो इसीलिए हमें विचारना केवल यह है कि अपने जीवन को उसके अनुकूल बनाने का प्रयास करें।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे विज्ञान की चर्चाओं के सम्बन्ध की प्रेरणा दे रहे हैं। वायु परमाणुओं की प्रेरणा दे रहे हैं। यौगिक प्रेरणायें इनकी बारम्बार प्रगट रहती हैं। परन्तु मैं यह सदैव उच्चारण करता रहता हूँ कि हमारे यहाँ यह जो विज्ञान है, एक प्रकार का वन है, जिसमें जाने के पश्चात में मानव को वास्तव में कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता। कोई समय था, जिसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार-विनिमय होता रहा है। उत्तर प्रश्नावली में भी बहुत कुछ इस सम्बन्ध में टिप्पणियाँ भी करते रहे हैं। आज भी हमारा वह वाक्य प्रारम्भ होने जा रहा है। १७.१०.१९७१

245. गुरुदेव के गुरु का जीवन

जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत होता रहता था। जो योगाभ्यास करना चाहता है उसे सर्वत्र विषयों का ज्ञन होना चाहिए। आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिए, परमाणुवाद का ज्ञान होना चाहिए, औषधि का ज्ञान भी होना चाहिए, क्योंकि बहुत-सी औषधियां, वनस्पति एक प्रकार की हैं कि जब योगाभ्यास करते हैं, तो मस्तिष्क पर उनका लेपन किया जाता है, तो मस्तिष्क शान्त रहता है। मन की गति चंचल नहीं होती। क्योंकि अभ्यास तो होता ही है। परन्तु औषधि भी सहायक होती है। उन औषधियों का ज्ञान हमें होना चाहिए। हम इस प्रकार भी प्रायः माना करते हैं। जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव योगाभ्यास करते थे तो ३६

प्रकार की औषधियों का लेपन रहता था उस लेपन में कितनी सुन्दरता थी, कितना उनका हृदय शान्त रहता था, क्योंकि औषधियों में विद्युत होती है। औषधियों में हृदय की गति को सुचारू रूप बनाने की शक्ति होती है। जिनका हृदय व्याकुल हो जाता है अथवा हृदय गति करता-करता शान्त हो जाता है। उसे क्या करना चाहिए? यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रगट किया करते थे। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा अप्रिही, भूषणानि, क्रन्ति उनवाश्नी, सौमभु, आप्राति, बालछश्र, सौमकेतु इत्यादि औषधियों का शरीर पर लेपन करना चाहिए। ३६ दिन लेपन करने से हृदय ४० वर्ष के व्यक्ति का उसी गति पर आ जाता है, जो हृदय बाल्य काल में था हमारा। ऐसा हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है, परन्तु मैं आज इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रगट करना नहीं चाहता हूँ। मैं बेटा! आयुर्वेद के भयंकर बन में क्यों चला जाँऊ? आज मुझे इसमें जाने की इतनी शक्ति नहीं। १७.१०.१९७१

246. गुरुदेव की वाणी को किसको पान करने का अधिकार

आज वर्तमान के मानव को इन वाक्यों को श्रवण करने का भी अधिकार नहीं है। मूल कारण क्या है? क्योंकि इनको वही श्रवण कर सकता है। जिनका अनुभव होता है। और जिनका अनुभव होता है वही संसार में कुछ नृत्य कर सकते हैं।

247. गुरुदेव की वाणी अधिकार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी चन्द्र इत्यादियों की चर्चाएँ प्रगट की हैं। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के वाक्यों पर विचार करना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः हमारा क्या है? कि आज हम प्रत्येक वाक्य को अनुसन्धान की दृष्टि से दृष्टिपात करना चाहते हैं। मेरा तो परम्परागतों से ही, यह प्रायः विचार रहता है, कि मानव को अपनी उस मानवीयता को विचार-विनिमय, अनुसन्धान की दृष्टि से ही करना चाहिए, क्योंकि यदि मानव के साथ में अनुसन्धान नहीं है, विचार नहीं तो उस मानव का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता संसार में। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने राष्ट्र की चर्चाएँ प्रगट की हैं। १७.१०.१९७१

248. संसार प्रेरणा का आधार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि जहाँ संसार में दूसरों को जीवन देने की प्रेरणा नहीं होती, मृत्यु देने की प्रेरणा होती है वह जगत, वह राष्ट्र कुछ काल में भस्म हो जाया करता है, वह काल अग्नि के मुख में चला जाता है, यह जो अग्नि है जो नाना प्रकार के यन्त्रों की अग्नि है जो आज हमें एक भयंकर सी प्रतीत हो रही है। १७.१०.१९७१

249. पुत्र और बेटा शब्दों का वात्सलय भाव

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते हैं कि ऐसे शब्द न उच्चारण करो। परन्तु जब मुझे यह वाक्य स्मरण आता है तो मेरा हृदय प्रायः गद्-गद् होता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब मुझे पुत्र और बेटा कह करके जब प्रीति देते हैं, तो मेरा हृदय गद्-गद् हो जाता है। इसी प्रकार जब मैं समाज को यह उच्चारण करने लगता हूँ तो हृदय प्रायः गद्-गद् होता है। मैं यह क्या उच्चारण करने गया हूँ। परन्तु इसीलिए मैं अपनी ममतामयी माँ और अपनी पुत्रियों से यह मैं सदैव उच्चारण किया करता हूँ, आज से नहीं बहुत पूर्वकाल में, मैं जब पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आया, उसी काल से मुझे यह भान हुआ, मैं उसी के पश्चात बहुत कठोर तपस्या करने के पश्चात मुझे यह अधिकार प्राप्त हुआ, मैं श्रृंगार की चर्चाएँ उच्चारण करने का अधिकरी बन गया। १७.१०.१९७१

250. दीक्षा का अधिकार

इस सम्बन्ध में परम्परा की एक वार्त्ता मुझे आज स्मरण आती चली जा रही है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पहुंचा, तो मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से कहा कि प्रभु मुझे दीक्षित बना दीजिए। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, हे पुत्र! अभी तुम दीक्षा के इस योग्य नहीं हुए हो। दीक्षा के योग्य हो जाओगे, उस समय मैं तुम्हें दीक्षा अवश्य प्राप्त कराऊंगा। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने जब यह वाक्य कहा तो विचार इसी पर आता है कि दीक्षा का भी अधिकार होता है मानव को। जब तक अधिकार नहीं होता तब तक दीक्षा भी मानव को प्राप्त नहीं होती। ०४.१०.१९७१

251. गुरुदेव की स्मृति

मुझे यह संसार बहुत ही परम्परा से स्मरण आता रहता है। १३.११.१९७१

252. चित्त बोध

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे स्मरण कराया कि एक सूक्ष्म से चित्त को जान करके मानव यह जानता है कि मैंने सारे भौतिकवाद जाना है। १३.११.१९७१

253. चित्त में पठन पाठन का चित्रण

जिस अध्ययन को मैं आज कर रहा था, जिन शाखाओं का मैंने आज से बहुत पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन किया था, उस काल को कितना समय हो गया है। परन्तु आज भी मैं उसे वर्णन कर रहा हूँ। वह जो चित्त नाम की भूमि है उसमें उस पठन-पाठन के चित्रण हैं, चित्रवलियां हैं। १३.११.१९७१

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय मुझे वर्णन कराया और यह इन्होंने कहा कि आधुनिक काल का जगत यह स्वीकार करता है कि यह जो विज्ञान है चन्द्रमा में जाना, मंगल की कल्पना करना यह विज्ञान नवीन है। परम्परा का नहीं है। १३.११.१९७१

254. बालिका का प्रश्न इदन्नमम्

कि मेरी बालिका यह कहा करती थी, कि यज्ञशाला में भगवान अध्वर्यु कौन होता है? मैंने उसका उच्चारण करते हुए कहा कि जो द्रव्य का, सामग्री का स्वामी होता है। नाना प्रकार की जो सामग्री होती है, औषधियों का जो समूह होता है, उनका नाम ही तो सामग्री कहा जाता है। उसका जो अधिपति होता है, उसका अध्वर्यु कहा जाता है। जैसे परोपकार के लिए वनस्पतियों का जन्म होता है, ऐसे ही जो अध्वर्यु होता है, उसका भी ऐसा ही विचार होता है, ऐसा ही त्याग होता है, उसका अपने लिए कुछ नही होता इदन्नमम में उसकी प्रवृत्ति परिणत हो जाती है। १९.०२.१९७२

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे हैं। १९.०२.१९७२

255. महानन्द जी के लिए विनोद

मेरे प्यारे महानन्द जी बड़े धूर्त हैं, परन्तु ये धूर्त क्यों हैं? क्योंकि यह संसार की प्रत्येक वार्त्ता को मेरे द्वारा एकत्रित कर देते हैं अब मैं उसका उत्तर कहां तक दिए जाऊं। १९.०२.१९७२

256. महर्षि भारद्वाज का आश्रम

मुझे स्मरण आता रहता है कि भयंकर वनों में महर्षि भारद्वाज आश्रम में था, पर्वतों में उनका कैसा आश्रम? केवल वहां एक सूक्ष्म सा प्रबन्ध था, वहां सुन्दर यज्ञशाला थी। जिसमें नित्यप्रति यज्ञ करते, ओर उसी में वे अपने शिष्यों को निर्माणशाला में वैज्ञानिक परमाणुओं से सम्बन्ध में कुछ वाक्य प्रगट कराते रहते थे। महर्षि भारद्वाज एक महापुरूष होने के नाते उनके द्वारा सब प्रकार की पुनीत विद्या का निर्माण क्रियात्मक होता रहता था। यहां महाराजा सूर्य वन्द माम केतु ऋषि राजा उनके आश्रम में पंहुचे। उनकी ख्याति को पान करते हुए महर्षि भारद्वाज को जाकर नतमस्तक हो गये। नत मस्तक हो करके राजा ने कहा कि महाराज! मैं कुछ द्रव्य देना चाहता हूँ। उन्होंने कहा द्रव्य क्यों देना चाहते हो? महाराज आपके उदर की पूर्ति के लिए, आपकी साधना के लिए। उन्होंने कहा कि जो प्रारब्ध है वह हमसे दूर नही जाएगा। क्योंकि यहां नाना प्रकार की औषधियों का पान करते रहते हैं, उन्हीं के पान से हमारे उदर की पूर्ति होती रहती है, वे ब्रह्मचर्य आश्रम में परिणत हुए। परन्तु राजा ने बहुत-सा द्रव्य फिर भी प्रदान किया, परन्तु वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि संसार में भयंकर वनों में भी ऋषि महापुरूषों के द्वारा, राजा महाराजा अपनी आत्मिक शान्ति के लिए चले जाते हैं। परन्तु आत्मिक शान्ति उस काल में प्राप्त होती है। जबकि उसका स्वयं का मस्तिष्क भी ऊँचा महता हो। किसी प्रकार की विडम्बना न हो। वही तो संसार को ऊँचा बनाता चला जाता है। १९.०२.१९७२

257. स्मृति

मुझे परम्परा की वार्त्ताएं भली भांति स्मरण आती रहती हैं। २२.०२.१९७२

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में मुझे प्रकट कराते हुए कहा था कि यह संसार आध्यात्मिक वाद की वेदी पर आना चाहिए। परन्तु यह केवल घोषणा मात्र रह जाती है। आज मानव को घोषणा नहीं करनी चाहिए। मानव को आध्यात्मिक वाद को अपनी क्रिया में लाने का प्रयास करना चाहिए। जब प्रत्येक मानव इस समाज में अहा! आध्यात्मिकवाद की वेला पर रमण करने लगेगा, तो राष्ट्र और मानव वाद ऊँचा बन सकता है। २३.०२.१९७२

बरनावा भूमि के प्रति गुरुदेव की श्रद्धा

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का मृत लोक का शरीर का पूर्व का कोई ऐसा संस्कार भूमि के साथ में जुड़ा हुआ है। क्या जितनी हार्दिक श्रद्धा में है मैं नहीं जानता वह श्रद्धा किस लिए अगाध है? कितना ह्रदय ग्राही रहता है। २३.०२.१९७२

258. बरनावा में सफलता का आधार

मैंने इस लाक्षागृह के बहुत पुरातन काल से ही मैं इसकी विचित्रता को दृष्टिपात करता आया हूँ। इस पर कुछ सूक्ष्म तपस्याएं भी की हैं। परन्तु यहाँ क्या क्या नहीं हुआ। यह सर्वत्र यहाँ शमशान भूमि भी रही। यहाँ नाना प्रकार मेरी पुत्रियों के श्रृंगार को भी भ्रष्ट किया गया। यहाँ पुनः सुगन्धि भी आ गई। परन्तु इसका और भी पुनरुद्धार होना चाहिए। यह मानव में एक साहस और दृढ़ता समाज में एक महान क्रांति होनी चाहिए। इसीलिए वह क्रांति सत्य हो और हिंसा को त्याग करके होनी चाहिए। अहिंसा की क्रांति होगी, तो हम संसार में सफल होंगे। हिंसक क्रांति द्वारा मानव को सफलता प्राप्त नहीं। २३.०२.१९७२

259. बरनावा में महानन्द जी

मुझे स्मरण है कि एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज्ञा दी, जाओ द्रोणाचार्य की तुम स्थली को, उस शिक्षालय भवन को दृष्टिपात करके आओ। उस समय मैं आज्ञा पाते ही उस यज्ञशाला के लिए चल दिया। वहाँ जब मैं पहुँचा तो वहाँ एक यज्ञ हो रहा था, यजुर्वेद पारायण। यजुर्वेदम ब्रह्मे। दसवें अध्याय का पठन पाठन हो रहा था। उसमें राष्ट्रवाद का प्रायः वर्णन है। धनुर्विद्या के भी कुछ विशेष विचार है। इस प्रकार की विचारधारा जब मैंने वहाँ श्रवण की, तो उस समय मुझे भी समय दिया गया कि आप भी ब्रह्मचारियों को कुछ अपना उपदेश दें। मैने एक ही वाक्य कहा था ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य प्रवे है ब्रह्मचारियो! तुम्हें ब्रह्मचारी रहना है। तुम्हें ब्रह्मचारी बनकर के धनुर्विद्या को अपनाना है इसको निगलना है, इनको चरना है। चरने का अभिप्राय यह कि जो धनुर्विद्या के साथ में ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो वह ब्रह्मचारी संसार में कितना सौभाग्यशाली है। तो आज मैं सौभाग्शालियों की चर्चाएं प्रकट करता चला जा रहा था। २४.०२.१९७२

260. यज्ञ

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते थे कि संसार में विचारों का यज्ञ करो। सबसे पूर्व विचारों का यज्ञ करने के पश्चात जब कर्म कांड हो करके यज्ञ किया जाएगा, तो वे कामनाएं सफल होंगी। अह:! मेरे प्यारे महानन्द जी भी कुछ इस सम्बन्ध में उतावले हैं, कि मैं भी कुछ अपने शब्दों का उच्चारण करूं। परन्तु विचार यह है मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ संसार में यज्ञमयी ज्योति होनी चाहिए। , जब यह संसार यज्ञमयी ज्योति को लाने का प्रयास करता है, तब उसको यज्ञ कहते हैं। क्योंकि भौतिक यज्ञ से आध्यात्मिक यज्ञ होता है। और भौतिक यज्ञ से ही भौतिक विज्ञान की उत्पत्ति होती है। भैतिक विज्ञान इसी के आश्रित रहता है। २५.०२.१९७२

261. महर्षि भारद्वाज आश्रम में यज्ञ

मुझे स्मरण आता रहता है जब हम किसीकाल में महर्षि भारद्वाज आश्रम में प्रकट होते थे। तो महर्षि भारद्वाज मुनि अपने शिष्यगणों के सहित यज्ञशाला में यज्ञ की रचना को करके वे दृष्टि में रखते थे कि वे सुगन्धि दायक औषधियों का पान करना, विचारों से उन औषधियों को, विचारों से उस सामग्री को पवित्र बनाना।

उसके पश्चात उसकी आहुति देना। , आहुति देने का अभिप्राय यह कि आहुति स्वाहा कह करके अग्नि के समर्पित कर देना है। अग्नि क्या है? जो अग्नि इस संसार में प्रदीप्त हो रही है, उस अग्नि के द्वारा प्रार्थना बद्ध होकर करके जो कार्य किया जाता हो। अहः! यज्ञम ब्रह्मव्यापक प्रवे। पूज्यपाद कहा करते थे कि यज्ञ अस्वति कहलाई जाती है।

भारद्वाज मुनि के आश्रम में जब यज्ञ होता, तो इस प्रकार के परमाणु यज्ञशाला में उत्पन्न होते थे। क्योंकि यज्ञशाला अष्टकोण होती है, बारह कोण, भी होती है देखो, छब्बीस कोण भी होती है, ९९ कोण की भी यज्ञशाला होती हैं। वेद में उस का प्रचलन है हमारे यहाँ और भी कर्म कांडों के नाना प्रकार के भेद हैं। क्योंकि यज्ञशाला इस प्रकार की होती हैं।

262. पूज्य गुरुदेव समाज की दूरी

परन्तु महानन्द जी के विचारों के कथानुसार आज का समाज कहाँ है। आज का समाज महानन्द जी के कथनानुसार मेरे इन विचारों से बहुत दूर है। २५.०२.१९७२

263. गुरुदेव की कर्म की गति

आज हमारी यह आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है। जहाँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का स्थूल शरीर यज्ञम भूतानी यज्ञम ब्रह्म मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा यज्ञ की प्रकियाओं को यज्ञ जैसे उत्तम कर्म को मैं दृष्टिपात कर रहा था। मेरा हृदय तो बड़ा ही गदगद हो रहा था। परन्तु जहाँ गदगद हो रहा था वहाँ एक वाक्य को दृष्टिपात करके मुझे बड़ा कष्ट हो रहा था। परन्तु वह कष्ट यह था, वह भी समय होता है, मानव का वह भी समय होता है, जब भंयकर वनों से उत्सव के समीप लाया जाता है। यज्ञशाला में, ब्रह्मा बनाया जाता हो, मानव कहाँ चला जाता है? मानव के कर्म कहाँ रह जाते हैं? वह भी समाज, वह भी विचार है, जहाँ समिधा के अध्यक्ष बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ, मानव का कर्म, मानव की विचारधारा, मानव को कहाँ ले जाती है? किस स्थान पर, किस स्थल पर ले जाती है? परन्तु जहाँ इस समाज में जन्म लेने के नाते नाना प्रकार के समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार की मतियां होती हैं। यह आज कोई नवीन वाक्य नहीं है।

264. गुरुदेव के शरीर के रक्षक महानन्द जी, बरनावा में ऋषियों का तप

पुरातन काल में भी नाना प्रकार के ऋषियों में विचार होते रहते थे। ब्रह्म व्यापः विचार धारा, दूषित विचारधारा, आज भी है पुरातन काल में भी थी। परन्तु यह तो समाज का विचार है। मैंने अपने जीवन में एक संकलन किया था, कि मेरा जो पूज्यपाद गुरुदेव का शरीर है, परन्तु उसको मैं भ्रष्ठ नहीं होने देता, होने नही दूंगा। यह मेरा संकल्प है। यह मेरी विचारधारा है। इस विचार को बारम्बार प्रकट करता रहता हूँ, इनकी मनो भावना की प्रवृत्तियां ही दूषित न होने के कारण मानव इनके विचारों को एक महत्ता में परिणत करता रहता है। सदैव मानव में हृदय की लग्नता होती है, लग्नता क्या है? लग्नता यही है कि पुरातन काल में इस भूमि पर तपस्या की जब यह वारणावत पुरी नहीं थी। इस स्थान पर पांच ऋषियों ने तप किया था। वे पांच ऋषि कौन थे। महाराजा नहुष जिन पर सवार हो कर इन्द्र बनने की कामना लेकर चला था। परन्तु वह यह स्थली है, यहाँ हर नदी का तट है उसी तट पर चार ऋषि तपस्या करते थे। अहः वही तट है, वही भूमि है, जिस भूमि पर नारद मुनि ने इन्द्राणियों को प्रेरणा दी थी। महाराजा युधिष्ठिर ने द्वापर के काल में यहीं यज्ञ किया था। मैं यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि यह कितनी पुण्य भूमि रही है। इस पर कितने ऋषियों ने तप किया है। और वे सबके सब चार ऋषि महर्षि विभाडंक के यहाँ आ पहुंचे। यहाँ परीक्षा मे अवतीर्ण होने लगे। ऋषि मुनियों ने यहाँ महर्षि मुदगल इत्यादि मुनियों का भी सतयुग के बहुत पुरातन काल में तपस्या एवं निवास का स्थान रहा है। मैं इस वाक्य का अधिक विस्तार नहीं दूंगा।

यह पुण्य भूमि है, इस पुण्य भूमि पर संसार की कल्याण की कामना को लेकर के आत्मा आती हैं। वे भौतिक वातावरण में लिप्त न होने के कारण भौतिक द्रव्य को संसार के कल्याण में परिणत करके उसका पुनः उत्थान करते हैं। क्योंकि द्रव्य की एक ही मूल ध्येय होता है कि द्रव्य से पुण्य भूमि को ऊँचा बनाना, जो पुण्य भूमि में भी अपना पुण्य नहीं दे सकता वह संसार में अपने पाप को निगलता रहता है। २६.०२.१९७२

265. देवनागरी में उच्चारण क्यों

जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई है। व्याकरण में नाना प्रकार के परिवर्तन आते रहे हैं। रहा यह वाक्य कि मेरा यह शब्द यह देवनागरी में क्यों उच्चारण होता है। इस विषय में एक विचार यह आता है मानव के विचार में। क्योंकि यह भाषा ऋषियों के काल में नहीं थी। ऋषियों की विचारधारा में नहीं थी। ऐसा भी समाज कहता है। इस विचारधारा का निराकरण यह है कि प्रत्येक जो भाषा है, प्रत्येक जो वाणी का उदगम है तथा यह जो देवनागरी है, यह अन्तरिक्ष में अंकुर रूपों से विराजमान रहते हैं। यदि यह विराजमान न होती, तो वर्तमान में इस वाणी का प्रचलन कैसे होता।

266. वेदों की संहिताओं का पठन पाठन

रहा यह वाक्य कि अज्ञानता के कारण, क्योंकि अज्ञानता कहाँ है, अज्ञानता का मूल क्या है? अज्ञानता की जो मौलिकता है, वह भी तो प्रकृति का मानना चाहिए। परन्तु इस को यदि प्रकृति का स्वीकार करोगे, तो विचार यह आता है कि प्रकृति के गर्भ में माता वसुन्धरा के गर्भ में, प्रत्येक शब्द अंकुर रूप से विराजमान रहता है। क्योंकि जब देवासुर संग्राम परम्परा से होता रहता है, तो व्यापक और अव्यापक, संकीर्णता तथा व्यापकता दोनों यह विचार परम्परा से मानव में आते रहे हैं। इसी प्रकार ये विचार अंकुर रूप से विराजमान रहते हैं। परन्तु रहा इसका वेदवाणी से सम्बन्ध। यह वेदों की संहिताओं का पठन-पाठन है। रहा मूल वेदों में? परन्तु मूल वेदम प्रवे। मैं परम्परा से यह कहता रहता हूं कि मूल वेदों की जो शाखाएं हैं, मूल वेद उनको भी संहिता कहते हैं, जो चार ऋषियों का उपकरण है। वेद मन्त्रों एवं शाखा ग्रन्थों दोनों का होता है। इस उपकरण की क्योंकि वेदः प्रकाशः वेद तो प्रकाश को कहते हैं। रहा यह वाक्य की समाज में यह आता है, कि ये वेदमन्त्र नहीं है। वेदों की धारा नहीं है। वेदों की आभा नहीं है। इसलिए मैं यह उच्चारण करता हूं। अतः एक-एक मन्त्र की भी एक कृति बन गई। उन कृतियों

को समाज नहीं जानता। न जानने के कारण नाना प्रकार की आभा हैं। यदि कुछ वेदमन्त्र हैं, कुछ भाग हैं, तो उसमें ब्राह्मण समाज में यह मान, अपमान की मात्रा आ जाती है। आधुनिक काल के कुछ विद्वानों के समाज के ऐसे विचार हैं, हम इनको इतना प्रोत्साहन क्यों दें? यह ऐसा बालक है।

267. वेदों के ज्ञाता

परन्तु कुछ समाज के लोग यह कहते हैं कि इससे हमारी मान, प्रतिष्ठा में हानि आती है। इस प्रकार दो प्रकार के विचार बने। पर इसमें अपना मस्तिष्क क्यों लगाया जाए। क्योंकि सबसे प्रमुख संसार में आधुनिक काल में यह जो द्रव्य है, यही अनुसन्धान नहीं होने देता। किसी भी वस्तु का संसार में जो अलौकिक वस्तु होती है, उनका अलौकिकता से निराकरण होता है। परन्तु अलौकिकता न होने के कारण वेद की आभा, वेदों का ज्ञान आधुनिक अनेक विद्वानों को नहीं है। जब तक वेद के यौगिक पुरुष नहीं होगे। यौगिक ब्राह्मण नहीं होंगे तब तक इस का निराकरण नहीं हो सकेगा। परन्तु इनका निराकरण उसी काल में में होगा, जबकि एक वेद मन्त्रों को श्रवण मस्तिष्क से करेंगे। परन्तु आज तो एक मन्त्र का भी अर्थ नहीं आता। उसकी मीमाँसा नहीं आती। इस मन की धारा को, प्राण की धारा को, हृदय में ले नहीं जाते हैं यह जो आत्मा का स्वाभाविक ज्ञान है। इसी ज्ञान में वेदों प्रसार है। २६.०२.१९७२

268. वेदमन्त्र योगी

आज मानव को अपनी अन्तरात्मा से इस वस्तु को जानने का प्रयास करना चाहिए। वह हृदय से अन्तरात्मा से उसका हृदय पुकार करके कहता है, कि यह वस्तु इस प्रकार है। इसको कहते हैं मन्त्रों का योगी। मन्त्रों के योगी कौन हैं? हमारे यहाँ महर्षि वेद व्यास, महात्मा जमदग्नि इत्यादि ऋषि हुए। जो मन्त्रों के योगी थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी मन्त्रों के प्रायः योगी रहे हैं। रहा यह वाक्य कि वर्तमान में वेदों का जो प्रचलन है, इसके ऊपर मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को बल दिया। रहा यह वाक्य कि मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि यह जो समाज है, आधुनिक काल का जो जगत है, उसमें देवनागरी में प्रचलन होना चाहिए। कुछ अभ्यास के कारण यह पुनः प्रयत्न हुआ।

269. योगी द्वारा देवनागरी उच्चारण

अब मानव यह प्रश्न करता है कि ये योगी कौन हैं या नहीं? इस को हम स्वीकार कैसे करें। परन्तु जब देवनागरी का इस प्रकार का प्रचलन हो सकता है तो हम भी दूसरे राष्ट्रों में उनकी प्रचलित राष्ट्र भाषा का उच्चारण करना सम्भव हो सकता है? परन्तु वास्तव में यह ऐसा एक प्रश्न है। हमारे समीप जो इस प्रश्न का उत्तर देने में शुद्ध तो रहता हूं। इसका विचार केवल यह है कि कुछ समय तक जब प्रेरणा प्रदाता वायु मण्डल को अन्तःकरण छू ले, तो वह वाक्य उच्चारण हो सकता है।

रहा यह वाक्य कि योगी में तो इतना समर्थ होता है, कि वह उस भाषा के वाक्य उच्चारण कर सकता है। पर योगी की आत्मा में ज्ञान है वह ज्ञान व्यापक तो होता है। परन्तु उसमें सीमितता भी होती है। मूलतः इसमें भेद यह होता है कि वह उस वाणी को उच्चारण करेगा, कि जिस वाणी का अन्तःकरण में संस्कार दिया जाता है। इसलिए संस्कार यदि उसमें भर दिया जाता है उन संस्कारों को व्यापक बना दिया जाता है तो वाक्य उच्चारण करना वास्तव में सम्भव हो जाता है। मैं इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूं क्योंकि संस्कार का जो प्रचलन है, संस्कार की जो धाराएं हैं, उसी के आधार पर मानव को यह वाक्य विचार विनिमय कर लेना चाहिए। परन्तु मैं इस वाक्य को अधिक ले जाना नही चाहता हूँ। वाक्य यह कि संसार में ये वाक्य जब सम्भव हो सकते हैं, परन्तु यदि अप्रहः कृति, होता रहे व्यवहार में आता रहे। इस प्रकार का विचार धारा परम्परा से रही है।

270. सभी भाषा अंकुर रूप में विद्यमान

अहाः रहा यह वाक्य कि इन धाराओं के वायु मण्डल में अंकुर कैसे होते हैं? क्योंकि अन्य भाषाओं के अंकुर भी जब रहते हैं। परन्तु इन अंकुरों की एक मूलधारा वेद ही है। जो देवनागरी का भूषण है। उसको धारण करना, उसकी मीमांसा करना यह मानव का कर्त्तव्य है। तो मैं यह वाक्य उच्चारण कर रहा था, कि आज इसके ऊपर अनुसन्धान क्यों नहीं हो पा रहा है। क्योंकि समाज में जो स्वार्थ है, मान, प्रतिष्ठा का एक बल है इसलिए अधिक इस स्वार्थ के कारण इसका अर्थ, इसकी मीमांसा, इसका अनुसन्धान नहीं हो पाता। जब तक स्वयं मानव अपना अनुसन्धान कुछ नहीं कर पाता, तब तक पूज्यपाद गुरुदेव का अनुसन्धान यह नहीं कर सकता है। क्योंकि अनुसन्धान होना चाहिए परम्परा से ही होना चाहिए। अनुसन्धान जगत में होता रहता है। मैं भी करता रहा हूं। परन्तु और भी शेष चर्चाएं किसी काल में प्रकट करेंगे। आज का केवल वाक्य यह उच्चारण कर रहा हूं। कि आज हम जिस महान सुन्दर विचार को लाने का प्रयास करें।

271. मानव का आभूषण

रहा वाक्य कि आज का समाज, आज का राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा कि समाज में यज्ञमान ऊँचे होने चाहिए। मैं भी यह कह रहा हूं कि यज्ञमान ऊँचे होने चाहिए। परन्तु वह उच्चता विचारों से आती है, महापुरुषों के आदेश के अनुसार आती है। यदि उसके अनुसार बरतने लगता है। अहा इसलिए मैं यह भी वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूं कि मानव में यह अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैंने जो कोई रचना की है, उस रचना का मूल कारण तो प्रभु ही है। और किसी कारण से कोई मानव ऐसा होता है क्या? जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशमान होता है। ऐसे ही कहीं-कहीं मानव अपने प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं। इसलिए आज हम यह भी अपने में अभिमान न करें। परन्तु मानव को उच्चता का कर्त्तव्य है। उच्च विचार होना यह तो मानव का एक आभूषण है। आभूषण को अपनाना चाहिए। तो इसलिए मैं वाक्य उच्चारण कर रहा हूं कि समाज में उच्चता और महत्ता होनी चाहिए।

परन्तु मानव कितना भी षडयंत्र करने वाला हो, इसका जो षडयंत्र है, इसकी जो एक विडम्बना है वह उसी तक रहती है, जहाँ तक उसकी सीमा होगी। परन्तु जब यौवनों का आक्रमण सीमा से कटिबद्ध हो जाता है। आज मोहम्मद के मानने वालों ने नाना रक्त की धारा के आधार पर इस मानव सम्प्रदाय को चलाने का प्रयास किया। और वह चलाया। उसका प्रचलन हुआ। परन्तु वह समय बहुत निकट आ रहा है और चल रहा है कि उनमें भयंकर अग्नि उत्पन्न हो रही है। जब

आपसी विचारधाराओं में मतभेद हो जाते हैं। वह शनैः-शनैः अग्नि प्रदीप्त होने लगती है। जैसे रक्त के आधार पर सम्प्रदाय का विनाश हो जाता है। इसलिए उसको धर्म और मानवता का कृत्य नहीं कहते। मोहम्मद के मानने वालों ने रक्त के आधार पर दूसरों को नष्ट करने के आधार पर इनके मतवालों ने सम्प्रदाय का प्रयास किया। परन्तु वह समय निकट आ रहा है। अब रक्त की धारा के आधार पर, यह सम्प्रदाय समाप्त हो जाएगा। क्योंकि मूल कारण यह जब अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, जो धर्म की अग्नि होती है, मानवीयता की जो अग्नि होती है, वह रूढ़ि की अग्नि को शान्त कर देती है। इसलिए समाज में यह विचार होना चाहिए, क्या समाज में एक महत्ता, जब मानवता नहीं होती। क्योंकि मुझे अच्छी प्रकार प्रतीत है। क्या जब मानव अपनी मानवता को नष्ट कर देता है तो वह स्वतः समाप्त हो जाती है।

272. विज्ञान प्रचार से रूढ़ि विनाश

इसी प्रकार महात्मा इस ईसा के मानने वालों ने इस धर्म को कुछ अग्नि की वेदी पर लाने का प्रयास किया। परन्तु जब वहाँ विज्ञान का प्रचलन हुआ, तो ईसा के विचार दग्ध हो गए। इसी प्रकार जब विज्ञान पनपेगा, जब विचारधारा पनपेगी तो यह जो अज्ञान है, यह जो रूढ़ि का अन्धकार है, यह नष्ट हो जाएगा। अन्धकार न रह सकेगा समाज में।

273. राष्ट्रवाद पर मानव

क्या आज मानव राष्ट्रवाद की वेदी पर जाना चाहता है। राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो राष्ट्र में दो भाग होने चाहिए। अहा राजा के राष्ट्र में शिक्षा का जो विभाग है, इसमें नाना प्रकार की त्रुटियां हैं। उनमें सबसे प्रथम त्रुटि यह कि कन्याओं के विद्यालय में सूक्ष्मता तथा भिन्नता होनी चाहिए। यदि एक रूपता रहेगी, तो हमारे में नैतिकता समाप्त होती जा रही है। यह नैतिकता कदापि नहीं आ सकेगी। क्योंकि विद्यालयों में उपनिषद और वैदिक परम्परा शिक्षा नहीं होगी। ब्रह्मचर्य नहीं बनाया जाएगा। आचार्य सुन्दर नहीं होगे। तो शिक्षालय और राष्ट्र ऊँचा नहीं बनेगा। इसलिए मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूं? मानव की हमारे यहाँ शिक्षालय में परम्परा से ही पृथ्वी मण्डल से लेकर के और सूर्य मण्डल तक विद्यार्थियों की उड़ान रही है।

274. पूर्वकाल में विज्ञान

आज का मानव यह कह रहा है कि पूर्व काल में विज्ञान नहीं था। क्यों नहीं था? विज्ञान, कहाँ से आया? विज्ञान कहाँ था। यह विज्ञान, अब कहाँ से आ गया। परन्तु यह विज्ञान परम्पराओं से था। महात्मा ध्रुव जैसा विज्ञान अब तक नहीं आ सका। १०० वर्षो तक भी इसी प्रकार विज्ञान चलता रहे, तो महात्मा ध्रुव वाला अनुसन्धान विज्ञान नहीं कर सकता। जिनमें सहस्त्रों सूर्य समाहित हो जाते हैं। ऐसे ध्रुव मण्डल में यातायात के यन्त्र बना देना, यह महात्मा ध्रुव का कर्त्तव्य था। तो आज का विज्ञान चन्द्रमा पर जा रहा है, परन्तु चन्द्रमा पर जाने का अभिप्राय केवल समाज ने यह स्वीकार कर लिया। आज के विज्ञान की उड़ान ऊँची बन गई है। यह नहीं यह तो परम्परा से उड़ान ब्रह्मचारियों की रही है। इससे ऊँची रही है। महान रही है। तो मैं इस वाक्य को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ।

विद्यालयों में एक उड़ान क्रियात्मक ऐसी होनी चाहिए। जिससे वह उड़ान सूर्य तक क्या नाना लोकों की होनी चाहिए। इसी प्रकार इस उड़ान के साथ में और भी विशाल उड़ान होनी चाहिए।

आज समान में एक महत्ता को लाने का प्रयास करना चाहिए। विचार धारा को अहिंसा परमोधर्म की वेदी पर स्थापित करना चाहिए। जिसका कोई दर्शन होता है, जिसमें मानवता हो जिसके द्वारा चरित्र हो वही होता है। वह धर्म नहीं होता है, जिसके द्वारा चरित्र नहीं होता। वह रूढ़ि होता है। जहाँ एक दूसरे को नष्ट करने की नाना प्रकार की धारा बनाई जाती हैं। घृणा के आधार पर ही उसका जन्म होता है। घृणा के आधार पर वह समाप्त हो जाता है।

275. बरनावा भूमि

जिस पुण्य भूमि पर मेरी आकाशवाणी जा रही है वह मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि यह बहूत पुण्य भूमि रही है। यहाँ अनेक ऋषियों ने तप किए हैं। परन्तु तप के साथ साथ इस भूमि पर पाप भी हूए हैं। यहाँ यवनों ने, मोहम्मद के मानने वालों ने यहाँ कन्याओं के श्रृंगार को भी भ्रष्ट किया है। और भी नाना प्रकार के कार्य होते रहे हैं। परन्तु उसके पश्चात भी पुण्य भूमि तो पुण्य भूमि होती ही है। इसमें कोई आश्चर्य, सन्देह नहीं होता। परन्तु समाज में जहाँ नाना प्रकार की कुरीतियां होती हैं, वहाँ सुन्दरताएं भी होती हैं। जहाँ दुर्गन्धि होती है, वहाँ सुगन्धि भी होती है। इसी लिए यज्ञ का खण्डन करना मानव का पाखण्ड है, यज्ञों का मण्डन करना यह मानव का कर्त्तव्य है। यह धर्म है, विचार है, महत्ता है इसको अपनाने का प्रयास करो।

276. राष्ट्रीयता

राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए राष्ट्रीयता होनी चाहिए। राष्ट्रों के राजाओं का कर्त्तव्य है, जो राष्ट्र का द्रोही हो उसको नष्ट कर देना चाहिए। अपने चक्र से उसका दमन कर देना चाहिए। हम में धर्म, मानवता, विचारशीलता होनी चाहिए। अहिंसा परमो धर्म होना चाहिए उसको लेकर के जब हम चलेंगे तो यह समाल ऊँचा रहेगा। आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना कुछ सुन्दर विचार दिया, इनका विचार आज मुझे बड़ा प्रिय लगा। क्योंकि जहाँ पुण्य भूमि का इन्होंने वर्णन किया। मैं इस पुण्य भूमि के इतिहास को नहीं जानता परन्तु इनका उपदेश, इनकी विचार धारा में एक महत्ता थी। प्रत्येक मानव को उसे अपनाना चाहिए। इसकी कटुता पर विचार न करते हुए हम यह उच्चारण कर सकते हैं कि मानवीय जो विचारधारा है, उसको अपनाना चाहिए। २६.०२.१९७२

277. गुरुदेव का विज्ञान पर विचार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस विज्ञान पर कुछ अनुसन्धान किया है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस पर अच्छी तरह अन्वेषण करते रहते हैं। परन्तु आज हम तो इतना उच्चारण कर सकते हैं। २६.०२.१९७२

278. तपे विचार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का विचार भी स्मरण आता रहता है। किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने इस वाक्य को इसलिए स्पष्ट नहीं किया, कि समाज में किसी प्रकार की भ्रान्ति न उत्पन्न हो जाए। क्योंकि जो अज्ञानता होती है, वह अज्ञानता तो मानव के हृदय में होती है और वह नाना व्याख्यान देने से अज्ञानता समाप्त नहीं होती। नाना प्रकार की व्याख्या करने से भी, अज्ञानता समाप्त नही होती, अज्ञानता समाप्त उस काल में होती है, जब कि वह प्रभु को अथवा अपने को समर्पित कर देता है। अपने को जब तक समर्पित नही करता, तब तक उस मानव का अज्ञान किसी काल में समाप्त नहीं होता। जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा उपस्थित होते, तो उनके आश्रम में मृगराज भी रहते। हम भी एक स्थान पर विराजमान हो जाते थे। जब वे अध्यापन प्रारम्भ करते ऋत और सत के ऊपर विचार विनिमय होता। तो मुझे वह समय भलीभांति स्मरण रहता है। जब वह अपना विचार देते, तो मार्ग में जो वृक्ष थे, उन पर पक्षीगण रहते थे, वे भी अपने वाक्य को शान्त कर देते थे। मृगराज तो क्या, वे पक्षी भी उसको शान्त कर देते थे। क्योंकि विचार इतना तपा हुआ इतना महान होना चाहिए।

279. ब्रह्म की विवेचना क्यों नहीं होती?

तो एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक वाक्य कहा कि भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ। जड़ और चेतन का आप क्या विश्लेषण करेंगे। आत्मा परमात्मा का क्या विश्लेषण करेंगे। इससे तो यह प्रतीत होता है कि जैसे प्रकृति का एक मन है, वह मन कहीं विश्वभान बना हुआ है। कहीं विशेष बना हुआ है। प्रकृति के पदार्थों में भी जब हम वसुन्धरा के गर्भ में जाते हैं, पृथ्वी के गर्भ में जाते हैं तो वहाँ भी मन की एक धारा प्रतीत होने लगती है। जितना भी परमाणुवाद है, वहाँ भी एक मन की सत्ता प्रतीत होती है, क्योंकि परमाणुओं का और रसों का जो विभाजन है, वह केवल इस मन के द्वारा ही होता है और प्राण उसमें संचार रूप से रहता है, उसका विभाजन प्रायः होता रहता है। इसी प्रकार जैसी आपकी प्रवृत्तियां हैं, आप का जो तपा हुआ विचार है, यह जैसे हिंसक प्राणियों को प्रभावित कर रहा है। क्योंकि मन इनके द्वारा भी है, आप के द्वारा भी है। जैसे मन एकता में रहने वाला है इसी प्रकार भगवन! क्या यह जो चेतना शरीर में चेतनित हो रही है, जिस चेतना मे यह मन अपना कार्य कर रहा है क्या आप इस चेतना को एकता में परिणत स्वीकार नहीं करते हैं?

280. अहम भाव

तो उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पूर्व काल में एक वाक्य कहा, कि यह तो वाक्य बहुत ही सुन्दर है तुम्हारा। परन्तु मैं इसको इस रूप में स्वीकार प्रायः करता रहता हूँ। क्योंकि संसार में यह जो परमपिता जिसको हम ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म को हम इस रूपों से स्वीकार नहीं करते। जिस रूप से साधारण प्राणी स्वीकार करता है, क्योंकि संसार में प्रायः मानव यह कह देता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ, वह ब्रह्म उस काल में कहता है, जब तक वह प्रकृति के आवेश में रहता है। क्योंकि मैं का जो प्रतिपादन है, वह केवल प्रकृति का ही प्रतिपादन है, वह प्रकृति का ही शब्द है। जहाँ ब्रह्म की एकता का प्रश्न आता है, वहाँ मैं का अस्तित्व नहीं रहता। इसलिए जब मैं नहीं रहता, हे वत्स! हम इन शब्दों को इस प्रकार नहीं उच्चारण करना चाहते। क्योंकि वास्तव में जैसा है वैसा तो है ही। परन्तु रहा यह वाक्य जैसे हम प्रकृति की की धारा में मन को स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार प्राण की चेतना को हम ब्रह्म की धारा स्वीकार करते हैं। और इस धारा को स्वीकार करते हुए हम यह भी स्वीकार करते हैं, कि एक ही ब्रह्म है। ब्रह्म की चेतना प्रकृति को प्रभावित करती रहती है। उसी का जो एक प्रकाश है, उसी की जो एक चेतना है, वह इस संसार को चेतनित बनाती है। चेतनित बनाती, अज्ञानता ब्रह्म व्यापः रहा यह वाक्य कि ब्रह्म ही सर्वत्र रहा है। ऐसा प्रायः मानव स्वीकार करता है। १२.०३.१९७२

281. महापुरुषों का मार्ग मानव मार्ग

तो ऐसा मुझे आभास होता रहता है। और रहा यह वाक्य कि अब संसार में जैसा पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया, मैं वर्णन कराया मैं वैसा ही उच्चारण कर देता हूं। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव का अन्तिम विचार क्या था? इस सम्बन्ध में तो उन्होनें अपना अन्तिम विचार यही प्रकट किया, जो आचार्यों का, ऋषि मुनियों का परम्परागतों से था। ब्रह्मवेत्ताओं का जो प्रश्न है, उनकी जो धाराएं हैं, उनका जो मार्ग है उसी का विश्लेषण करते हुए उन्होनें कहा कि मानव को उस मार्ग को अपना लेना चाहिए, जिस मार्ग से महापुरुष प्रायः विचरण करते चले आए हों। वही मार्ग हमारे लिए श्रेष्ठ है। तपस्वी पुरुषों ने जिस मार्ग को अपनाया है। महर्षि भृंगी जी और नाना आचार्यों ने ऐसा माना है।

282. जड़ मन का आत्मा के समक्ष अपना कोई अस्तित्व नहीं

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय विराजमान थे, तो उनके चरणों को छूते हुए, जब हम अपने आसन पर विराजमान हो गए, तो मृगराज भी आ गए, वे भी उनके चरणों को स्पर्श करने लगे। तो उसी समय यह प्रश्न उत्पन्न हुआ। मस्तिष्क में यह विचारधारा प्रारम्भ होने लगी। हे प्रभु! कि जब यह हिंसक प्राणी जिनका भोजन ही मानवीय शरीर है, प्राणी मात्र को जो भक्षण कर जाते हैं और वह आपके चरणों को छूते हैं। इसका मूल कारण क्या है? इसकी धाराएं क्या हैं? इसको मैं जानना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि यह मन की पवित्रता है। हमने कहा कि मन का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। जब प्रभु! मन का अपना कोई अस्तित्व नहीं तो विचार आता है, कि आत्मा-आत्मा से प्रभावित होता है। जिससे यह प्रतीत होता है कि आत्मा का उस ब्रह्म की चेतना है प्रभु की जो एक महान धारा है उस स्रोत का जो एक प्रतिभास है, वही उन्हें आभासित कर रहा है। वही उस मार्ग के लिए पुकार रहा है। क्योंकि आभा में वह जो चेतना है। उसमें ज्ञान तो स्वाभाविक रहता है, ज्ञान स्वाभाविक रहने से उनका स्वभाव प्रायः बना ही रहता है। तो ऐसा जब उन्होंने प्रकट किया, तो उससे यह प्रतीत हो गया, कि संसार में जो नाना प्रकार के मानवीय प्रतिभा के कृत्य उत्पन्न होते रहते हैं, स्वागत विचार उत्पन्न हाते रहते हैं, मन में भ्रान्तियां उत्पन्न होती रहती हैं। उन भ्रान्तियों में ही चित्त की आभासता, उस चित्त में ब्रह्म की एक महान अकृत चेतना का भास होता है। उसी भास से आभासित होता रहता है यह जगत! तो ऐसा मुझे जब पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट कराया तो हृदय में एक शान्ति की उत्पत्ति हुई।

तब हमने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ कि जैसे मानव साधारण अवस्था में उच्चारण करता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ, तो इसका

क्या अभिप्राय है? उन्होंने कहा कि इसका अधिकार मानव को नहीं होता। मानव को इसका अधिकार इसलिए नहीं होता, क्योंकि वह प्रकृति का भास है। और प्रकृति आभास जो है, वह मानव को ध्रुवगति में ले जाने वाला है, ऊर्ध्व को पहुँचाने वाला नहीं। उसको हमें स्वीकार नहीं करा चाहिए। ऐसा मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट कराया।

283. गुरुदेव के प्रश्न

परन्तु रहा यह वाक्य, कि महपुरुषों का जो मार्ग है, उन्होंने ऐसा क्यों नहीं प्रकट किया? जैसे अंगिरा जी ने नहीं प्रकट किया। तब पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि उन्होंने इसलिए प्रकट नही किया क्योंकि मानवीय मस्तिष्कों में परम्परागतों से रहती है क्यों? जहाँ मानवीयता का प्रश्न आता है, वह केवल एक विचारधारा की ही मानवीयता बनी रहती है। मानवीयता का तो स्त्रोत ही उस काल में चला करता है, जब भिन्नता रहती है। यदि भिन्नता हीं है तो मानवीयता का भी संसार में प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। ऐसा मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रायः प्रकट कराया। तो उसी आसन पर विराजमान हो करके, जब यह निश्चय किया गया, कि वास्तव में ब्रह्म की ही चेतना है। जड़ और चेतन दोनों ही एकता में रमण करने वाले हैं। यहाँ नाना प्रकार के शब्द हमें वैदिक साहित्य में प्रायः प्राप्त होते रहते हैं। रहा यह वाक्य कि आज हम इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचना करने वाले बनें। जैसा हमें आचार्यों ने और भी नाना महापुरुषों ने वर्णन किया है। महर्षि शाण्डिल्य जी ने और महर्षि शोकृति जी ने भी ऐसा ही प्रकट किया। महात्मा दधीचि ने तो अश्वनी कुमारों को ब्रह्म उपदेश देते हुए उन्होंने कहा कि संसार में ब्रह्म को ही स्वीकार करना चाहिए। उसको स्वीकार करते हुए अपने चित्त में उसकी एकता का तारतम्य हमारे हृदयों में होना चाहिए। हृदय में ही सर्वत्र जगत प्रतिष्ठित हो जाता है। १२.०३.१९७२

284. आत्मा परमात्मा का गहन विषय

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आत्मा का प्रश्न करते तो उस समय पूज्यपाद गुरुदेव उसके ऊपर विचार देते रहते। विचार देते-देते अन्त में मौन होजाते और यह कहा करते, इस को जानने के लिए मन ओर प्राण दोनों का मिलान करो। उस आनन्द को प्राप्त करो, जिस आनन्द को तुम्हें पाना है। उस आनन्द को पान करने के पश्चात वह आनन्द वाणी का विषय नहीं रह जाता। इन्द्रियों का विषय वह ब्रह्म है ही नहीं, तो इसलिए उसआनन्द को प्राप्त करेन के लिए, हम अपने में अनुभव करते रहते हैं। चित्त, मन, इत्यादियों का प्रमाण देना हमारे लिए बहुत ही सहज रह जाता है क्योंकि संसार में हमारी वाणी भी अग्नि के सहयोग से, सहकारिता से इसका उद्वार उत्पन्न होता रहता है। अग्नि के ऊपर अग्नि ही इसका वाहन चलता रहता है। वाहन रहने के कारण इसका प्रायः प्रतिबिम्ब चलता रहता है। तो मैंने अपने पूज्यपाएद गुरुदेव से यह पाया कि आत्मा परमात्मा का एक गहन विषय है। एकता-अनेकता में इसको दृष्टिपात करना एक ऐसा विषय है कि इसमें विचारते रहो, अनुसन्धान करते रहो अपने जीवन को महत्ता पर ले जाते रहो। परन्तु इसको प्रभु केसमर्पित चेतना मेंचेतना का मिलान करने का प्रयास करो। प्रभु के आनन्द को प्राप्त होते रहो। प्रायः, वही हमारा जीवन है। वही हमारी महत्ता है। वही हामरी एक यौगिकता कहलाई जाती है।

तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के विचारों को प्रकट कर रहा था। उनके द्वारा मृगराज रहते पक्षीगण मौन हो जाते। उनका विचार इतना तपा हुआ रहता था। जिन महापुरुषों का, ब्रह्मवेत्ताओं का विचार तपा हुआ होता है। उनके विचारों में इतनी विद्युत हो जाती है, इतना सूक्ष्म प्रकाश हो जाता है क्योंकि ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी में रहता है तो वह पक्षीगणों के अन्तर्हृदय में भी जो हृदय है उसको भी वह चेतना देने वाला होता है। तो इसलिए आज हमें उस अनुपम प्रकाश में जाने के लिए प्रकाशित होना चाहिए। वही हमारा जीवन है। १२.०३.१९७२

285. योगी की दिव्य दृष्टि कैसे

मुझे एक वाक्य स्मरण आया। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक वाक्य कहा था। भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि संसार में योगी कैसे दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेता है? क्योंकि संसार में योगी की आत्मा योगी की जो प्रवृत्ति है, वह सूर्य मण्डल के गर्भ को जान लेती है। ध्रुव के गर्भ को जान लेती है। पृथ्वी के गर्भ को जान लेती है। और भी नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों के गर्भों को जानने लगती है। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे प्रत्यक्ष रूप में प्रकट कराते हुए कहा कि वत्स! कि जब योगी जन यौगिक क्षेत्र में प्रवेश होते हैं, ब्रह्म लोकों में जब प्रविष्ट होने लगते हैं, तो आत्मा एक प्रबल शक्ति वाला हो जाता है। तो उस समय जब हम यह दृष्टिपात करते हैं कि हम ब्रह्मचर्य की गति कैसे ऊर्ध्व बनती है? अपने आसन के द्वारा प्राणायाम के द्वारा, मन और प्राण के दोनों के मिलान के द्वारा ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व बन जाती है। १३.०३.१९७२

286. ब्रह्म की अबाध गति

ब्रह्म की जो अबाध गति है वह ऐसी एक प्रतिभा में परिणत होने लगती है। एक महत्ता का प्रायः संसार में जन्म होने लगता है। तो मुझे ऐसा दृष्टिपात होता रहा है कि संसार में जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वाक्य प्रकट कराया और ऐसा कहा कि ब्रह्मचर्य की अबाध गति विशेष और प्रबल हो जाती है। एक-एक नाड़ी से सहस्त्रों सहस्त्रों धाराओं का प्रायः जन्म हो जाता है। इन्हीं धाराओं के साथ में आभाएं तरंगे उत्पन्न होती रहती है। मानव के चित्त से इन आभाओं का सम्बन्ध होता है और वह जो चित्त से सम्बन्ध है। वह जो नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर है। इनकी आभाएं इनकी तरंगे चित्त से इनका सम्बन्ध होते हुए चित्त के देश में जब मानव की श्रुति विशेषकर हो जाती है। तो वह योगी इस ब्रह्मण का प्रायः दिग्दर्शन कर लेता है। ऐसा हमारे यहाँ प्रायः दिग्दर्शन कर लेता है। ऐसा हमारे यहाँ प्रायः आचार्यों के सम्बन्ध में आता रहता है। जैसा मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट कराया।

आचार्यों ने कुछ ऐसा कहा है कि मानव को अपनी प्रवृत्ति को ब्रह्म में विचरण करा देना चाहिए। रहा, यह वाक्य आज हम अपने हृदय देश में इस संसार को दृष्टिपात करना चाहते हैं। जिसको हम एक चित्त के देश में परिणत कराते रहते हैं। हम परमपिता परमात्मा की, आत्मा की इस विशेष विवेचना में जाना चाहते हैं। जहाँ नाना प्रकार के मानव जीवन में हमारे जीवन में भी और नाना ऋषियों के जीवनों में विवाद प्रायः चले आते हैं। यह विवाद केवल तभी तक रहता है।

जैसा मैंने अपनी-अभी कहा जब तक मन और प्राण का विभाजनवाद रहता है। मानव के मस्तिष्क में। क्योंकि इन दोनों की सहकारिता हो जाती है। वही एक मन की आभा परिणत होती रहती है। १३.०२.१९७२

287. योगियों का जीवन

मुझे तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रकट कराया कि संसार में तुम यही मत जानो, कि ब्रह्म अथवा आत्मा यह द्वितीय भाव में परिणत करना है। अपने जीवन में एक महान और ऊँची उड़ान उड़ते चले जाओ। यह जो नाना प्रकार की आभा है, यह स्वतः ही समाप्त होती रहती है। यह रहती ही नहीं। रहा यह कि संसार में हम इसका निर्णय करें। क्योंकि साधारण योगियों के विषय में तो ठीक है, यहाँ यौगिक समाज विराजमान होता है। जैसा जमदाग्नि इत्यादि ऋषि मुनियों के स्थानों में पिप्पलाद इत्यादि मुनियों का तपस्विओं का आवागमन होता रहता था। वहाँ मुक्ति का विषय, आत्मा परमात्मा का विषय ऐसा एक विश्लेषण किया जाए तो यथार्थ है। १३.०२.१९७२

288. त्रेता काल

वह त्रेता का काल, इससे ऊर्ध्व का काल भी स्मरण आता है। साहित्यों में वह अंकित है। वे अधिकार और अनधिकार को विचार कर उसको मुखारबिन्द से कोई शब्द प्रदान करते थे। शब्द विद्युत का कार्य रहता था। और विद्युत का कार्य करते हुए, जहाँ अन्तःकरण को छूता था, वही पवित्र बनता चला जाता था। क्योंकि शब्द का जो तप है, वह संसार में एक महान तप कहा जाता है। उसकी जो महत्ता है वह मानव के प्रायः मस्तिष्कों में प्राप्त होती रहती है। ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में वह विषय एक ऐसे स्थल को प्राप्त होता रहता है जिसकी आशा को जानने के पश्चात मानव का जीवन महत्ता में परिणत होता रहता है। १३.०३.१९७२

289. गुरुदेव द्वारा दीक्षा, अधिकारी अनधिकारी विचार से कर्तव्य

जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने हमें दीक्षा दी, तो लगभग बारह वर्ष तक औषधियों का पान कराया। औषधियों का बारह वर्ष तक पान करा करके लगभग चार-चार, पांच-पांच वर्ष तक उन्होंने पुष्प और पत्तों का पान करा करके, ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति और वृत्ति को और जीवन को ब्रह्मचर्य में परिणत करके, उसके पश्चात दीक्षा दी। तो मुझे वह समय भलीभांति स्मरण आता रहता है। समाज कैसे ऊँचा बनता है? ऋषिवाद कैसे ऊँचा बनता है? ऋषिवर! उस काल में ऊँचा बनता है जब अधिकारी और अनाधिकारी को विचारा जाता है। १३.०३.१९७२

290. महानन्द जी की पोथी

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ अपने विचार देने आएं हैं, तो पोथी लिए हुए हैं। इनका विचार रहता है, कि मैं अपनी पोथी में से कुछ उच्चारण करूं। ०२.०६.१९७२

291. अश्वपति के पुरोहित और मन्त्री

मुझे बहुत समय हुआ, जब मैं अश्वपति के यहाँ, मुझे पुरोहित रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तो महाराजा अश्वपति के यहाँ जब सबसे प्रथम यज्ञ होने लगे, तो एक महामन्त्री थे। उनका जीवन ऐसा स्वर्णमय कहलाया जाता था, कि उन्होंने अपने मन में किसी काल में प्रतिज्ञा की, प्रतिज्ञा ऐसी होती थी जैसे प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है और वह अन्त नहीं होता था। वह काल जो संकलन होता था, उस संकलन के आधार पर मानव के अन्तःकरण की धारा बनती रहती थी। परन्तु जब वह किसी काल में मेरे समीप आते, तो बहुत समय तक चर्चाएँ उनसे आगे के सम्बन्ध में चलती रहती। वह प्रश्न करते रहते, उत्तर देते रहते। परन्तु अन्ततः उत्तरों और प्रश्नों का परिणाम यह होता कि दोनों संतुष्ट हो जाते। क्योंकि राष्ट्र का बहुत दायित्व होता है। मन्त्री बहुत विचारशील होता है। क्योंकि यदि राष्ट्र में मन्त्री ऊँचा और विचारक नहीं होगा, तो राष्ट्र का अपना कोई प्राण नहीं होगा। क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि राष्ट्र में मन्त्री ही राष्ट्र का प्राण होता है। परन्तु यदि राष्ट्र का प्राण ऊँचा होगा, तो राष्ट्र का श्वास विलक्षण बनता रहेगा। इसी प्रकार जैसे मानव के शरीर में प्राण अपना कार्य करता है। जब प्राण क्षीण हो जाता है, तो रुग्ण हो जाता है। इसी प्रकार राष्ट्र में मन्त्री होता है। जिसका मस्तिष्क बहुत विशाल होता है। बहुत विशाल हृदय से राष्ट्र के सम्बन्ध में विचारता रहता है और उसके आश्रित सदैव कार्य करता रहता है। ऋत के द्वारा सत को जाना जाता है। ०२.०६.१९७२

292. आत्मा का भोजन

एक समय महामन्त्री ने प्रश्न किया, महाराज! मैं यह जाना चाहता हूँ, आत्मा का भोजन क्या है? उस समय उत्तर दिया कि आत्मा का भोजन यज्ञ है। उन्होंने कहा यज्ञ का भोजन क्या है? उस समय उत्तर दिया, यज्ञ का जो भोजन है वह कर्म है। उन्होंने प्रश्न किया कि कर्म का भोजन क्या है? तब यह कहा गया कि कर्म का भोजन है सत, उन्होंने प्रश्न किया कि सत का भोजन क्या है? उन्होंने उत्तर दिया कि सत का भोजन ऋत है। उन्होंने प्रश्न किया कि ऋत का भोजन क्या है? उन्होंने उत्तर दिया कि ऋत का भोजन चेतना है। चेतना नहीं होगी, तो विराजमान अन्न को मानव पान नहीं करेगा। अन्न तो चेतना है। आत्मा को ऋत कहा गया है। ऋत कहते हैं प्रकृति के विज्ञान को। अर्थात जितना प्राकृतिक विज्ञान है उसे ऋत कहते हैं। यदि चेतना है तो ऋत को हम जान सकते हैं। और यदि ऋत है तो सत को हम जान सकते हैं। क्योंकि सत का जो निर्णय होता है, वह उच्च विचार से होता है। सत का ब्रह्म में प्रमाण सत्यम ब्रह्म व्यापः यज्ञः क्योंकि यज्ञ यदि सत होगा, तो यज्ञ का सत विचार होगा। यज्ञ कहते हैं विचार को, यज्ञ कहते हैं सुगन्धि को। सुगन्धि विचार की भी होती है। पदार्थों की भी होती है। जब हम विचारों की सुगन्धि देते हैं, तो क्या आनन्द आता है। उस आनन्द में मानव विभोर हो जाता है। ०२.०६.१९७२

293. अश्वपति के मन्त्री, राष्ट्र की पवित्रता

यहाँ मैं महामन्त्री की चर्चाए प्रगट कर रहा था। महामन्त्री यह कहा करते थे, कि महाराज! मैं यह चाहता हूँ कि यदि मेरा शरीर का निधन हो, तो मैं निधन ऐसा चाहता हूँ कि सुयोग्य गुरु के द्वारा मेरा निदिध्यासन हो। क्योंकि जब सुयोग्य गुरु मानव को प्राप्त हो जाते हैं, आत्मावेत्ता प्राप्त होते हैं, तब उससे मानव का शुभ

कल्याण होता है। ऐसा जब प्रगट करते हैं, प्रजापति तो सदैव सदाचार की तरंगे राजा के राष्ट्र में होने से, राजा का राष्ट्रप्रिय होगा, महान तरंगे राजा के राष्ट्र में होने से, राजा का राष्ट्र प्रिय होगा, महान होगा। वह गृह तथा समाज ऊँचा होगा। तो मैं आत्मा की चर्चा कर रहा था। आत्मवत जब मानव एक दूसरे को इस प्रकार का भोजन देता रहता है, तब ऋतु के द्वार से चेतना सत हो जाती है, तो वह आत्मा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। वह जब इस शरीर को त्यागता है, तो उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। वह आनन्द से इस शरीर को त्याग कर चला जाता है और जहाँ उनका ऊँचा कर्म है, उसी कर्म के आधार पर, उस को योनियाँ प्राप्त होती रहती हैं। ०२.०६.१९७२

294. गुरुदेव की वाणी मृतमण्डल में

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं सदैव अपनी कोई न कोई नवीन चर्चा आपके समक्ष लाता ही रहता हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ एक परम्परा से नवीन विचार चला आता है। यदि बालक माता के द्वार में जाए, तो मूर्ख बनकर के जाना चाहिए। क्योंकि माता अपने प्यारे पुत्र को योग्यता प्रदान कर देती है। शिष्य जब गुरु के समीप जाता है, तो वह भी विनम्र समर्पित होकर जाता है। और वहाँ से कुछ प्राप्त कर के आता है। यदि अभिमान और विडम्बना से जाता है, तो वहाँ से कोई वस्तु उसे प्राप्त नहीं होती। तो इसीलिए मैं पूज्यपाद गुरुदेव के समीप आता रहता हूँ। चर्चाएँ होती रहती हैं। संसार का चक्र चलता रहता है। हमारी यह जो आकाशवाणी है यह मृत मण्डल में जा रही है।

295. पुनीत आत्मा

भगवन! मैंने आपको इससे बहुत पूर्व काल हुआ, जब कुछ पुनीत आत्माओं के सम्बन्ध में, आपसे चर्चाएँ प्रगट की थी। संसार में प्रत्येक गृह में ऐसी पुनीत आत्माओं का जन्म होता रहे। तो गृह सुन्दर बन सकते हैं। विचारों में व्यापकता आ सकती है। परन्तु जब यह आत्मा पृथ्वी मण्डल से सूर्य मण्डल को गमन करती है, तो उसका कितना सौभाग्य होता है। उसके विचारो में व्यापकता, महत्ता होती है। आत्मा चक्षु के द्वार से जाता है, भारद्वाज की जिसमें प्रधानता हो, तो उसकी यह उज्ज्वलता है। रहा यह प्रश्न कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का शिष्य इस मृत मण्डल के प्राणियों को जानता है। यह तो एक ऐसा विषय है, जिस विषय के सम्बन्ध में मैं कोई विवेचना नहीं दे सकता। क्योंकि किस-किस का मानव सांसारिक उद्बुद्धता प्रगट कर सकेगा।

296. पूर्व जन्म का परिचय, अमृत लाल बर्सी

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब ब्रह्मचर्य आश्रम में थे, तो माता श्रेयध्येनु ने यह जो महाराजा शाकल्य मुनि महाराज की पौत्री थी। तो माता ने यह आज्ञा दी, कि पुत्र तुम्हें १४८ वर्ष की आयु तक इस आश्रम से दूरी नहीं जाना, कजली वनों से दूर नहीं जाना है। जब यह आज्ञा दी गई, तो उस समय पूज्यपाद गुरुदेव यज्ञ के सम्बन्ध में, वृष्टि यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत चिन्तन करते थे। परन्तु जब अकाल पड़ा संसार की गति बन गई। राजा के यहाँ अन्न प्राप्त न होता, न वृष्टि होती, न वनस्पतियों का जन्म होता। तब ब्राह्मणों ने यह विचार बनाया कजली बनों में आये। निवेदन किया कि महाराजा!राजा के यहाँ वृष्टि यज्ञ कीजिए। उन्होंने कहा कि माता की आज्ञा नहीं है। माता की आज्ञा का उल्लंघन करना मेरे लिए अवर्जनीय है। मैं इसका उल्लंघन नहीं करूंगा। परन्तु उस माता ने मुझे अपने गर्भ स्थल में सुशील बना दिया। उस माता के वचन का मैं पालन अवश्य करूंगा। माता का यदि वचन दुष्ट व्यवहार का हो, तो मुझे वह पालन नहीं करना चाहिए। परन्तु जब मेरे आत्म कल्याण के लिए ही ऐसा आदेश है, तो मैं उसको अवश्य स्वीकार करने के लिए आया हूँ, और करूंगा। राजा से कहो कि वह आएं और यज्ञ करें। परन्तु ब्राह्मणों इससे असन्तुष्ट हो करके राष्ट्र गृह में पहुँचे। तो उस समय राजा वृीक ने कहा-कि ब्राह्मणों! क्या हुआ? उन्होंने यह कहा महाराज! ब्रह्मचारी ने यह कहा है कि मैं माता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। परन्तु राजा शान्त हो गए।

कुछ ऋषिजन कहने लगे, कि महाराज! यज्ञ करो। उन्होंने कहा सामग्री एकत्रित की जाए। तो सामग्री एकत्रित की गई। जब एकत्रित की गई, तो बहुत सूक्ष्म सामग्री एकत्रित की गई। क्योंकि जब वनस्पति नहीं थीं, तो साकल्य रूप से सामग्री कहाँ से एकत्रित होती? तो उस समय यज्ञमान का प्रश्न उत्पन्न हुआ। यज्ञमान कौन आए? वह तो वन था। तो कहीं से यह पुनीत आत्मा जिसका मैंने वर्णन किया, वह अपनी पत्नी के सहित व्याकुल थी। क्षुधा से व्याकुल, वह कजली वनों में भ्रमण करते रहे। उस समय मेरे पूज्यपाद ने कहा कि यज्ञमान का आसन इनको प्रदान किया जाए। यज्ञमान ने कहा भगवन! मैं और मेरी पत्नी प्राणों के इच्छुक हैं। प्राण प्राप्त हों। तब हमारे प्राणों की रक्षा होगी, जब अन्न प्राप्त होगा। उस समय एक वृक्ष ऐसा कजली वन में, जिसको स्वादिष्ट वृक्ष कहते हैं। उसकी छाल पूज्यपाद पान करते थे। छाल को लाया गया और उसका पञ्चाङ्ग बनाया। यज्ञमान को पान कराते ही प्राणों की रक्षा हो गई। यज्ञमान वृत्तियों ने जब यह यज्ञ किया, तो प्रातः से लेकर के सांय तक यज्ञ हुआ। सूर्य उदय होने से प्रारम्भ हुआ और सूर्य अस्त होने के पश्चात वह यज्ञ समाप्त हो गया। जब यज्ञ समाप्त हुआ, वृष्टि प्रारम्भ हो गई। वनों में एक आनन्द छा गया। जब यज्ञ के करने से वृष्टि होने लगी, तो राजा का राष्ट्र आनन्दित हो गया। लहलहाने लगा। वनस्पतियाँ अपने-अपने आँगन में एक सुन्दरता की छाया प्रदान करने लगी।

उस समय जब यज्ञ समाप्त हुआ, तो यज्ञमान ने कहा भगवन! मैं कुछ समय तक आपके आश्रम में वास करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा वास तो कर सकते हो, परन्तु मैं माता की आज्ञा चाहूँगा। मैंने यज्ञ करने की तुम्हें आज्ञा प्रदान कर दी। मैं यह नहीं जानता हूँ। इसको मेरी माता आज्ञा दे सकती हैं। उस समय जब माता से कहा उन्होंने कहा तुम आश्रम में वास कर सकते हो। उन्होंने वास किया तो लगभग एक वर्ष तक वास किया। एक वर्ष तक वह अपने सुन्दर दिव्य प्रभु का चिन्तन करते रहे। मैंने उन्हें कहा था अच्छा, बहुत सुन्दर, तुम्हारा जीवन संसार में बहुत ही प्रिय हो। और तुम अपने विचारों से बहुत ही महान हो।

तो उस समय माता ने और ऋषि ने यह कहा कि तुम्हारा जीवन जन-गण मात्र तक के लिए तुम्हारा अखण्ड हो। सहचरी के साथ तुम्हारा दोनों का जीवन अखण्ड बना रहे। ऐसा ऋषि ने आशीर्वाद दिया। तब उनके जीवन की धारा प्रारम्भता में रही, अखण्डता में परिणत रही। वहाँ उन्होंने अपना वास किया। महाराजा रोहिणी केतु नाम के राजा थे, उनके वे पुत्र कहलाते थे। क्योंकि उनके पिता ने किसी द्वेष के कारण उन्हें गृह से पृथक कर दिया। पृथक करने के पश्चात मानो देखो, जब

उनका समय पूर्ण हो गया तो वे पिता के गृह में आ गए। गृह में उनका वास हो गया अतः उन्होंने अपने पिता को सब वार्त्ता प्रगट कराई। पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा धन्य हो। ऐसे ब्रह्मचारियों के यहाँ जिनका जीवन सदैव याग में रमण करने वाला विचार भी याग में हो। धन्य है! तो तब मानो देखो, जीवन की धराएं प्रारम्भ होती रही। तो इसी प्रकार मेरा उच्चारण करने का मेरा अभिप्रायः ये है कि ऐसी पुनीत आत्मा जिनका जीवन जन्म जन्मान्तरों से स्वभावतः ही पवित्र रहा हो, ऐसी पुनीत आत्मा के सम्बन्ध में जिनका आत्मा २८४ वर्ष तक मानो देखो, उनका आत्मा सूर्य लोक में आनन्द को प्राप्त करने वाला हो, तो मेरा आत्मा तो यह सदैव प्रसन्नता में रहता है कि धन्य है, कितने उच्च विचार हैं माता के। क्योंकि यह भी उनकी एक कल्पना है। उस माता के गर्भ से उसका जन्म चन्द्र मण्डल में एक रहेकृति नाम का एक स्वादिक है स्वादिक माता के गर्भ से उस आत्मा का वास, क्योंकि यह भी देखो, उनकी एक कल्पना जागरूक होती है। क्योंकि सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा जिसमें अग्नि तत्त्व की प्रधानता हो तो पार्थिव तत्त्व जैसा मंगल मण्डल में उनका आत्मा वास करने वाला हो। अब हम इस वाक्य को कैसे उच्चारण कर सकते हैं? हम कैसे यह उच्चारण कर रहे हैं? यह प्रश्न मेरे भी मस्तिष्क में आ रहा है। परन्तु यह विचार क्योंकि वे जो लक्षण होते हैं, आत्मा के और इन्द्रियों के, जिस आत्मा को जाना है, उसके लक्षणों से मानो देखो, उसका सर्वत्र एक निर्णय एक महान यौगिक आत्मा के लिए उसका वर्णन करना कोई ऐसा आश्चर्य नहीं होता। संसार के प्राणियों के लिए यह आश्चर्य होता है। क्योंकि वह उस विद्या को जब नहीं जानते, तब उनका दर्शनवेत्ता यह उच्चारण कर देता है कि यह वेद के विरुद्ध है। क्योंकि वेदों का अध्ययन जब गम्भीरता से नहीं होता। तो उस विषय को जो मन के अनुकूल नहीं, उसे वेद के विरुद्ध उच्चारण कर देते हैं। परन्तु इनमें बहुत-सा भेदन है। ०२.०६.१९७२

297. पूज्य महानन्द जी

मेरे वत्स! महानन्द जी ने यह कहा कि संसार में विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए। परन्तु हम परम्परा से ही इस वाक्य को स्वीकार करते चले आएं हैं। आज हमें वास्तव में विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए। चन्द्रमा में मानव की गति हो, सूर्य मण्डल में हो, ध्रुव मण्डल में जाने वाले यान होने चाहिएं। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही प्रायः वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में जाने की प्रगतियां की हैं। क्योंकि मैंने बहुत पूर्व काल में भी कहा है, समय समय पर अनेक बार उच्चारण किया है। १७.०८.१९७२

298. चन्द्र यात्री आज का वैज्ञानिक

मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने यह प्रकट कराया कि आज का विज्ञान चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। १७.०८.१९७२

कल मेरे वत्स पुत्र ने एक वाक्य कहा था कि यह संसार विज्ञान के युग में जा रहा है। १८.०८.१९७२

299. गुरुदेव

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का अभी-अभी मनोहर विचार, आत्मा का उत्थान करने के लिए प्रारम्भ हो रहा था। इन विचारों में हम ऐसा प्रतीत करने लगते हैं हमें ऐसा अनुभव होता है जैसे क्षुधा से पीड़ित माँ का प्रिय बालक, उस माँ की लोरियों का पान कर रहा हो। परन्तु उसके आनन्द में रमण करते हुए हमें प्रायः ऐसा प्रतीत होता है। जैसे हम एक महान प्रतिभा में रमण कर रहे हों। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की अभी-अभी कुछ आत्मा का विवरण अथवा उनकी विचारधाराएं ऐसी गम्भीर और सौम्य प्रकट हो रही थीं। हम यह अपने में अनुभव कर रहे थे जैसे हम विज्ञानशाला में ही विराजमान हैं। पूज्य महानन्द जी १७.०८.१९७२

300. आधुनिक विज्ञान

केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। वह मेरा कर्त्तव्य है। आज का समाज, आज का विज्ञान वह कितना महान है? मैंने कल के वाक्यों में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था। हे भगवन्! आज का जो मानवीय विज्ञान है, उस विज्ञान में प्रायः दुरूपयोग है, सदुपयोग नहीं। आज का विज्ञान यह कह रहा है कि पुरातन काल में जो विज्ञान था, वह इस प्रकार का नहीं था। वह केवल सूक्ष्म था। आज का जो हमने विज्ञान जाना है उसमें सृष्टि के प्रारम्भ से विकास करते हुए यहाँ तक चले आए हैं कि हम वायु मण्डल में रमण करते हैं। परन्तु यह उनकी विडम्बना है। यह उनका विचार बहुत ही अशुद्ध है। १८.०८.१९७२

301. विज्ञान दुरूपयोग से अशुद्धता का वातावरण

वह समय मुझे स्मरण है जब यहाँ विदेशियों का आक्रमण हुआ। उनकी छाया सर्वत्र पृथ्वी मण्डल पर रहती थी। अर्थात सारे आर्यावर्त पर छा रहे थे। आज जब यहाँ पश्चिमी विभाग में जाते हैं, तो वहाँ कुछ और आहार प्राप्त होता है। मूल कारण क्या है इसका? वैद्यों की प्रतिभा और विज्ञान का दुरुपयोग है यह। विज्ञान का यदि दुरूपयोग न होता तो संसार की गति इस प्रकार की अशुद्ध न बन पाती। परिणाम यह मानव के आहार के लिए एक अन्न को पान दुग्ध, गो घृत, इत्यादि का पान करना ही एक मानवता मानी जाती है। मानव को अपने आहार को पवित्र करना चाहिए। १८.०८.१९७२

गुरुदेव का विज्ञान अनुसन्धान

इसी प्रकार क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस विज्ञान पर कुछ अनुसन्धान किया है। इसका विचार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अच्छी तरह इसका अन्वेषण करते रहते हैं। विचार विनिमय करते रहते हैं। परन्तु आज हम तो इतना उच्चारण कर सकते हैं कि आज हम उस विज्ञान की रश्मियों को अच्छी प्रकार जानने का प्रयास करते रहें। १८.०८.१९७२

302. विचार शुद्धि के लिए याग

परमाणु विद्या को लेकर आदि ब्रह्मा ने यज्ञ का निर्माण किया। और उन यज्ञों के द्वारा मानव के विचारों को शुद्ध बनाने का प्रयास किया। १८.०८.१९७२

303. प्रभु से विच्छेद

हम लाखों करोड़ों वर्षों से अथवा अरबों वर्षों से न मालूम कितना समय हो गया प्रभु! जब आपसे हमारा विच्छेद हो गया था। हे प्रभु! हम पुनः से सन्धि चाहते

हैं और हम उस वैदिक प्रकाश को अपनाना चाहते हैं। जिस प्रकाश में हमारी और आपकी दोनों की सन्धि होगी। ०६.१०.१९७२

304. गुरुदेव को आधुनिक काल की चर्चा महानन्द जी द्वारा

जब मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे आधुनिक काल की चर्चाएं प्रकट करते हैं और मैं भी वायुमण्डल के उस वातावरण को दृष्टिपात करता रहता हूँ, जो वायु में परमाणु विचरण कर रहे हैं आज मैं यह अवश्य उच्चारण करता रहता हूँ। १२.१०.१९७२

305. गुरुदेव के प्रवचन

मेरे प्यारे महानन्द जी का यह प्रश्न किया करते हैं कि हमारी यह जो आकाशवाणी है यह मृत-मण्डल में जाती है, पृथ्वी-मण्डल पर जाती है, ऐसा महानन्द जी ने कहा है। परन्तु उनके प्रश्न का उत्तर आज के वेद के पठन-पाठन में आ रहा था। बहुत पुरातन काल में इन्होंने प्रश्न किया। वेद का ऋषि कह रहा है जिसका अन्तःकरण पवित्र होता है, इस प्रकृति का आवेश इस प्रकृति के जो मल-विक्षेप-आवरण हैं यह उसको अधिक प्रभावित नहीं करते, तो उनका आत्मा, मृत-लोक के शरीरों से आत्मा का उत्थान हो करके वह द्यौ-लोक में, देवताओं की आत्मा में रमण करता है। १४.१०.१९७२

306. गुरुदेव की वाणी मृत मण्डल में कैसे

यह जो हमारी आकाशवाणी है यह मृत-मण्डल में जाती है, तो वह कैसे? जब आत्मा का उत्थान होता है, यह क्यों होता है? क्योंकि हमारे बहुत से जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार, यौगिक संस्कार हमारे अन्तःकरण में विराजमान हैं। क्योंकि अन्तःकरण में संस्कार रहते हैं और अन्तःकरण में एक जन्म का संस्कार नहीं, करोड़ो-करोड़ो जन्मों के संस्कार रहते हैं। तो वे जो संस्कार हैं वे ही मानव के जन्म का कारण बनते हैं। यदि कोई भी संस्कार किसी आत्मा के साथ नहीं होगा, तो संसार में मानव का आना असम्भव है। वह नहीं आएगा। इसी प्रकार हमारे बहुत से जन्मों के संस्कार इस अन्तःकरण में विराजमान हैं, चित्त में गति प्रारम्भ हो जाती है। जैसे परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह प्रकृति नृत्य करने लगती है है, उसी प्रकार आत्मा के सन्निधान मात्र से चित्त अपनी गति प्रारम्भ कर देता है। तो वे चित्त में नाना प्रकार के संस्कार हैं उनका उद्बुद्ध हो जाना असम्भव नहीं। परन्तु रहा यह कि साधारण प्राणी अथवा प्रत्येक प्राणी में से जिस पर अनुपम कृपा होती है अथवा उसको प्रायः संसार के लोग संसार से दूर कह सकते हैं। परन्तु उसका जो अन्तरात्मा है अथवा जो यौगिक क्षेत्र के लोग हैं, वे उसको संसार से दूर नहीं उच्चारण नहीं कर सकते। १४.१०.१९७२

307. महानन्द जी का सम्बोधन

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अथवा भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव। २८.१०.१९७२

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी यह कहा है कि आज मेरे प्यारे महानन्द जी परिचय देना मुझे आता ही नहीं है। क्या परिचय दूं। संसार का क्या है, यह संसार? जिसका मैं परिचय दूँ। २८.१०.१९७२

308. गुरुदेव द्वारा पुत्रेष्टि याग

आज यह समाज कहाँ आज जिस स्थान पर यह हमारी आकाशवाणी जा रही है परन्तु मैं यज्ञमान के सम्बन्ध में यदि वर्णन करने लगू तो पोथी की पोथी ही बन जाती हैं परन्तु जब मैं यह वाक्य प्रगट करने नही आया हूँ यह विचार इसीलिए है कि मुझे यह कष्ट हो रहा है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय कजली वनों में थे, तो राजा श्वेतकेतु को पुत्रेष्टि यज्ञ कराना था, राजा ने निवेदन किया, तो उन्होंने कहा कि राजन तुम्हारा जो मस्तिष्क है वह यज्ञ कराने कि आज्ञा नही दे रहा हैं, परन्तु राजा से अखण्ड तपस्या के पश्चात पुत्रेष्टि याग कराया, उस का परिणाम यह हुआ कि पुत्रेष्टि यज्ञ सफल हुआ, आज मुझे दुःख हो रहा हैं कि कहाँ मानव का वह समय और कहाँ मानव का यह समय कितना परिवर्तन आ जाता हैं।

309. बालक को आशीर्वाद

अहा यज्ञमान तू कैसा विचित्र है हे यज्ञमान! तू अपने मानवतव को ऊँचा बनाने का प्रयास कर, तुम्हारे कल्पना रहती है, क्योंकि वह मानव बड़े सौभाग्यशाली होते है, जिनके गृहों में यज्ञ होते हों, जिन मानव के गृहों में सत्य विषयक उपदेश होते हो, उपदेश तो प्रायः संसार में होते रहते हैं। परन्तु जहाँ ब्रह्मवेत्ताओं के उपदेश होते हैं, वह गृह कितना सौभाग्यशाली होता है। विचार यह कि हे यज्ञमान! मैं किसी कि निन्दा नही करने आया हूँ, मैं किसी के जीवन चरित्र को मापना नही चाहता हूँ, क्योंकि प्रायः मैं भी किसी काल में ऐसा ही था, परन्तु तब ब्रह्मवेत्ताओं की कृपा हाती है, तो मानव ऊँचा बन जाता है, मानव महान बन जाता हैं, यज्ञमान! मेरी तो इच्छा है कि यज्ञशाला में विराजमान हो करके, तू वेदों का सुगन्धि लेता हैं श्रोत्रों से, आज तेरा यह हृदय पवित्र हो, तू संसार में ऐसे प्रकाशमान हो, जैसे सूर्य प्रकाश देता हैं। मैं गृह में उत्पन्न होने वाले बालक को प्रसन्न हो करके आर्शीवाद देने आया हूँ कि उसकी आयु दीर्घ हो, क्योंकि आयु की कामना प्रायः प्राणी करता रहता हैं। २८.१०.१९७२

310. आहार व्यवहार का दूषितपना

हे यज्ञमान! तू वास्तव में इतना ऊँचा बन, तेरी जो उड़ान हैं, वह यज्ञशाला से ले करे बृहस्पति और ध्रुव मण्डल तक होनी चाहिए, यह भी कोई उड़ान हैं, वह कोई उड़ान नही होती संसार में, काम वासना की कोई उड़ान कही होती है अरे, उड़नी है, क्रान्ति करनी हैं तो हृदय में जो वह क्रान्ति करो जिससे ध्रुव मण्डल की यात्रा करने वाले बनो, महात्मा ध्रुव ने अपनी सौतेली माता के कथनानुसार जब यह सुना कि हे अभागे ध्रुव! आज तू यदि राजा की गोद में आने के लिए तत्पर होता, तो मेरी गोद से तेरा जन्म होता, तो महात्मा ध्रुव ने अपनी माता से आज्ञा पाई, हे मां! मैं क्या करूं? माता ने कण्ठ से लगा करके यह कहा, हे बालक! तू ओ३म का जाप कर, महात्मा ध्रुव नारद मुनि की विज्ञानशाला में परिणत प्रविष्ट हो गये। परिणाम यह हुआ कि विज्ञानशाला में १६ वर्ष की अवस्था में नारदमुनि की विज्ञानशाला में विराजमान होकर के उन्होंने ध्रुव यान का निर्माण किया था, ध्रुव मण्डल कितना विशाल है ध्रुव मण्डल में नाना बृहस्पति समा जाते हैं, उस

ध्रुव मण्डल में लगभग एक लाख दस हजार सूर्य ही सूर्य समाहित हो जाते हैं, ऐसा जो मण्डल है, ऐसी क्रान्ति होती हैं, माता के पुत्र की, हे माता! तेरा पुत्र सौभाग्यशाली है, तेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक इतनी उड़ान होने वाला, बालक इतनी उड़ान होनी चाहिए, यह कोई उड़ान नही होती हैं, कि हम आज केवल आहार और नीच व्यवहारों से अपने जीवन को नष्ट करते चले जाएं, यह कोई क्रान्ति नही होती, यह तो मानव को अपने जीवन में आवागमन के केन्द्र को स्थापित करना है, दैत्य बनना है। आज जो सुरापान करने वाले प्राणी होते हैं, उनको दैत्य प्रकृति कहा जाता हैं, वह उन अन्धकार योनियों में प्राप्त होते हैं, जहाँ उन्हे प्रकाश का एक अंकुर भी प्राप्त नही होता, आज के जो राजा है, आज का जो राष्ट्रवाद है वह यह घोषणा कर रहा है वह राष्ट्र को सुचरित्र नही बनाता। वह इस राष्ट्र को दैत्य प्रकृति वाला बना रहा है, मूल कारण क्या है कि आहार और व्यवहार की जो दूषित बना दिया गया हैं। २८.१०.१९७२

311. पूज्य महानन्द जी की जीवन मुक्तता

पूर्व काल मे मुझे भी बहुत-सा उपदेश दिया गया था, मैं भी इन वाक्यों को स्वीकार नही करता था, परन्तु जब गुरुओं की कृपा हई, इन्होंने ज्ञान का उपदेश दिया, ज्ञान का पौधा, मेरे अन्तःकरण में लगाया, तो मेरा जीवन परिवर्तन हो गया, कैसा परिवर्तन हुआ, कि मैंने लगभग पचास वर्ष की आयु तक इसी प्रकार धृष्टता की, परिणाम यह कि मैं इब उन वाक्यों में जाना नही चाहता, विचार यह कि गुरु जी की अनुपम कृपा हुई तो मैं जीवनमुक्त हो बन गया, इसी प्रकार हे यज्ञमान! यदि तू संसार में इन्द्रियों पर अधिपथ्य करके, प्रत्येक मानव जब ऋषि-मुनियों के उपदेशों पर अपने जीवन को व्यतीत करने लगता है, तो उसका जीवन महान बन जाता हैं, जैसा तुम मुझे दृष्टिपात करते हों। २८.१०.१९७२

312. वास्तविक कर्म

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य ... धन्य हो, मेरे प्यारे! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ सूक्ष्म उपदेश दिया मैं तो इनके उपदेशों को ज्ञान नही पाया इनके वाक्य उच्चारण करने का मन्तव्य क्या हैं परन्तु जो इन्होंने वाक्य प्रगट किया, राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में अथवा चरित्र के सम्बन्ध मे वह धर्म शास्त्र के अनूकुल थी, यज्ञमान के सम्बन्ध में अथवा यज्ञमानों के सम्बन्ध में, उनके चरित्र उनकी मानवता को ऊँचा बनाना, हमारा कर्तव्य है, इनके वाक्य तो बड़े प्रिय थे। परन्तु कटु भी थे। अपने जीवन के वाक्य उच्चारण करने का इन्हें कुछ आश्चर्य नही। बाल्यकाल में कोई धृष्टता हो भी जाती है मानव धृष्टता करता भी रहता हैं, इन सब की पुनरूक्ति करना हमारा कर्तव्य नही, विचार यह कि संसार को भविष्य में ऊँचा बनना है, जैसा महानन्द जी ने कहा है कि भविष्य में ऊँचा बनना है, क्योंकि संसार में नाना प्रकार के दूषित अशुद्ध कर्म होते रहते हैं, संसार में प्रत्येक मानव जो जन्म लेता है, उन जन्मों में कोई न कोई त्रुटियां होती हैं, परन्तु उन त्रुटियों को त्याग करके और महता को अपना करके मानव को अपने जीवन को आग्रेय बनाना चाहिए, यही मानव का वास्तविक कर्म हैं।

रहा यह कि राष्ट्रवाद की चर्चा राष्ट्रवाद में आता ही यह है कि राष्ट्र तो होता है, चरित्र के लिए धर्म और मानवता की रक्षा के लिए, परन्तु इससे आगे मुझे भी कोई वाक्य प्रगट करना नही है, आज महानन्द जी ने जो वाक्य उच्चारण किए, वह वास्तव में शिक्षाप्रद है, महान है। परन्तु रहा यह कि विज्ञान की उड़ान तो परम्परा से हमारे मानवीय मस्तिष्कों में रही हैं, वास्तव में मानव कोई परिचय भी नही दे सकता, क्योंकि मानव का परिचय है क्या, इसके ऊपर बहुत गम्भीरता से विचारना है। २८-१०-१९७२

313. अन्न से मन

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव क्या आहार करते थे? उनका क्या व्यवहार रहता था? अपने शिष्यगणों को किस प्रकार की विद्या का अध्ययन कराते थे। वे यौगिक प्रक्रिया में ले जाते थे। आज प्रायः यह मानव अनुभव करता रहता है। मैंने अपने वत्स के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि संसार में मानव यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करता है। सबसे प्रथम उसके मन पर उसका अधिकार होना चाहिए। मन क्या है? मन प्रकृति का एक सूक्ष्म तत्त्व है। मन प्रवृत्तियों का विभाजन करने वाला है। वह जो मन है वह पृथ्वी में भी रहता है और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में और मानव के जीवन का साथ भी वह मनीराम बना रहता है। तो मन की प्रक्रिया को हमें जानना है। और मन की जो प्रक्रिया होती है वह मनुष्यों के आहारों के ऊपर होती है। जैसा आहार होता है, वैसी ही मन की प्रक्रिया होती है। तो आज हमें इस अन्न को पवित्र बनाना है। ११.११.१९७२

314. गुरुदेव का अन्न चयन

वह समय मुझे स्मरण आ रहा है, जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव चरणों में ओत-प्रोत कराते। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि आज मुझे उस अन्न को पान कराना है, जिस अन्न से तुम्हारा मन स्वच्छ बनेगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मार्ग से औषधियां एकत्रित करते रहते। नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके उसका पान बनाकर, उस अन्न को पान करते थे, तो उस अन्न पर भी किसी मानव का अधिकार नहीं होता था। इस प्रकार मन पवित्र बन जाता है और मन के पवित्र बन जाने से बुद्धि स्वच्छ बन जाती है। बुद्धि में जो मेधा, ऋतम्भरा प्रज्ञा वाली बुद्धि की जो तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, वे तरंगें स्वच्छ रूपों में दृष्टिपात करती रहती हैं। तो सबसे प्रथम हमारा अन्न में जो दोष है उसे हमें दूर करना है, आज जो भी मानव योग को पान करना चाहता है। ११.११.१९७२

315. गुरुदेव के यहाँ पञ्चाङ्ग

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यहाँ नाना प्रकार के पंचांगों को पान कराया। क्योंकि योगी ऐसे वैसे नहीं बनता। यहाँ कोई यह विचार करने लगे इस संसार में, जैसा मुझे महानन्द जी ने प्रकट कराया, कि संसार में दूसरों के अधिपथ्य को एकत्रित करने वाला, द्रव्य पान करने वाला योगी बन जाए, तो यह असम्भव है। योगी तो उस काल में बनता है, जब वह अपने अधिकार को अपने में ग्रहण करने लगता है। अपना अधिकार भी क्या है? जो नाना प्रकार के वृक्ष हैं, इन वृक्षों का जो रसास्वादन है उसको पान करने की प्रक्रिया बनी रहती है, परन्तु सबसे प्रथम रसना आदि इन्द्रियों को विजय करना है।

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने सबसे प्रथम जाल का पञ्चाङ्ग बनाया। जाल एक वृक्ष होता है जब उसका

पञ्चाङ्ग बनाया, सबसे प्रथम उसका पान किया तो गुरुदेव से कहा भगवन! यह तो सुन्दर प्रतीत नहीं होता। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव मौन हो गए, उन्होंने कोई वाक्य अथवा उत्तर हमें नहीं दिया। न देने का परिणाम यह हुआ, कि हम भी मौन हो गए। परन्तु मौन हो जाने के पश्चात उसी जाल के पञ्चाङ्ग को लगभग एक वर्ष तक पान करते रहे। पान करने के पश्चात, इस प्रकृति पर उसका परिणाम यह हुआ, कि यह जो नाना प्रकार की काम की वासना थी, जो मन चंचल रहता था, मन चलायमान रहता था तो उस मन में स्थिरता आ गई, बुद्धि में स्थिरता आ गई। मन में जब स्थिरता आ गई, जब मन अकृत बन गया उसके पश्चात एक प्रभु का चिन्तन रह गया। प्रभु को अपने में स्वीकार करने लगे।

पञ्चाङ्ग आहार से वैज्ञानिक बोध

तो उन्होंने लगभग एक वर्ष तक पीपल के पञ्चाङ्ग को। एक वर्ष तक वट के पञ्चाङ्ग को, एक वर्ष तक बेल के पञ्चाङ्ग को, और एक वर्ष तक स्वाति एक वृक्ष होता है उसके पञ्चाङ्ग को। एक वर्ष तक सुषा के पञ्चाङ्ग को। इस प्रकार लगभग बारह वर्ष तक, बारह वृक्षों के पंचांगों को पान कराने के पश्चात मन में पूर्ण स्थिरता आ गई। स्थिरता आ जाने का परिणाम यह हुआ कि जीवन क्रियात्मक बन गया। जीवन में तपस्या का पूर्णतम बल आ गया। परिणाम यह हुआ आत्मा बलवान बन गया। बलवान बन जाने के कारण ये, जो नाना प्रकार के परमाणु वायु मण्डल में भ्रमण करते हैं तो उस समय बुद्धि मेधावी बन गई। मेधावी के स्थान में जब बुद्धि पूर्णतया मेधावी बन गई, तो मेधावी क्षेत्र में यह हुआ कि यह जो नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में जाना यातायात का होना, प्रकृति के सूक्ष्म स्वरूप को जानना, जो करोड़ों जन्मों के संस्कार हमारे चित्त में विराजमान होते हैं, वे जो चित्त के संस्कार थे उनमें उदबुद्धता आने लगी। उनमें जब उदबुद्धता आने लगी तो वे जो विज्ञान के संस्कार थे, वह ऊर्ध्वगति को आने लगे, तो नाना प्रकार के यन्त्रों में गति आने लगी। यन्त्र का निर्माण कैसे होता है? क्योंकि बुद्धि और मेधावी क्षेत्र तक ही प्रकृति का विज्ञान रहता है। प्रकृति की धारा रहती है, प्रकृति का स्वरूप साक्षात्कार हो जाता है। चन्द्रमा में कैसे जाना है? चन्द्रमा की किरणों के साथ में योगी कैसे ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है? चन्द्रमा की कान्ति में कैसे योगी रमण करता है? इस प्रकार की गति और उनमें नाना प्रकार के परमाणुओं का यौगिक मिलान, नाना प्रकार के यन्त्र वरुणास्त्र, आग्नेय-अस्त्र, स्वाति आदि नाना प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण उनकी प्रक्रिया उस योगी को साक्षात्कार हो जाती है। परिणाम यह कि यह जो मानव कहीं चन्द्रमा की उड़ान उड़ता है, कहीं सूर्य की उड़ाने उड़ने लगता है, कहीं यहाँ मंगल की उड़ान उड़ने लगता है, प्रत्येक लोक-लोकान्तरोंकी प्रतीति होने लगती है। कितने लोक स्थूल रूप में हैं जिनमें पार्थिव तत्त्व हैं? कितने लोक है जो मानो अग्नेय तत्त्व प्रधान हैं? कितने लोक हैं जो जल तत्त्व प्रधान हैं? कितने लोक हैं जो वायु तत्त्व प्रधान हैं? ये पंच महा भौतिक जो परमाणु हैं इन्हीं के अन्तर्गत सारा प्रकृतिवाद, सारा प्रपंच जो हमें दृष्टिपात आने लगता है। वह स्पष्टीकरण तो अच्छी प्रकार नहीं किया जाता पूर्णता से, परन्तु उसका स्वरूप मानव के समीप आ जाता है। ११.११.१९७२

316. गुरुदेव के दिव्य साधना परमाणु

मुझे स्मरण है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे, तो मृगराज उनके चरणों को छूते रहते थे। जब मृगराज उनके चरणों को छूते तो हम भी कहा करते कि प्रभु! यह तो मानव का भक्षण कर जाते हैं। उन्होंने कहा वत्स! हमारे जो विचार हैं, मानव का जो विचार है, अहिंसा परमो धर्मः है ऐसा आहार, ऐसा विचार जब ऊँचा बन जाता है, तो हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसा को त्याग करके, अहिंसा परमो धर्मः का पालन करके वह भी चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं। ११.११.१९७२

मेरे प्यारे महानन्द जी बहुत पुरातन काल की वार्त्ता प्रकट कर रहे हैं, कि महाराज अश्वपति ने अपने यज्ञ में महराजा स्वाति से यह निवेदन किया, कि महाराज! यह मैं जानना चाहता हूँ कि जगत वास्तव में है क्या स्वाति ऋषि ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आते है कि यह जो जगत हैं यह एक प्रकार की अनुसन्धानशाला हैं जिसमें प्रत्येक मानव अनुसन्धान करने के लिए आया है क्योंकि अनुसन्धान मानव का स्वभाव हैं मानव का लक्षय है अनुसन्धान करना ही चाहिए। ०६.०३.१९७१

317. गुरुदेव द्वारा संहिता अध्ययन

मुझे स्मरण है, जब मैं ब्रह्मचर्य आश्रम में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा संहिताओं का अध्ययन करता था, उनके चरणें में ओत-प्रोत था, तब मेरा अन्तरात्मा तपा हुआ था, उस समय प्रकृति के कण-कण में प्रभु को दृष्टिपात करता था, तो पाप कर्म की भावना कहाँ? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे ब्रह्मरन्ध्र का ज्ञान कराया था, ब्रह्मरन्ध्र के ज्ञान के द्वारा योगी लोक-लोकान्तरों का दिग्दर्शन कर लेता हैं, मानव का जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसमें दिव्य ज्योति है इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाम की नाड़ियों में से एक-एक की सहस्रों धाराए बन जाती है। उनका सम्बन्ध बाहरी जगत के नाना ब्रह्माण्ड से हो जाता हैं। ०८.०३.१९७३

318. पूज्य महानन्द जी के वाक्य

मेरे प्यारे महानन्द जी एक वाक्य उच्चारण कर रहे थे। वह मुझे बहुत प्रिय लग रहा था। क्योंकि वह वाक्य में पुरातन काल में भी उच्चारण करता रहा था। और उनसे वंश के वंश भी विचित्र बन जाते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक शब्द कल कहा। इससे पूर्व शब्दों में चाहे गृह आश्रम हो, वानप्रस्थ, संन्यास, कोई भी आश्रम हो, प्रत्येक आश्रम में चरित्र की बड़ी महत्ता मानी जाती है। चरित्र मानव का जीवन होना चाहिए। राष्ट्र का चरित्र, मानवता का चरित्र ऊँचा होना चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक वाक्य बहुत प्रियतम उच्चारण किया। परन्तु प्रायः वह दृष्टिपात नहीं किया गया। प्रायः वह समाज में घटित भी होता है। जिस गृह को नारकीय बनाना हो, उस गृह में मानव अपनी आभा में आभायित न रह करके दुश्चरित्रता में परिवर्तित होते चले जाओ, तो गृह नारकीय बन जाता है। १२.०३.१९७३

319. स्मृति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आश्रम में विद्यमान रहते थे। १९.०३.१९७३

320. माता द्वारा याग

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि जब मेरी प्यारी माता अनुसन्धान करती रही हैं। मुझे वह काल स्मरण है जब यहाँ मेरी प्यारी माता याग कर रही है और जब वह याग करती है, तो उसका याग कैसा भव्य है, कि उसका कोई व्रत करने वाला हो, अनुसन्धान करने वाला हो, तो ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाती है। मेरी प्यारी मां, हे मां! तू वास्तव में जीवन को उद्बुद्ध करने वाली है, प्रकाश में ले जाने वाली है। ममतव को धारण करती हुई, तू शरीर की अग्नि को उद्बुद्ध करने वाली है। वही अग्नि उद्बुद्ध हो करके अमृत में प्रवेश हो जाती है, अमृत में उसका परिवर्तन हो जाता है। वह माता का कितना व्यापक धर्म है और उस धर्म को जो अपना लेता है, वह कर्त्तव्यवाद की वेदी पर विराजमान हो करके, अपने जीवन को ऊर्ध्वागति में ले जाता है, महान बना लेता है। १९.०३.१९७३

321. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे प्रायः प्रेरणा दी उसी प्रेरणा के आधार पर, आज का हमारा वेदों का पठन-पाठन प्रारम्भ था। ०३.०५.१९७३

322. आशीर्वाद

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ वाक् प्रगट करने आया, जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर, परन्तु उस स्थली पर याग का प्रारम्भ और याग का समापन, मैं अभी-अभी दृष्टिपात कर रहा था, मैं यज्ञमान को सदैव यह अपने वाक् प्रगट करने आया हूँ। ०३.०५.१९७३

323. गुरुदेव का जीवन

मुझे तो अपने पूज्यपाद गुरुदेव का वह जीवन स्मरण आता रहता है, मैं आज इन वाक्यों को नही उच्चारण करने आया हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, कई काल में मुझे संकेत दिए, परन्तु आज तो मैं यह उच्चारण करने आ पंहुचा हूँ, कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वह जीवन जब मुझे स्मरण आता है, एक समय स्वाति राजा के यहाँ याग का निर्माण करना था, याग को रचाना था। ब्रह्मा की उपाधि को प्राप्त करना था, परन्तु जब कजली वनों में आया गया और पूज्यपाद गुरुदेव को निमन्त्रण दिया और पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा-जब तक तुम इन्द्रियों का निग्रह नहीं करोगे, मैं याग को कदापि नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि अधिकार के द्वारा जब याग होता है, तो उस याग की सुगन्धि ब्रह्माण्ड में परिणत होती है, जब ऐसा पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा तो राजा ने कहा भगवन्! मेरी इन्द्रियाँ निग्रही ही रहती हैं, उन्होंने कहा क्या प्रमाण है तुम्हारे द्वारा? उन्होंने कहा कि मेरे द्वारा यह प्रमाण है, कि मैं अपने स्वयं मेरी पत्नी कला कौशल करती है, मैं सूक्ष्म-सी कृषि करता हूँ, उसके बदले जो द्रव्य आता हैं उसको मैं पान करता हूँ, मैं अपने समाज के, राष्ट्र के वैभव को संग्रह करने वाला नहीं हूँ, मैं सदैव याज्ञिक करने वाला हूँ। इसीलिए मेरे यहाँ वृष्टि याग का निर्माण कीजिए और वृष्टि याग कराईए।

उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि तुम एक वर्ष तक ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचारी रहो। उस समय राजा ने तथास्तु कह करके वहाँ से प्रस्थान कर लिया। परन्तु प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने कहा कि महाराज! एक वर्ष तो बहुत ही प्रबल है, क्योंकि मैं ब्रह्मचर्य का पालन तो मैं बहुत ही समय तक कर सकता हूँ, परन्तु याग की मुझे शीघ्रता है याग अवश्य कराईए, तो उस सयम मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा सुप्रभा अस्तु, तू छह माह तक, राजा ने वैसा ही संकल्प किया और संकल्प करने के पश्चात छह माह के पश्चात याग का निर्माण हुआ। जब याग हुआ तो यज्ञमान को पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यज्ञमान को इतना महान, होताओं को इतना महान, तीन गुण होताओं में होने चाहिए। याग में विराजमान होने वाला हो, एक तो सबसे प्रथम यज्ञमान में नम्रता और निरहंकारता होनी चाहिए। और जो होताजन बने हुए हों, सहायक हों उनके द्वारा सेवा भाव की प्रवृत्ति और नम्रता होनी चाहिए। जिस मानव के जीवन में सेवा की नम्रता नहीं होती, उस मानव को याग के ऊपर विराजमान होने का कोई अधिकार नहीं होता। इसीलिए क्योंकि उनका हृदय जब तक नम्रता में न हो जाए, वह अपने द्रव्य की लोलुपता में वह अपने आश्वातों में, वह केवल ऐसे जैसे अपने में जैसे उखड़ा हुआ वृक्ष होता है, जब तक उस प्रकार का हृदय है, ऐसे मानव को यज्ञ के निकट कदापि नहीं आना चाहिए, ऐसा मुझे परम्परागतों से मैं इन वाक्यों का सदैव पुजारी रहा हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब राजा से कहा कि ऐसे होता बनें, ऐसे अध्वर्यु बनें, परन्तु यज्ञ का प्रारम्भ होने लगा। जब यज्ञ प्रारम्भ हुआ तो वेदों से यज्ञ की प्रतिभा वह है जितने भी शुद्ध होता हैं, जितना शुद्ध हृदय यज्ञमान का होता है, उतना ही वायुमण्डल में पवित्रता होती है, जो भवन अन्तरिक्ष में जो जलों का भरण हो रहा है, उन देवताओं के प्रसन्न होने पर वह जो मेघ हैं, वह समुद्रों से भी अन्तरिक्ष से सुगन्धि साकल्य के प्रभाव से वृष्टि याग प्रारम्भ हो जाता है, और याग जहाँ वृष्टि भी प्रारम्भ हो जाती है। ०३.०५.१९७३

324. जीवन याग

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराते हुए कहा, वास्तव में गुरुदेव तो सर्वत्र जानते हैं, पुरातन काल में प्रत्येक मानव का जीवन एक प्रकार का याग बनकर के रहता था। याग का अभिप्रायः ये है कि हम संसार की उन कामनाओं में परिणत न हो जाएँ, इस संसार के, उन आवेशों में रमण न कर जाएँ, हमारा आत्मबल नष्ट-भ्रष्ट न होता रहे। ०७.०५.१९७३

325. ब्रह्मा जी का जन्म दिवस

जन्म दिवस मानव का सदैव होना चाहिए। हमारे वैदिक साहित्य में जन्म दिवस की महान से महान प्रथा आयी है। किसी काल में हमारे पड़पिता का जन्म हुआ था, जमदग्नि ऋषि का जन्म हुआ, किसी काल में हमारे पिता, महापिता का जन्म हुआ, तो हम जन्मदिवस मनाते रहे। मैं परंपरागतों से ही अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रेरणा लेता रहता हूँ। जब हम आश्रमों में रहते थे, तो ब्रह्मा जी के जन्मदिवस की प्रथा को प्रायः मनाते रहते थे। आज भी वो परंपरा चली आ रही है, जिसको हम वसंत पञ्चदशी कहा करते हैं। उस दिवस संसार में ब्रह्मा का जन्म हुआ था। इसी प्रकार हमारे ऋषि मुनियों ने जन्म दिवस को उत्सव माना है। मृत्यु दिवस का अपना कोई अस्तित्व नहीं माना है। क्योंकि जब मृत्यु होती ही नहीं, तो उसका अस्तित्व भी क्या है। एक आत्मा गृह से चली गई, सूर्य मण्डल में, उस आत्मा की प्रतिभा, उसके कर्मां का तारतम्य, उसके साथ में रमण करने लगा। वह आत्मा किसी न किसी लोकों में रमण करता चला गया, अपना आनन्द मना रहा है, जीवन की आभा में रमण कर रहा है। परन्तु मृत्यु दिवस का अस्तित्व हमारे जीवन में, नहीं होना चाहिए। जन्म दिवस अवश्य मनाना चाहिए। ०७.०५.१९७३

326. गुरुदेव का जीवन

मैं तो अपने पूज्यपाद गुरुदेव का वो समय कितना विचित्र था, जहाँ उत्तर, प्रश्न होते थे, महा भयंकर वनों से लाया जाता, मैं तो जब संसार को, कर्म की प्रथा को, कर्म के उस विचित्र दृश्य को दृष्टिपात करता हूँ, तो मेरा हृदय तो किसी काल में दुखित हो जाता है और किसी काल में हर्ष ध्वनि करने लगता है। 7-5-१९७३

327. स्मृति

मुझे बहुत परम्परा का साहित्य, परम्परा का वाक् स्मरण आता रहता है। ३०.०७.१९७३

328. महाराज अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग

मुझे स्मरण आता रहता है, महाराज अश्वपति के यहाँ एक समय वृष्टि याग हुआ। तो जब वृष्टि याग हुआ तो राजा ने नाना औषधियों को एकत्रित किया। उनके द्वारा वह जो याग हुआ पान्ति याग हुआ, उसके पश्चात वृष्टि याग हुआ। उसमें दोनों समावेश हो गएं, तो इसका सम्बन्ध मानव के विचारों से सम्बन्धित रहता है, मानव के विचार इतने महान पवित्र होने चाहिए, इतना अहिंसा से विमुख, अहिंसा से सुगठित होने चाहिए, हिंसा से दूर होने चाहिए। ऐसा जो याज्ञिक पुरुष होता है वह अपना पान्ति याग करता है। ३०.०७.१९७३

329. गुरुदेव का गायत्री गान

मुझे वह काल भली भांति स्मरण आता रहता है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा परिणत होते थे, तो वे गायत्री को गाते थे। ३०.०७.१९७३

330. अकल्याणकारी पुस्तक के अध्ययन पर गुरुदेव द्वारा बहिष्कार

जब मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अग्न्याधान किया, तो मैंने तब एक पुस्तक का अध्ययन, एक पोथी का मैं अध्ययन करने लगा और वह पोथी अकल्याण की थी, उसमें असुरों का वर्णन था। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने मेरा आश्रम से बहिष्कार कर दिया। जब बहिष्कार कर दिया तो बारह वर्षो तक बहिष्कार रहा। तो मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से कहा, भगवन! आपने ऐसा क्यों किया? उन्होंने कहा-तुम पामर हो, क्योंकि तुम तपस्या करना नहीं चाहते हो। तुम मानव नहीं हो। जब तुम दैत्यों के विवरण का अध्ययन करोगे तो तुम्हारे द्वारा असुर प्रवृत्ति आ जाएगी और वह जो असुर प्रवृत्ति है, वह तुम्हारे सुकृत को हनन करने लगेगी, इसीलिए तुम अधिकारी नहीं हो। तो उसको त्यागा गया, तो विचार यह कि जो मानव अग्न्याधान करता है और अग्नयाधान के पश्चात जिस पोथी का अध्ययन करता है, यदि वह अकल्याण की है, तो उस मानव को याग करने का अधिकार नहीं होता, इस संसार में तो विचार-विनिमय क्या तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मेरा बारह वर्ष तक बहिष्कार किया और यह कहा कि तुम गायत्रियों का जपन करो। परन्तु जो गायत्री का जप नहीं कर पाता, गायत्री और छन्दों को अपने जीवन में नहीं लाता, अकल्याण की पोथियों का अध्ययन करता है उस मानव के सात जन्मों का पुण्य समाप्त हो जाता है, ऐसा मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने अध्ययन कराया।

331. गुरुदेव द्वारा अध्ययन

तो मैं उनके के चरणों में ओत प्रोत हो गया और लगभग उनकी वन्दना की, उनकी चरणामयी, पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी कि आओ और अध्ययन करो। हम याग का कर्म करना चाहते हैं। मैं यागों के सम्बन्ध में अधिक विवेचना करना नहीं चाहता। परन्तु याग करना मानव शरीर का। याग करना है मानव शरीर का, क्योंकि इसको पान्ति याग कहा जाता है इन्द्रियों का अध्ययन करने के पश्चात। हम प्रभु! की उपासना करते हुए और अपने मानव जीवन को ऊर्ध्वा गति में ले जाते हुए? हम सदैव विवेकी बनें। विवेकी बन करके साधारण समाज को भी ऊँचा बनाएं और इन्द्र की उपासना करते रहें। वह जो इन्द्र देव है जो वास्तव में रथी कहलाता है, वह इन्द्र हमारा कल्याण करने वाला है। ३०.०७.१९७३

332. भगवन राम का जीवन

मुझे स्मरण है राम सदैव लगभग एक सहस्र गायत्री का जाप करते थे। वे गायत्री का पाठ मस्तिष्क में करते थे, शब्दों से नहीं। उनका अभ्यास इतना ऊर्ध्व में था कि वह मस्तिष्क में प्रत्येक स्थल को सहस्रों समय उसकी पुनरुक्ति करते और पुनरुक्ति करते हुए मन गायत्री में रमण करता रहता। वह गायत्री हमारे यहाँ महापुरुषों का गुरु मन्त्र कहलाता था। गायत्री सावित्री भी कहलाती है। भगवान राम लगभग सहस्रों प्रकार के गायत्री रूपों से गाते थे तो उनका जीवन ऋषि जीवन था। ब्रह्मचर्य से संलग्न उनके जीवन में किसी प्रकार की त्रुटि न थी। जब भगवान राम आदि चारों विधाता पंक्ति में विराजमान हो गए, तो राम ने कहा कि हे विधाताओ! आज मैं अपने शरीर को त्याग रहा हूँ, आज मुझे माता गायत्री ने मुझे भान किया है, कि तुम्हारा समय इस जगत से समाप्त हो गया है। भगवान राम ने गायत्री का पठन पाठन किया और ओइम की ध्वनि ऊँचे स्वरों से की और ध्वनि के साथ अपने प्राणों को अपनी आत्मा को शरीर त्याग कर ऊर्ध्व गति को ले गए। वह भगवान राम का जीवन था। ३१.०७.१९७३

333. गुरुदेव के गुरुदेव का जीवन

मुझे स्मरण है जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा शिक्षा का अध्ययन करते थे, उसके पश्चात जब प्रबल हो गए, तो गुरु कुछ समय के पश्चात शरीर को त्यागने लगे, तो सब शिष्य पंक्ति में विराजमान हुए और पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि अब मैं अपने शरीर को त्याग रहा हूँ। उनकी ध्वनि हुई और अपने शरीर को त्याग दिया। वह मानव का जीवन सौभाग्यशाली होता है। हे मानव! तुम संसार के विवाद में क्यों जाते हो? तुम अपने मानव जीवन से विवाद क्यों नहीं करते। जो मानव इस संसार में अपने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से विवाद करता है, वह अपने जीवन को ऊँचा बना लेता है। वह मानव इच्छा से शरीर को त्याग करके वह परमात्मा के गर्भ में, गोद में विराजमान हो जाता है। ३१.०७.१९७३

334. गुरुदेव की शिक्षा आयुर्वेद से वर्ण बोध

मुझे स्मरण है जब हम पूज्य गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट हुए और हमने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा-कि महाराजा! हम ब्रह्म विद्या को पान करना चाहते हैं और

जिज्ञासु बनना चाहते हैं। उस समय हम आश्रम में सात ब्रह्मचारी थे और सातों ने जब अपनी जिज्ञासा प्रकट की, तो पूज्यपाद गुरुदेव कहीं से औषधि लाए और औषधि लाकर के उसका मस्तिष्क पर लेपन किया। लेपन करने से पूज्यपाद गुरुदेव ने मस्तिष्क का अध्ययन किया और अध्ययन करने से उन्हें ज्ञान हो गया, कि वास्तव में इनको ब्रह्मवेत्ता बनने की पिपासा है। उसके पश्चात उन्होंने अपने आश्रम में स्थली प्रदान की। फिर हम पूज्यपाद गुरुदेव से अध्ययन करने के पश्चात सेवा करते रहते, उनके चरणों की वन्दना करके उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयास करते। आयुर्वेद के पण्डित जानते हैं, वे आचार्य जानते हैं कि वे कौन कौन-सी औषधियां होती हैं। स्वाति नाम की औषधि होती है स्वाति, भृंगणी, अनुवादन, स्वेतकेता, अर्वभृति ये औषधियां होती हैं। इनको ला करके स्वेतकेतु में वह चन्दन और तालिस पत्र उन सबको अग्नि में तपाते हैं और तपाकर के शीतल करके जैसे तिलक आङ्गित करता है इसको इस रूप में लाया जाता है और इन सब औषधियों को लेकर के मस्तिष्क पर जब इसका लेपन करते तो मस्तिष्क के गढ़े में गति होती है, उसके श्वांसों में घ्राण में और चक्षुओं में और श्रोत्रों में गति होती है। एक रात्रि और एक दिवस तक उन औषधियों का तीन चार समय लेपन होता है, तो एक रात्रि और एक दिवस में आचार्य यह निर्णय कर देता कि यह कौन से वर्ण में जाने वाला बालक है। तो यह आयुर्वेद परम्परा से बहुत ऊँचा रहा है। इसके आधार से वर्ण व्यवस्था का निर्माण होता, उससे राष्ट्र ऊँचा बनता है, राष्ट्र में वर्ण व्यवस्था ऊँची बनती है, वहाँ जातीयता नहीं होती क्योंकि मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने निर्णय कराया कि महाभारत काल के पश्चात समाज में जातीयता आ गई। यह जातीयता जिस काल में आती है, वह काल रक्त भरी क्रांति का होता है, उस काल में समाज में शान्ति की स्थापना नहीं होती। वर्ण व्यवस्था जो होती है, वह कर्म-गुणों के आधार पर होती है। गुण कर्म का निदान करने वाले आचार्य होते हैं। आचार्य सर्व-विद्या वाले होते हैं।

335. वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था की जब राष्ट्र में स्थापना हो जाती है, तो राजा के राष्ट्र में ब्राह्मण भी होते हैं, क्षत्रिय भी होते हैं, वैश्य भी होते हैं और शूद्र भी होते हैं। ये चारों अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। विज्ञान भी होता है, तो वह भी कर्तव्य की सीमा में होता है। जहाँ कर्तव्य होता है, वहाँ राष्ट्र में रक्त भरी क्रांति नहीं होती और वहाँ राष्ट्र की भी कोई विशेष आवश्यकता, किसी काल में नहीं रहती।

हमारे यहाँ बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष होने चाहिए और सर्वत्र विद्या के अध्ययनशील प्राणी होने चाहिए, जिससे जीवन में एक महत्ता की स्थापना हो जाए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझसे यह कहा करते थे कि हे बालको! हे ब्रह्मचारियो! आज जैसे तुम याजिक हो और वाद करते हो, याज्ञक पुरुषों का अकल्याण का अध्ययन नहीं करना चाहिए। पुरातन काल में जब हम अध्ययन करते थे, तो हम पाठन का कार्य भी करते थे, तो लगभग ४०-४० वर्षों तक किसी सुन्दरी का दर्शन भी नहीं होता था। इससे हमारे मन में अशुद्ध संस्कार आते नहीं थे। केवल अध्ययन का ही कार्य चलता रहता। जब हम उसके उपराम होते, गृहस्थ में रहते तो अकल्याण के पठन-पाठन की प्रक्रिया को वे यह कहा करते थे, कि इसका अध्ययन करना तुम्हारे लिए दुष्कर है। तो अकल्याण की पोथी को अध्ययन करने से मानव का अकल्याण होता है। वह भी अध्ययन है, जो कुअध्ययन है और जो धर्म शास्त्रों का ऋषि मुनियों के जीवन का अध्ययन करता है, उससे मानव में प्रेरणा आती है और वह जो प्रेरणा है, वह मानव के दबे हुए संस्कारों को उदबुद्ध कर देती है। उसके पुण्य के संस्कार उदय हो जाते हैं और मानव का जीवन कृत-कृत्य हो जाता है। जो अकल्याणकारी अध्ययन है, वह कुअध्ययन है, जिससे बुद्धि में वासना की वार्त्ता आती रहती है और जो वासना है वह मानव के पुण्यों को भी नष्ट कर देती है और पापों को एकत्रित करके आहार भी उसका अशुद्ध हो जाता है, उसकी प्रवृत्ति भी चंचल हो जाती है और मानव जीवन की जो निश्चिन्तता है वह सब समाप्त हो जाती है जो परिणाम कि अकल्याण का अध्ययन नहीं होना चाहिए, वह कुअध्ययन है।

336. गुरुदेव द्वारा याग

जब प्रातःकाल होता, तो हमारे आचार्य यज्ञ कराते, यज्ञ में जो मन्त्रार्थ होते, उससे ऐसा प्रतीत होता जैसे देवता यहीं विराजमान हैं। उसके पश्चात अध्ययन होता, उस अध्ययन में सुगठितता होती। आज कोई मानव यह उच्चारण करने लगता है कि यज्ञों में मेरी रूचि होनी चाहिए, परन्तु रूचि उस काल में होती है जब हे मानव! तेरे सात्विक संस्कार होंगे। यदि असात्विक विचारों से यज्ञ भी करता है, तो वह जो यज्ञ है, वह तुम्हारे लिए विपरीत हो करके तुम्हारे सुकृत को नष्ट कर देता है। यही मत जानो, कि यह जो यज्ञ है, यह तुम्हें पुण्य ही पुण्य उपलब्ध करेगा, नहीं यज्ञ पापों को भी प्रदान कर सकता है। मैं यज्ञ में नहीं जाना चाहता हूँ परन्तु मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि आयुर्वेद भी हमारा यज्ञ है, ब्रह्म विद्या भी यज्ञ है, इसका हमें अध्ययन करना चाहिए, इसको हमें क्रिया में लाना चाहिए। ०१.०८.१९७३

मेरे प्यारे महानन्द जी आज मुझे कुछ राष्ट्रवाद की प्रेरणा दे रहे हैं। मैं राष्ट्रवाद की चर्चा तो करने नहीं आया हूँ, संक्षिप्त वाक्य अवश्य प्रकट करता हूँ। ०२.०८.१९७३

337. गुरुदेव का निर्देश

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते थे, कि यह संसार तो विचारको का जगत है विचारकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है। ०७.०८.१९७३

मेरे प्यारे महानन्द जी की एक प्रेरणा है, न प्रतीत इनकी प्रेरणा इस प्रकार क्यों प्राप्त होती है, आज भी पुनः से यागों का वर्णन करने जाऊंगा। ०९.०८.१९७३

338. अश्वपति के यहाँ पुरोहित

हमें जब महाराजा अश्वपति के यहाँ प्रायः पुरोहित रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा तो इस प्रातः काल की अग्नि में जब वेदों का गान गाते थे तो प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिपात होने लगता था। जब पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब अध्ययन करते थे तो वहाँ मृगराज चरणों में ओत-प्रोत रहते थे। पूज्यपाद गुरु के प्रश्न होते रहते प्रभु ये मृगराज कितने सुहावने प्रतीत होते हैं। जब यह अपने वनों में अपनी वाणी से गर्जना करते हैं तो मानो ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानव के लिए प्रलय काल आ गया हो। परन्तु जब ये आपके चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं तो प्रभु! ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये माता के शिशु हों। प्रभु हमें यह प्रतीत नहीं हो रहा है। पूज्यपाद गुरुदेव उसका निराकरण करते और ये कहा करते कि हे पुत्रवत! ये जो मृगराज हैं, ये शिशु की आभा में ही रमण करते रहते हैं। परन्तु ये परमात्मा के सब शिशु

हैं और परमात्मा के शिशुओं को जानना ये हमारी बुद्धि और विद्या के ऊपर निर्भर रहता है।

परन्तु जितना भी मानव के अन्तरात्मा में ज्ञान होता है, अथवा प्रकाश होता है, उतना ही इस संसार के प्राणी हैं, उन सबको पुत्रवत स्वीकार करता हुआ, वह अपने मानव जीवन को अतुल्य बनाता रहता है। जब मैं यह कहा करता हूँ, हे भगवन! क्या ये मृगराज आपको तो गर्जना नहीं करते? पूज्यपाद कहते इनकी गर्जना में प्राण की शक्ति है। इस प्राण की शक्ति को हम यदि अपने मन से उसका खण्डन कर देते हैं, तो वह प्राण की शक्ति मन की सहकारिता से और आत्मज्ञान के प्रकाश में वह गर्जना और मन दोनों का समन्वय होता हुआ, वह एक रस होता चला जाता है।

339. पूज्य महानन्द जी की प्रेरणा

आज मेरे प्यारे महानन्द जी की प्रेरणा ऐसी है कि इस प्रातः काल की अग्नि में मैं भी दो शब्दों का प्रतिपादन करूं। परन्तु मैं अभी-अभी समय प्रदान कर पाऊँगा। जीवन की आभा के लिए मानव को अपनी आभा को दूसरे की आभा से सम्बद्ध करने का नाम जीवन है। और उसको विवेक कहते हैं। परन्तु विवेक में विडम्बना नहीं होती। जब विवेक में विडम्बना नहीं होती तो जहाँ विडम्बना नहीं होती वहाँ हिंसा भी नहीं होती। परन्तु जहाँ हिंसा नहीं होती वहाँ मानव में प्रसन्नता रहती है। और वह जो प्रसन्नता है वह सदैव मेरे जीवन की आभा बनके रहती है। मेरे जीवन का एक अंग बनके रहती है।

340. गुरुदेव के गुरु द्वारा साधना

जैसा मुझे स्मरण है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब साधनाकाल में रमण करते थे, तो साधना काल में ऐसी स्थली पर साधना करते थे, जहाँ अपनी श्वास की गर्जना उन्हें श्रवण करने के लिए पर्याप्त होती थी। परन्तु कोई मृगराज नहीं अपनी ध्वनि करता था। पक्षीगण भी वाक्य नहीं उच्चारण करते थे। परन्तु उस साधना काल में जब षटशास्त्रों का अध्ययन करने वाला, वेदोक्त विचार विनिमय करने वाला, प्रकाश की आभा को विचारने वाला एक मानव कहलाता है। पुत्र! संसार की आभा में रमण करने वाला जीवन की सार्थकता को पूर्ण करता रहता है जिससे नाना प्रकार की विडम्बनाओं में परिणत होता हुआ, जीवन की आभा में रमण करता रहता है।

एक समय महाराज अश्वपति का अपने पूज्य गुरुदेव के समीप उनका गमन हुआ। महाराजा अश्वपति ने कहा कहिए भगवन! मैं तो आपके दर्शनार्थ के लिए आपके द्वार पर आ पहुंचा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा-बहुत सुन्दर। तो ये कहा करते थे कि हे राजन! तुम्हारा राष्ट्र पवित्र होना चाहिए। तुम्हारे राष्ट्र में हिंसक प्राणी नहीं होने चाहिए। परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी की सुरक्षा रहती है, वह राष्ट्र प्रियतम होता है। ऐसा जब पूज्यपाद गुरुदेव महाराजा अश्वपति को कहा करते, तो महाराजा अश्वपति उन्हें स्वीकार करते। परन्तु उनके नाना मन्त्री अपनी ब्रह्मविद्या में परिणत रहते थे। आज मुझे प्रातः काल की अनुपम बेला में वह काल मुझे दृष्टिपात आ रहा है। जैसे मानो मानव के हृदय पटल पर वह चित्रावली मेरे समीप आ रही है। जिन चित्र पटलों का यह संस्कार है, उन संस्कारों की, आभा मेरे समीप है। जब मैं यह विचारता हूँ कि वास्तव में जीवन की आभा मानव को कहाँ से कहाँ परिणत कर देती है। ०१.०९.१९७३

341. पूज्यपाद गुरुदेव राजा अश्वपति के यहाँ

पूज्यपाद गुरुदेव राजा अश्वपति के यहाँ विज्ञान की आभा में रमण करते रहे। महाराजा अश्वपति के यहाँ कोई हिंसा नहीं होती थी। वह वैज्ञानिक सुधनवा नाम का वैज्ञानिक था। सुधनवा नाम के वैज्ञानिक की आत्मा महाराजा अश्वपति के यहाँ रही। स्वेतकेतु राजा के यहाँ पुनः अस्वति पुनगर्मन (पुनर्जन्म) हुआ। परन्तु उसके पश्चात वह पुनीत आत्मा जहाँ हमारी यह आकाशवाणी, जिस गृह में प्रवेश कर रही है, वह गृहपति प्रायः सात जन्मों के तारतम्य के आधार पर पूर्व जन्मों में वह जहाँ अहिंसा के ऊपर विचार विनिमय होता रहता था, अहिंसा को प्रतिभा में रमण करने वाला वैज्ञानिक तत्त्वों को ग्रहण करते रहते थे। परन्तु प्रायः दुर्भाग्य वश परन्तु जन्माजायताम सप्ते सुप्रजा सन्तन अस्ति सुप्रजाः। मेरा वेद कहता है कि मानव को अपनी संगति और अपने जन्म जातानि अस्ति। वह ब्राह्मण कुल में है। ब्राह्मणों की कई प्रकार की शाखाएं कलियुग के काल में बनीं। परन्तु ब्राह्मण कुला अस्वति धियो सांजनाम धीमानाम चक्रते धीमानो अस्वतिः। धीमान बुद्धि को कहा जाता है। परन्तु कुछ मानव समाज में रूढ़िवाद में परिणत होते हुए ब्राह्मण समाज के कुछ विभाजन हुए। परन्तु उस विभाजन के कारण धीमानों के गृहों में जन्मा जायमाम। वह संगति दूषित होने से परन्तु वह विचार कहीं-कहीं रूढ़ि चले। परन्तु जीवन जन्मों पर आधारित होता है।

जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब प्रातः काल को गान गाते, तो मृगराज भी चरणों में ओत-प्रोत थे। परन्तु वह कर्मों की गति इतनी विचित्र बनती चली गई, कि गुरु के शाप से कहाँ जन्म की आभा बनी। तब कैसे-कैसे अपने जीवन में पहुंचे, मुझे कोई कष्ट तो होता नहीं। क्योंकि कर्मों की विचित्र गहन गति है। आज मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। परन्तु विचार यह देने आया कि पूज्यपाद गुरुदेव प्रातःकाल की इस अनुपम बेला में क्या मानव के जन्म-जन्मांतरों के जो संस्कार हैं वे संस्कार आज भी विद्यमान हैं। परन्तु उन संस्कारों को भस्म कर देने वाला प्राणी होना चाहिए। जन्मों की गति बड़ी विचित्र होती है, परम्परा से आध्यात्मिकवादी क्या, ऋषिजन क्या, हम पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) को इस मानव के शरीर प्राप्ति को अधिकार नहीं करते। ०१.०९.१९७३

मैं अपने पूज्यपाद से अध्ययन कर रहा हूँ, कि एक समय सुधनवा नाम का वैज्ञानिक जब गुरु के द्वार पर आते, तो आते ही यह प्रश्न करते कि महाराज! मैं आज उड़ान उड़ना चाहता हूँ। तो पूज्यपाद कहा करते कि उड़ो। उड़ने वाले नाना यानों का निर्माण होता रहता। और उस निर्माण में प्रथम आध्यात्मिकवाद की उड़ान में विभिन्नता और भौतिकवाद की आभा में आभायित रहना, एक यह मानव का यह विशिष्ट कर्त्तव्य कहलाया गया है।

342. वायु के सेवन से आहार पूर्ति

परन्तु जहाँ मैं यह विचारता रहता हूँ कि महाराज! अश्वपति के यहाँ विज्ञान को जानने के लिए निद्रा को त्यागना और अन्न को त्यागना, एक समय अनुसन्धान करते-करते चालीस दिवस हो गए और चालीस दिवसों में कोई भी अन्न का अंकुर पान नहीं किया, केवल ये कहा करते थे पूज्य मुझे वायु के सेवन की कोई विधि वर्णन कीजिए। तो वायु के सेवन की विधि प्रायः है। क्योंकि वायु में पोषक तत्त्व होते हैं। इन तत्त्वों से मन, प्राण स्थिर रह सकते हैं। आत्मा को तो क्षुधा लगती ही

नहीं। क्योंकि प्राण ही आहार करने वाला है। प्राणी की क्षुधा का मूल कारण प्राण को भरण करने के लिए वायु से पोषक तत्त्वों का ग्रहण किया जाता है। मैंने भी ८५ वर्षों तक वायु का सेवन किया। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव का इस पर बहुत अध्ययन रहता था। तो आज मैं अपनी और इनकी प्रशंसा करने तो नहीं आया हूँ। परन्तु विचार यह देने आया हूँ, कि चालीस दिवस तक वायु के आधार पर ही जहाँ अध्ययन किया जाता हो और आत्मबल को इतना विचित्र और महान बनाने का प्रयास किया। उस समय उन्होंने एक वैज्ञानिक यंत्र का निर्माण किया। जिस वैज्ञानिक यत्र में विराजमान हो करके, हम वायु मण्डल में चन्द्रमा की गति से ऊपर ले कक्ष में स्वाति नक्षत्र की जहाँ छाया थी जहाँ विषाकृति आती है, जहाँ विशिष्ट मण्डल की आभा है, उस विशिष्ट मण्डल के अन्तर्गत वह यान भ्रमण करता रहता। जहाँ इतना विज्ञान और अहिंसा अर्थात वह वायु का सेवन करना और कुछ सूक्ष्म सा आहार करना। उसमें जो मानव इतनी उड़ान उड़ने वाला वह आध्यात्मिक वेत्ता भी हो और भौतिक विज्ञानवेत्ता भी इतना पारायण हो। ०१.०९.१९७३

343. पूज्य महानन्द जी का जीवन

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्य गुरुदेव से यह कहा था हे भगवन! यह संसार कहाँ जा रहा है? यह संसार बड़ी विचित्र गति को जा रहा है। यहाँ एक दूसरे का जो मिलन है, वह शत्रुता का मिलन हो गया है। परन्तु शत्रुता का मिलन वह कहलाता है, जो मानव मानव को अपने दूषित विचारों में परिणत कर देता है, वह शत्रुता वाली मित्रता है। हे मानव! तू उस मित्रता को धारण न करे। क्योंकि मित्रता को धारण कर, मित्रता में परिणत रहने वाली ही मित्रता है। मित्र का मित्र कौन है, तुम वायु नहीं चाहते, परमात्मा वायु प्रदान करता है। अहा! वह कैसा मित्र है, यथार्थ मित्र वह है जो दुर्गुणों से मानव को सदगुणों की प्रेरणा देने वाला हो। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे यथार्थ मित्र बनें। क्योंकि मैंने बाल्यकाल में नाना प्रकार के अपराध किये। मैं चालीस ऋषि कन्याओं के सतीत्व को नष्ट किए हुए था। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव ने अनुपम कृपा से मेरी प्रतिभा को जागरूक करते हुए, मेरी वह गति बना दी, कि मैं जीवन मुक्त की वेदी पर आ गया। कैसी विचित्रता होती है। परन्तु तप की महिमा की एक विचित्र धारा होती है। जिस धारा को जानने के लिए मानव मानव को सदैव अपने जीवन को ऊँचा बनाना एक मानवता कहलाता है। आज जिस गृह में हमारी वह आकाशवाणी प्रकाशित हो रही है पूज्यपाद! वंधनम मेधां च अस्वती स पुत्राः। ०१.०९.१९७३

344. तांत्रिकता का अशुद्ध मार्ग

हे पूज्यपाद गुरुदेव! यह संसार का चक्र कितना विचित्र चलता रहा है। वही सुधनवा नाम का इतना महान वैज्ञानिक, परम शिष्य व्रते उसके पश्चात वह राजा पृथु के यहाँ द्वितीय जन्म में महामन्त्री बने कृतिक नाम के। उसके पश्चात स्वाति नाम के राजा के यहाँ वो श्वेतकेतु नाम के महा कृति बने। उनके विशेष सचिव बने। परन्तु उसके पश्चात वह आगे प्रहाकृतिक बने। महाराजा शाण्डिल्य गोत्र से उनका जन्म हुआ और वह जमदाग्नि आश्रम में वहाँ परगतियों विज्ञान की गतियों का ज्ञान करके महाभारत काल में वे ही स्वातिक नाम के वैज्ञानिक बने। जो महाराजा घटोत्कच के निचले भाग में कार्य करते थे। परन्तु इस प्रकार स्वानाम वृत्ति एक जन्म और होने के पश्चात गृह गृहीत्य प्रभा वही मानव जन्म जायताम शुद्ध प्रभे अस्वाति कोतः। मानव जन्म से प्रायः शुद्ध होते हैं। परन्तु वही धीमान ग्रह जन्माकृतिः अस्वात। गृह में जन्म जायताम ब्रह्मणा कुलः। आज मृत मण्डल में जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। प्रायः यह जन्मों का चक्र तो चलता रहता है। उन जन्मों के चक्र की आभा को मानवे जान नहीं पाता। क्योंकि उसको प्रभु ही जानता है या ऋषिजन जानते हैं। परन्तु साधारण प्राणी प्रत्येक प्राणी तान्त्रिकता में परिणत रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने तान्त्रिकता का कोई अस्तित्व नहीं माना। तान्त्रिकता वेदों से भिन्न रहती है वह केवल अशुद्ध मार्ग है। इस मार्ग को अपनाने वाले प्रायः अधोगति को प्राप्त होते रहते हैं। तो विचार विनिमय यह है कि जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जन्मों का चक्र चलता रहा परन्तु इस प्रकार प्रायः चलता रहता है। संसार का प्रत्येक मानव का इसी प्रकार का चक्र है। नित्य प्रति आभा को जानना यह मानव का कर्त्तव्य है। ०१.०९.१९७३

345. गुरुदेव का जीवन

मेरे पुत्र ने मुझे बहुत परम्परा का साहित्य स्मरण कराया। आज उस साहित्य को लगभग पंद्रह लाख वर्ष हो चुके हैं। वह साहित्य कितना नवीन कराया मुझे प्रतीत नहीं हो पाया। ऐसा प्रायः साहित्य इन्होंने क्यों उच्चारण किया। मैं इनको जान नहीं पाया। ०१.०९.१९७३

आज हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के लिए यह वाक्य प्रकट कराने आए हैं। वास्तव में तो इनके समीप हमारा कोई शब्द महत्वदायक नहीं है। क्योंकि इनका जो विचार है वह इतना मानवता से गुन्था हुआ है, इतना राष्ट्रीयता से गुंथा हुआ है कि उसके ऊपर हमारा कोई शब्द उच्चारण करना हमें शौभनीय नहीं। परन्तु इसके पश्चात पूज्यपाद गुरुदेव ही यह कहा करते हैं सुन्दर वाक्यों की पुनरुक्ति होना भी कोई दोष नहीं है। तो विचार विनिमय यह कि जैसा पूज्यपाद गुरुदेव याग के सम्बन्ध में प्रकट करा रहे थे, कि यज्ञमान को याज्ञिक बनना है। मैं पुरातनकाल से अपनी वार्त्ताओं को प्रकट कराता हूँ। आज भी जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ सामगान हो रहा था। मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही थी। मैं उच्चारण कर रहा था, कि देव! तेरी महिमा है, वेदों का प्रसार मानव जीवन में होना चाहिए। प्रत्येक गृह में यज्ञ की सुगन्धि और वेद के मन्त्रों की ध्वनि होनी चाहिए। पुरातन काल का साहित्य मुझे स्मरण आता रहता है जब राजाओं के गृह में क्या, प्रजा के गृहों में से क्या, सब स्थानों से सुगन्धि आती थी, वेद मन्त्रों की ध्वनियाँ मानव के श्रोत्रों में आती थीं। २८.१०.१९७३

346. गुरुदेव को वार्ता प्रकट करना

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातन काल में कुछ वार्त्ताएँ प्रकट कीं। आज मैं इन वाक्यों में तो जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते हैं कि प्यारे महानन्द जी अशुद्ध वाक्य प्रकट करते हैं। परन्तु जब मैं यह कहा करता हूँ कि इनके मुखारविन्द पर एक शब्द अभ्यास युक्त हो गया है। मैं सदैव यह कहा करता हूँ, कि हे पूज्यपाद गुरुदेव! यह जो समाज है, यह जो आधुनिक काल का जगत है, यह बहुत ही विचित्र बनता चला जा रहा है। जब मैं विज्ञान के युग में जाता हूँ, छात्रावास में जाता हूँ, साहित्य पर दृष्टिपात करता हूँ, तो मुझे प्रायः ऐसा दृष्टिपात होता है कि यह जो आर्यों का साहित्य है, आर्यों की जो परम्परा है, आर्यों का जो वंशज है, यह कहा जा रहा है? जहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज, जहाँ राजा जनक जैसे राजा, जिनके यहाँ सदैव ब्रह्मयाग होता रहता था,

ब्राह्मणों की वार्त्ता प्रकट होती रहती थीं। शास्त्रार्थ होते रहते, विचार विनिमय होते रहते। परन्तु आज जब मैं राष्ट्रीय युग में जाता हूँ, तो वहाँ जहाँ ऋषियों के स्थल हैं वहाँ कोई ओर विराजमान हो। आज मैं यह दृष्टिपात करता हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इससे पूर्व शब्दों में साहित्यिक चर्चाओं को प्रकट कर रहे थे, महारानी द्रौपदी की चर्चाएँ कर रहे थे। परन्तु आधुनिक काल में द्रौपदी की ऐसी कल्पना की, इसके पाँच पति कहलाते हैं और वह पाँचों पतियों की एक ही अर्धांगिनी कहलाती थी। विचारा नहीं जाता, यह आज मानवों में कहाँ से आ गया? यह अज्ञान रूढ़ियों से उत्पन्न हुआ करता है। जब मानव रूढ़िवादी बन जाता है, यदि रूढ़िवाद में ब्राह्मण समाज भी उन्हीं रूढ़ियों में परिणत हो जाता है। और जन्म से ब्राह्मण बन जाता है। और जातीयता का प्रसार हो जाता है, जब जातीयता और रूढ़िवाद पूर्ण ऊर्ध्वगति के शिखर पर चले जाते हैं, उस समय इसमें धर्म और मानवता का ह्रास हो जाता है। आधुनिक काल में जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँकि पाँचों पाण्डव जहाँ द्रौपदी के संरक्षक थे, उनकी संरक्षता में वह विचरण करती थी। विचारना तो यही है, हमारे लिए जहाँ स्वयंवर को चर्चाएँ, पूज्यपाद गुरुदेव ने कल प्रकट की उसमें मुझे कोई वाक्य प्रकट नहीं करना है। २८.१०.१९७३

347. पात्रों से शुद्धि

उन पात्रों को आज हमें शुद्ध बनाना है और वे पात्र शुद्ध कैसे बनेंगे? पात्र उस काल में शुद्ध बनेंगे, जब बुद्धिमानों का एक समाज एकत्रित होगा। स्वार्थ से रहित बुद्धिमानों का समाज और उन पात्रों को यथार्थ बनाने का प्रयास करेंगे। २८.१०.१९७३

348. द्रव्य से साहित्य पात्रों को भ्रष्ट किया गया

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह निर्णय कराने जा रहा हूँ कि यह समाज ऐसा है और महाभारत के काल के पश्चात क्या-क्या हुआ। इन अठारह पुराणों में पुरातन कालों को अशुद्धियों में परिणत किया। निर्णय कराने की सूक्ष्मता रही। द्रव्य ले ले करके पात्रों को भ्रष्ट कर दिया गया। २८.१०.१९७३

349. महानन्द जी के वाक्यों से गुरुदेव की अनभिज्ञता

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य....आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपनी कुछ पिपासाएं और हृदय की वेदना प्रकट कीं। हमें तो यह प्रतीत नहीं हो पाया कि यह ऐसा वाक्य क्यों उच्चारण करते हैं? २८.१०.१९७३

350. गुरुदेव के आश्रम में देव कन्या की साधना

तुम्हें प्रतीत होगा कि पुरातनकाल में हमारे आश्रम में एक देव कन्या ने आठ वर्ष की अवस्था में तीन वर्ष के अभ्यास से मन और प्राण की सन्धि करके ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश किया था और सूर्य में मण्डल की यात्रा की थी। उसका खान पान और अशन यौगिक प्रकार का था जो योगी के लिए बहुत ही आवश्यक है। १५.०२.१९७४

351. गुरुदेव की पुरातन स्मृति

तुम्हें प्रतित होगा, आज जिस सहिता का अध्ययन कर रहा था, वह आज से लाखों वर्ष पर्व गुरूदेव के चरणों में ओत-प्रोत होकर कन्ठस्थ की थी। जब कृतिकायें अन्तःकरण में रमण कर जाती हैं तो ब्रह्मरन्ध्र में आभास होता है, अन्तःकरण में जो अंकुर विराजमान हैं, वे शाखा रूप में हो जाते है और प्रत्यक्ष होते ही नाना प्रकार का आभास होने लगता है। विज्ञान भी मानव के समीप आ जाता है, मैं आज अधिक विवेचना देने नहीं आया विचार केवल यह हे कि मानव का योगी का मन कहीं जाता नहीं अन्तःकरण में ही रहता है, ब्रह्माण्ड की कल्पना शरीर से करते है। इस पृथ्वी के गर्भ में भी तो मन काम कर रहा है और प्राण काम कर रहा है। १५.०२.१९७४

352. स्मृति

आज तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे मैं लाखों वर्षो के काल में विराजमान हूँ और ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे में किसी याग को करने जा रहा हूँ, उस अभ्याधान को करने जा रहा हूँ जहाँ समिधा अग्नि में परिणत होकर तीनों पापों को हनन करने वाली होती है। हमारे ऊपर उन आचार्यों का इतना ऋण है, जिन्होंने हमें औषधियों से योगी बनाया और अपनी आभा से प्रतिष्ठा में परिणत कर दिया। मुझे स्मरण आ गया कि एक समय स्वेत्तामवरी ऋषि महाराज अपने जीवन का अध्ययन कर रहे थे। १५.०२.१९७४

353. महानन्द जी को गायत्री पाठन

मुझे स्मरण है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पंहुचा, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बारह वर्ष तक गायत्रियों छन्दों का पठन-पाठन कराया ओर उन्होंने छन्दावलियों का, वेदों का अध्ययन कराया और उदर की पूर्ति के लिए जाल, वट वृक्ष का पञ्चाङ्ग अग्नि में तपा करके प्रदान करते थे, वह वनस्पतियां का पान करते थे, जितना वनस्पतियों पर किसी का उनका अधिकार हो, उससे मन पवित्र बनता है, क्योंकि मन का जो सम्बन्ध है वह आहार से रहता है, इतना मानव का आहार तमोगुणी होता है, उतना ही मानव सात्विक वातावरण से पृथक होता है, उतना ही मानव योग से पृथक होता है। ०८.०८.१९७४

आज मेरे प्यारे महानन्द जी की नाना प्रेरणाओं के साथ-साथ तुम्हें वाक्य प्रकट कराना चाहता हूँ कि यह जो मन है, जिसके ऊपर मैंने बहुत से विचार दिए और उसके ऊपर हम नाना प्रकार के विचार परम्परा से देते रहते हैं। मन की विचित्र रचना के ऊपर मानव को वास्तव में विचारना है कि हमारा जो यह सर्वत्र जगत है, यह मन की ही एक प्रतिभा है अथवा मन इसमें ओत-प्रोत है। १७-११-१९७४

354. महानन्द जी का सम्बोधन

पूज्यपाद गुरुदेव! भद्र ऋषि मण्डल! भद्र समाज! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कुछ आयुर्वेद की विवेचना प्रकट कर रहे थे। कुछ आर्ष पद्धति के सम्बन्धों में यागों के ऊपर अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे थे। १७-११-१९७४

355. अश्वपति काल में गुरुदेव

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ नाना वैज्ञानिक विराजमान रहते थे, मन्त्री, उपमन्त्री इत्यादि सर्वत्र स्वर्ग की इच्छा के लिए कामना करते। जब आश्रम में प्रवेश करते तो मुझे वह काल आज भली-भांति स्मरण आता चला जा रहा है। उनकी कितनी ऊँची उड़ान रहती, इस सम्बन्ध में? कि परमात्मा को उस परमानन्द को प्राप्त करना चाहते हैं। जिससे हमारा अन्तःकरण विचित्र बनता चला जाए। मेरे प्यारे ऋषि मुनियों ने एक ही वाक्य कहा है। हे मानव! तू आध्यात्मिक उड़ान को उड़ना प्रारम्भ कर। तू आत्मा के क्षेत्र में चल। आत्मा जिसे आज्ञा दे, उसी कार्य को तुझे करना है। और उसी को करते हुए तुझे आत्मा की शान्ति को प्राप्त करना है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कल इससे पूर्व शब्दों में यह वर्णन करते हुए कहा था। आधुनिक काल में गृह का पालन अच्छी प्रकार नहीं होता। ११.१२.१९७४

356. वायुमण्डल की तरंगों का स्पर्श

मैंने बहुत पूर्व काल में वुसन्धरा के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रगट की। परन्तु आज का वातावरण, आज का वायुमण्डल, आज की जो वायु की तरंगे है, वह हमारे अन्तःकरण को छूती चली जा रही हैं, और हमारा अन्तःकरण यह पुकार रहा है कि माता वसुन्धरा के सम्बन्ध में कुछ विवेचना प्रगट की जाएं। माता उसको कहते हैं, जो माता अपने गर्भस्थल से उस बालक को जन्म देती है, उस माता का नाम वसुन्धरा कहलाया गया है। जब मेरी प्यारी माता गर्भस्थल से राम जैसे महापुरूषों का जन्म होता है, भगवान राम का जन्म होता है। २३.०३.१९७५

357. त्रेताकाल में माता कौशल्या का अध्ययन

मैं आज एक महान बेला में जा रहा हूँ जहाँ संकल्प के ऊपर सर्वत्र जगत निहित रहता है। मुझे वह त्रेता का काल आज भी भली भांति स्मरण आ रहा है, ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है, जैसा आज हम त्रेता के काल में विराजमान हो करके उस यज्ञवेदी पर उस महान वेदी पर, भव्य याग का, आज हम याग को पुनः से रचनात्मक अपना कार्य कर रहें है। वह समय जब हमें स्मरण आने लगता है, तो वह नौ लाख वर्षो से भी अधिक समय का काल, स्मरण आने लगता है, माता कौशल्या का जीवन आज मुझे पुनः से स्मरण आ रहा है, जब माता कौशल्या मुनिवरों! बाल्यकाल में आचार्य कुल में शिक्षा अध्ययन करती थी मुनिवरों! देखो, वह राजकन्या जब महर्षि तत्त्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययनशील बनने के लिए ऋषि कुल में पंहुची, तो मुझे वह समय स्मरण आ रहा है, महर्षि तत्त्व मुनि महाराज की अवस्था उस समय दौ सौ चौरासी वर्ष की थी, वह वृद्ध ब्रह्मचारी वेद में और विज्ञान में रमण करने वाला वह कन्या को शिक्षा प्रदान करते थे, जब वह प्रदान करते थे, तो एक समय वह कन्या विद्या अध्ययन जब कर रही थी, अपने छात्रावास में विराजमान थी, रात्रि समय मध्यम रात्रि थी विचार-विनिमय उत्पन्न होने लगा क्योंकि प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में नाना प्रकार की तरंगो का जन्म होता रहता है। २३.०३.१९७५

358. ऋषि को माता कौशल्या की दक्षिणा

तो ऐसा मुझे स्मरण है, कि वह यज्ञ लगभग छह माह तक प्रारम्भ रहा, छह माह के पश्चात उस याग की पूर्णाहुति हुई, पूर्णाहुति के समय अब दक्षिणा का जब समय आया, तो कौशल्या जी उपस्थित हो करके बोली, हे प्रभु! मैं भी कुछ दक्षिणा देना चाहती हूँ। उन्होंने कहा-पुत्री! तुम दक्षिणा प्रदान करो। उन्होंने कहा कि भगवन! जो आप चाहेंगे, मैं वह अवश्य प्रदान करूंगी। तो उन्होंने कहा ऋषि यज्ञ के ब्रह्मा ने अमृतं आत्मा ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आ रहा है, यह जो राष्ट्रीय विचारों में नाना अभद्रता आ रही है, आज तुम्हारे गर्भ से ऐसी सन्तान का जन्म हो, जिससे तुम्हारा राष्ट्र उन्नत बनता चला जाए। विवेकशील बनता चला जाए, ऐसा विचार जब उन्होंने प्रगट किया, तो कौशल्या ने वही दक्षिणा प्रदान की, और प्रदान करने के पश्चात अपने कक्ष में जा पंहुची। २३.०३.१९७५

359. गुरुदेव के गुरुदेव की शिक्षा

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता था। पूज्य गुरुदेव से जब साधना के सम्बन्ध में विचार विनिमय प्रारम्भ हुआ, तो गुरुदेव ने कहा-हे वत्स! आज तुम साधना में जाना चाहते हो, तो सबसे प्रथम अहिंसा परमो धर्मःको अपनाओ। मन, कर्म, वचन तीनों इस प्रकार के विचित्र होने चाहिए। जिससे किसी प्रकार का पाप नहीं होना चाहिए। क्योंकि मन में विचार आता है, वचन से भी कई वाक्य मिथ्या उच्चारण न करे और जब कर्म से भी पाप न करने के लिए तत्पर हो, तो मन, वचन, कर्म ये तीनों पवित्र होने चाहिए। तीनों पवित्र किस काल में होते हैं? मन कैसे पवित्र होता है? १७.०५.१९७५

360. आठ वृक्षों का पञ्चाङ्ग

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत हुए और जब हमने यह कहा कि प्रभु! हम साधना करना चाहते हैं, तो पूज्यपाद गुरुदेव ने लगभग एक वर्ष तक तो गायत्री छंदों का पठन-पाठन कराया, सुन्दर आसन है, सुन्दर स्थान है, सुगन्धि से युक्त जब वह साधना में परिणत होते हैं, मन को एकाग्र करने का प्रयास करते जब वे आहार देते थे, तो वृक्षों का पञ्चाङ्ग देते, जैसे वट वृक्ष है, पीपल वृक्ष है, जाल वृक्ष है, स्वातिवृक्ष है, सौम भानु वृक्ष है, इन वृक्षों का पञ्चाङ्ग देते, आठ वृक्ष हैं। आठों वृक्षों का पञ्चाङ्ग आठों दिवस में प्रदान करते। उस पञ्चाङ्ग से शरीर में मल की विद्यमानता नहीं रहती थी। प्राणायाम स्वयं होता था। पिपासा नहीं होती थी। संसार की नाना प्रकार की कामना जागृत नहीं होती थी। जब संसार की कामना नहीं रहती, तो जब वह मानव साधना करता है, गायत्री छन्दों के द्वार पर जाता है, अमृत का पान करता हुआ, उस गायत्री के गर्भ में जाता है, जहाँ गायत्राणी ब्रह्म वेत्ता, जब वह ब्रह्मवेत्ता बनने की इच्छा प्रकट करता है, ब्रह्म का आत्मा का साक्षात्कार होता है।

361. अश्वपति के यहाँ अध्यापन

मुझे वह काल स्मरण आता। मुझे भी कुछ समय तक साधना कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझे महाराजा अश्वपति के यहाँ एक सौ एक वर्ष तक अध्यापन का कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम यह कहा करते हैं कि वास्तव में अध्यापन का कार्य एक साधना का कार्य है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारी बनाना,

ब्रह्मचारिणी को ब्रह्मचारिणी बनाना यह महान कर्त्तव्य है, यह महत्ता का सन्देश हमारे समीप रहा है। आज हम ऋषियों के समूह में विराजमान हो करके साधना में परिणत हो जाएं। जिस आसन पर साधक रहता है वह आसन भी पवित्र होता है। १७.०३.१९७५

362. वाणी में अमोघता

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जो वाणी का अभ्यास कर रहे थे, एक भी वाक्य मिथ्या उच्चारण न हो, एक भी वाक्य हृदय के उद्गार के विपरीत न हो, उन्होंने ८५ वर्षों तक सत्य ही उच्चारण किया। मन से, कर्म से भी कोई भी वाक्य मिथ्या उच्चारण नहीं किया। उनकी वाणी में अमोधपन आ जाता था। अमोधपन आता हुआ मन, वचन, कर्म उसके साथ रहता है। इसीलिए मानव के उस भविष्य को भी वह योगी जान लेता है। यह बहुत गम्भीर विषय है, इसमें जाना नहीं चाहता। १७.०५.१९७५

363. मृत्यु

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर विराजमान थे, नाना ब्रह्मचारी उनके समीप थे। वेदों का पठन-पाठन और अध्ययन प्रारम्भ हो रहा था। तो हमने पुनः प्रश्न किया कि भगवन्! संसार में मृत्यु और जीवन क्या है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह निर्णय कराया था, हे पुत्रो! यह जो मृत्यु है यह मानव के अपने ही तुच्छ कर्म अन्धकार बन करके मानव के समीप आ जाते हैं। अपने ही कर्म, अपनी आभा चेतना के द्वारा मानव महापुरुष कहलाते हैं। परमात्मा के समीप परमात्मा के चरणों में ओत-प्रोत हो जाना, वह जीवन है, और प्रकृति के अपवाद में रमण करना, उसको अपना ही जानकर उसका योग करना उसकी मृत्यु मानी जाती है। जब अपनी करके भोगोगे, तो उसमें नाना प्रकार की त्रुटियां उत्पन्न हो जाएगी। जितने भी अवगुण, जितने भी तुच्छ कर्म करता है, वह अपने में ही स्वीकार करके करता है। यदि उसकी समाज की सम्पदा से परमात्मा की सम्पदा स्वीकार करोगे, तो तुम्हारे जीवन में अन्धकार नहीं रहेगा। तुम्हारे जीवन में प्रकाश आ जाएगा और वह प्रकाश ही तुम्हारा जीवन है मृत्यु नहीं है। इसलिए हे ऋषियों! मृत्यु को समीप आने ही न दो, मृत्यु तुम्हारे लिए कोई वस्तु नहीं है। मृत्यु तो उनके लिए है जो इस संसार की नाना सम्पदा को अपना करके भोगते हैं। २०.०५.१९७५

364. महानन्द जी का सम्बोधन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी कुछ तप की मीमांसा करते चले जा रहे थे। इनका वाक्य परम्परा से ही दार्शनिकता से गुंथा हुआ होता है। २४.०५.१९७५

365. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी आज मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे हैं, उन प्रेरणाओं के आधार पर मैं कुछ अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूँ। जहाँ परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता है, जहाँ परम पिता परमात्मा की अपने मध्य में सन्धि करने का प्रयास किया जाता है, वह विषय तो भिन्न बन जाता है। उस विषय पर किसी काल में गम्भीरता से विवेचना करने लगूंगा, तो उसके लिए समय की आवश्यकता है। आज तो केवल इतना उच्चारण करना है कि मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे यह प्रेरित कर रहे हैं कि गृह के सम्बन्ध में कुछ अपनी विवेचना प्रकट कीजिए।

366. गृह प्रतिष्ठा

प्यारे महानन्द जी का यह कथन है कि गृह में जब मानव प्रवेश करता है, वास करता है तो निर्माणवेत्ता प्रथम गृह का निर्माण कर लेता है। यहाँ दो प्रकार के सिद्धांत माने जाते हैं। एक सिद्धांत तो यह स्वीकार करता है कि गृह का निर्माण होने से पूर्व ही चेतना का प्रवेश हो जाता है। कुछ सिद्धान्त यह माना जाता है कि गृह पूर्ण होने पर गृह का प्रवेश हो। यहाँ मूल में यह माना जाता है कि जिस समय गृह का निर्माण होने लगता है, तो चेतना का वास उस काल में हो जाता है। परन्तु यहाँ आयुर्वेद सिद्धान्त कुछ कह रहा है। २२.०९.१९७५

367. महानन्द जी की प्रेरणा

क्रिया किसे कहते हैं? विचारों को, नाना प्रकार की आभा कृतियों को हम क्रिया कहते हैं। क्रिया का यहाँ प्रवेश होता है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि आज क्रिया के प्रवेश के समय आप अपना कुछ मन्तव्य प्रकट कीजिए। मैं नहीं जानता कि कैसी क्रिया का प्रवेश है? इसको मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरित कर रहे हैं। मैं उसके आधार पर कुछ वाक्य प्रकट कर रहा हूँ। पुरातन काल में मुझे गृह निर्माण कराने का, क्रिया प्रवेशों का बहुत-सा सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। राष्ट्रीय ध्वज में बहुत-सा समय प्राप्त होता रहा है। राजाओं को चुनौती देने का बहुत-सा समय मुझे प्राप्त रहा है, वहाँ उनका राज्याभिषेक करना, उन्हें शिक्षा देना, उन्हें राष्ट्रीय विचारों पर लाना। यह उसकी क्रिया का नाना प्रकार से अनुमोदन करना और इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों का जहाँ मिलान होता है, वहाँ एक ध्वज होता है। हमारे यहाँ अनिमा होती है, अनिमा नामक घृत होता हैहै। २२.०९.१९७५

368. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे बारम्बार यह प्रेरणा देते रहते हैं उनकी प्रेरणा के साथ मैं अपने वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ। आत्मा का प्रवेश उस काल में होता है। संसार में होता है, आत्मा जब शरीरों को धारण करता है। जबकि परमात्मा इस भव्य भवन का निर्माण कर देते हैं। यह जो संसार है यह भव्य भवन है और यह कैसा भव्य भवन है। २२.०९.१९७५

369. भृगु आश्रम में गुरुदेव

मैंने बहुत पुरातन काल में वर्णन करते हुए कहा था कि एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आसन पर विराजमान था। परन्तु गुरुदेव एक समय महर्षि भृगु आश्रम में विराजमान थे। महर्षि भृगु आश्रम में वह वहाँ साम गान गा रहे थे। परन्तु वह तन्मय हो करके साम गान गाते थे। निष्पक्ष हो करके जब साम गान गाते थे तो

मृगराज, सिंहराज उनके उन शब्दों को ध्वनि को श्रवण करते थे। तो यह क्या है, मानव में ऐसी कौन-सी सत्ता है, कौन-सी ऐसी महान सत्ता है, जिसको जो मानव का भक्षण कर जाए। वे भी अहिंसा परमो धर्म को धारण करने वाले हैं। वह कौन-सी सत्ता है तो मैं अपने प्यारे महानन्द जी के उस अमूल्य विषय पर आना चाहता हूँ। क्योंकि इनके कुछ विचार हैं, इनके उन वाक्यों पर टिप्पणियाँ करना चाहता हूँ। टिप्पणी करने का हमें कोई अधिकार तो रह नहीं गया है। परन्तु कोई बात नहीं। क्योंकि उस क्षेत्र में न जाना है, न प्रतिभा है, परन्तु उस क्षेत्र के सम्बन्ध में जब क्रियात्मक कर्म किए, तब वह काल भव्य था। महान काल था, जब महर्षि भृगु मुनि महाराज, जब साम गान गा रहे थे, वह जब प्रभु का गान गा रहे थे, ऋत और साम दोनों के मिलान से ही साम गान होता है। जब वह गान गाते थे तो मृगराज, सिंह राज उनके चरणों में ओत-प्रोत होते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण है, जब हम उनसे प्रश्न किया करते थे, उनके समीप विराजमान हो करके नाना प्रकार की वार्त्ताए, उन वार्त्ताओं को ले करके चरणों में विराजमान हो करके नाना प्रकार की वार्त्ताएं, मैंने बहुत पुरातन काल में महर्षि भृगु जी ने यह निर्णय दिया कि हे ऋषियो! आज तुम यह जानना चाहते हो, कि हिंसक प्राणी तुम्हारे चरणों को छूता है। हमने कई काल में यह कहा कि हाँ प्रभु! इसको जानना चाहते हैं, तो महर्षि भृगु मुनि ने यह अपना मन्तव्य दिया, निर्णय दिया कि मानव की वाणी में इतनी अमोधता होनी चाहिए, मानव की जो वाणी का क्षेत्र है, यह अग्नि का स्वरूप कहलाया गया है। ०२.०३.१९७६

370. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी नाना प्रेरणाओं के साथ इनके हृदय की यह आकांक्षा है इनके हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि हम अपने से दूसरे मन के अन्दर हम कैसे प्रभावित कर सकते हैं? कैसे मन को अपने में धारण कर सकते हैं? ०२.०३.१९७६

371. साधना

मुझे वह काल स्मरण आने लगता है, जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते और जब गुरुदेव साधना कराते थे। साधना का सम्बन्ध क्रियाओं से होता है। साधना का सम्बन्ध अभ्यास से होता है, अभ्यास करता है मानव साधना का सम्बन्ध दो वस्तुओं से मानव का नाम साधना कहलाती है, द्वितीय स्वरूप हमारे यहाँ साध्यानी कहलाता है। जब वे दोनों एक सूत्र में परिवर्तित हो जाते हैं। तो वह एक सूत्र बन करके प्राणतव बन करके आगे वेद का ऋषि तो यहाँ तक कहता है कि यह प्राण और मन ये दो ही क्रिया ऐसी हैं जो संसार को, ब्रह्माण्ड को गति दे रही हैं। ब्रह्माण्ड को एक महान सत्ता प्रदान हो रही है। ०२.०३.१९७६

372. प्रत्यक्ष

मुझे ऐसा स्मरण आता रहता है। वह कैसे स्मरण है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा विराजमान रहता था, तो पूज्यपाद गुरुदेव यह प्रत्यक्ष कराते थे कि यह आकाश गंगा है इसे तुम अपने लघु मस्तिष्क में ही दृष्टिपात करो। ०२.०३.१९७६

373. गुरुदेव का अध्ययन काल

वेद का ऋषि तो प्राण के सम्बन्ध में यहाँ तक उड़ान उड़ गया, कि परमात्मा की प्राणत्व में माना गया है। महर्षि भृगु मुनि महाराज नाना मृगराज और सिंह राज खिलवाड़ करते रहते थे। आनन्द लेते रहते थे। तपोगुणी विचार भी लेते रहते थे। आज मैं तुम्हें कौन से क्षेत्र की चर्चा प्रगट करने लगा? मैं उस अनुभव कि जब हम पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा विराजमान हो करके नाना अनुसन्धान किया करते थे, यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करते थे। मैं उस क्षेत्र में चला गया हूँ। ०२.०३.१९७६

374. गुरुदेव के आश्रम में गुरुदेव

मुझे स्मरण है, जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में जाते थे, तो पूज्यपाद गुरुदेव ने जब साधना के क्षेत्र में पहुंचे, तो बारह वर्ष तक तो केवल पांच वृक्षों के पत्रों को ले करके उनकी चमड़ी को ले करके उनके नाना प्रकार के फलों को ले करके, उनके रस को पान कराया। अब वह बारह-बारह वर्ष तक रसों का पान करते रहे, रसों से क्या हुआ, उसमें विद्युत का ज्ञान हुआ, अग्नि का ज्ञान हुआ, वृक्षों की योनियों का ज्ञान हुआ, क्या कितनी योनियाँ हैं और उनके क्या-क्या गुण हैं। इस प्रकार से साधना जब ऋषि-मुनि करते हैं तो उस साधना से जैसे वैज्ञानिक अपने परीक्षण शाला में, अपनी विज्ञानशाला में एक वैज्ञानिक अनुसन्धान करता रहता है, अणु परमाणु का वहाँ मिलान करना है। इस परमाणु को यहाँ लाना है जब एक दूसरे परमाणु एक मिलान करता हुआ वर्षों व्यतीत हो जाते हैं। समय के समय व्यतीत हो जाते। ०२.०३.१९७६

375. महानन्द जी की प्रेरणा

आज मुझे प्रतीत नहीं कि महानन्द जी कि ऐसी प्रेरणाएं क्यों होती रहती है। ०२.०३.१९७६

376. महानन्द जी द्वारा याग

मेरे प्यारे महानन्द जी भी याग करते रहे हैं। तो ये कहा करते थे जब वेदमन्त्र का अध्ययन करते। आज इनका प्रश्न इनके समीप, परन्तु इनका अनुभव भी इस सम्बन्ध में रहा है, जब ये याग करते तो एक-एक वेदमन्त्र को विचारते और विचारता हुआ, यह विचारते रहते थे, कि हमारा संसार में कोई शत्रु नहीं रहना चाहिए। परन्तु जब वेद में यह विचारते कि हमारा जो मानव याग करता है, उस मानव का कोई भी संसार में शत्रु नहीं होता। यह मैं एक बहुत आश्चर्य को शब्द उच्चारण कर रहा हूँ।

377. गुरुदेव से गुरुदेव के प्रश्न

हम बाल्यकाल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रश्न किया करते, क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव जब साम गान गाते थे, यजूंषि गान गाते थे। जटा-पाठ और घन-पाठ में जो स्वरों सहित जब गान गाते थे, तो उनके शब्दों को श्रवण करने के लिए पक्षीगण, हिंसक प्राणी आ करके उनके चरणों को छुआ करते थे। तो उस समय

हम ये विचारते रहते थे, पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रश्न करते रहते थे, कि हे प्रभु! क्या वेद का वाक् यह हमें सिद्ध होता दृष्टिपात होता है, कि मानव का कोई शत्रु ही नहीं। परन्तु शत्रु किनका है? जो याग नहीं करते, शत्रु किनका है संसार में, यदि कोई प्राणी का कोई शत्रु है, जो याग नहीं करते और जो याग करते हैं, उसको आडम्बर बना देते हैं अथवा उसको विडम्बना में ले जाते हैं, जो याग करके अपने जीवन को यागमय नहीं बनाते, उनको संसार में कष्ट और शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु यह वाक् मैं और भी विचित्र उच्चारण कर रहा हूँ, अग्न्याधान करने से ही याग में आहुति देने से ही संसार में मानव याज्ञिक नहीं हो जाता। ०३.०३.१९७६

378. महानन्द जी की इच्छा

मेरे प्यारे महानन्द जी की यह इनकी इच्छा यह बलवती बन रही है, कि मैं भी अपने दो शब्दों का प्रतिपादन करूं। परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी इनका विषय कल हम इनको समय प्रदान कर सकेंगे, आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। ०४.०३.१९७६

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब मुझे इसका स्मरण कराते थे, जब माता अपनी लोरियों का पान कराती थी, तो माता सोमलताओं के रस को पान करती थी। ०५.०३.१९७६

379. गुरुदेव के गुरुदेव

मुझे वह काल स्मरण है कि एक समय मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पंहुचा, तो वहां सोमभानु ऋषि विराजमान थे, ओर गुरुदेव के द्वारा प्रश्न कर रहे थे, कि महाराज! मैं यह जानता चाहता हूँ कि मेरा जो प्रत्येक शब्द अन्तरिक्ष में जा रहा है ओर प्रत्येक शब्द में चित्र जा रहा है, मैं उन चित्रों का दिग्दर्शन करना चाहता हूँ, उन चित्रों को कौन ज्ञानी दृष्टिपात करता है? जो व्यान और समान प्राण की सन्धि बनाना जानता है, उससे सन्धि मिलाई और प्रत्येक शब्द के उसी रूप के और उसी आकार का जितना चित्रण अन्तरिक्ष में हो रहा है, उनका वह दृष्टिपात कर रहा है। उनको दृष्टिपात करके सूक्ष्म शरीर वाली जो आत्माएं हैं उनका भी चित्रण हो रहा है जब ऊर्ध्वा गति में जाता है तो कहता है कि हे भगवन! मैं जानता चाहता हूँ, कि यह चित्र हैं, इन चित्रों में से जो चित्र निकलते हैं, उनमें जो व्यापार करते हैं, उन चित्रों का समावेश कहां होता हैं, मैं उन समावेशों को जानना चाहता हूँ। उस समय वह ऋषि कहता है कि तुम चित के मण्डल में पंहुचों और उड़ान करते जाओ, जब व्यान को चित के मण्डल में ले जाओगे, तो चित में जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते हैं, उन संस्कारों के साथ में जो अंकुर होते हैं, उन अंकुरों के चित्र बनते हैं, चित्रों का निर्माण होता है, चित के क्षेत्र में उदान प्राण को ले करके मेधावी की सहकारिता करके, अन्तरिक्ष में जाता है तो वायु तत्त्व को ले करके आ जाता है। ०५.०३.१९७६

380. महानन्द जी के प्रश्न

मेरे प्यारे महानन्द जी से उच्चारण कर रहा था, कि तुम अपने विचारों को प्रकट करो, परन्तु मेरे पुत्र ने नाना प्रश्नों की झड़ियां लगा दी, नाना प्रश्न दिए। आज मैं इन प्रश्नों के उत्तरों में चला गया। आज का हमारा विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम वेद के मूल्यों को जानने वाले बनें। ०५.०३.१९७६

381. गुरुदेव के निर्णय

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप पंहुचता हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे निर्णय कराया, क्या जो अपनी अन्तरात्मा की अनूकुल कार्य नहीं होता, जो उसके विरूद्ध होता है, वही इस संसार में मानव के लिए पापकृत कहलाया गया। पूज्य महानन्द जी ०६.०३.१९७६

382. अन्तःकरण की पवित्रता

मुझे वह काल स्मरण है, एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, सुधन्वा नामक वैज्ञानिक से एक याग कराया था और जब वह याग हुआ था। सुधन्वा नामक वैज्ञानिक से, यह कहा अन्तःकरण में प्रवेश करके, पूज्यपाद ने कि हे यज्ञमान! तेरे अन्तःकरण में तो पवित्रता है, परन्तु तेरा आहार ब्रहे, उस समय उन्होंने कहा कि-भगवन! हे ब्रह्मणे मैं यह निश्चय कर चुका हूँ, अपने वैज्ञानिक यन्त्रों से, मैं विज्ञान से यह सिद्ध कर सकता हूँ, क्या मेरा आहार और आहार में व्यवहार में पवित्रता है। परन्तु विज्ञान से मेरी प्रतिज्ञा है, कि अशुद्धता से क्या-क्या अनिष्ट होते हैं। परन्तु जब याग हुआ, तो याग से और ऊर्ध्वा गति को प्राप्त हो गएं, यौगिक अर्था में चले गएं, इसी प्रकार जब मैं यह वाक्यों को ले करके चलता हूँ, और भी नाना वैज्ञानिकों की चर्चा ले करके चलता हूँ।

383. त्रीतकेतु राजा के यहाँ गुरुदेव द्वारा वृष्टि याग

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय महाराजा त्रीतकेतु राजा से जब वृष्टि याग का आयोजन किया गया, वृष्टि याग हुआ तो याग के पश्चात, वृष्टि प्रारम्भ होने लगी, महानता आ गई, पवित्रता आ गई, परन्तु अन्न का शोधन किया शोधन करने के पश्चात वह याग होते हैं। उन यागों में पवित्रता आती है। यागों मे अश्रद्धा नहीं होती, राष्ट्र के राष्ट्र ऊँचे और समाज के समाज ऊँचे बनते हैं। अहा, यह परमात्मा का याग हो रहा है, तुम भी याज्ञिक बनो, प्रत्येक मानव को याग करना चाहिए, जब प्रत्येक प्राणी यहाँ याग करता था, न संग्राम होते थे, न रक्त भरी क्रांतियाँ आती हैं। रक्त भरी क्रांति उस काल में आती है, जब कर्तव्यों को नष्ट कर देता है प्राणी, पूज्यपाद गुरुदेव के यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ, मैं प्रार्थना करने के लिए आया हूँ, कि आज यज्ञमान को ऊँचा बनना है। वैज्ञानिकों को ऊँचा बनना है, आज का वैज्ञानिक यह कहता है, कि पूर्व विज्ञान नहीं था, मैंने पुरातन काल में यह कहा है। ०६.०३.१९७६

384. गुरुदेव का प्राणायाम वर्णन

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन कराया कि तुम प्राणायाम करो। आसन तुम्हारा सुन्दर है। आसन पर विराजमान हो करके प्राणायाम करने की क्रियाएं उन्होंने प्रकट कीं। उन क्रियाओं में जब अनुरत्त हो गए, तो कुम्भक जो प्राणायाम करते थे, ऐसा प्रतीत होता था, जैसा अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हों। अन्तरिक्ष में हमारी सारे शरीर की गति उत्थान कर रही है। इसी प्रकार प्राणायाम करने से मानव के जीवन में एक महत्ता आती है और मानव के चित्त में जो संस्कार होते हैं, वे संस्कार ऐसे जैसे अन्न को हम अग्नि में तपा देते हैं उनमें उपज आदि नहीं रहती। इसी प्रकार जो रेचक, कुम्भक प्राणायाम करता है, नाग, कूर्म और कृकल को

मिलान करके प्राणों से मिलान करता है। यह जो विचित्र अग्नि है प्राणा प्रभे अणु जो अग्नि है उसमें मानव के संस्कार निर्वीय हो जाते हैं, वह मानव का आवागमन वायु में से होने लगता है। ०२.०५.१९७६

385. अश्वपति का काल

जब मुझे महाराजा अश्वपति का काल स्मरण आता है, तो हृदय गद्-गद् हो जाता है। ऋषि मुनि तपस्या कर रहे हैं, पुरुषों को विवेकी बनाया जा रहा है। क्योंकि उनकी इच्छाएं सब राष्ट्र से पूर्ण होती हैं। पवित्रता उनके हृदयों में होती है। राष्ट्र पवित्र बना करता है। राष्ट्र का आभूषण क्या है? उसकी पद्धति ही उसका आभूषण है। उस पद्धति में चरित्र ही आभूषण है, वही उसकी मानवता मानी जाती है। वह मानवता कर्त्तव्यवाद कहलाया जाता है। ०६.०५.१९७६

386. स्मृति

मुझे बहुत काल की वार्त्ता स्मरण आती रहती है जब ऋषि मुनि मानव धर्म के ऊपर विचार विनिमय करते। मानव किसे कहते हैं जो मानव अपने मन के ऊपर विचार करने लगता है। यह मन क्या है? जो द्वितीय भाव को उत्पन्न करने वाला है।

387. प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे यह प्रेरणा दे रहे हैं कि आज सर्वधर्म सम्मेलन पर अपनी विचारधारा दीजिए। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि सर्वधर्म क्या वस्तु है? सबका धर्म एक ही धर्म होता है और वह धर्म क्या है? वह मानवता है। ०९.०५.१९७६

388. जड़भरत की स्मृति

मुझे एक वाक्य स्मरण आ गया। जड़ भरत की चर्चाएं स्मरण आ गईं। वह पूर्व जन्म के साकल्य मुनि थे। साकल्य मुनि महाराज अपनी स्थली पर मोक्ष के निकट जा रहे थे। ०९.०५.१९७६

मुझे बहुत पुरातन काल में मेरे प्यारे! महानन्द ने मुझे चर्चा प्रकट करते हुए कहा था। आज मैं कहाँ तक एक एक माह तक धर्म के ऊपर चर्चा करूंगा तो यह निबटारा नहीं होगा। ०९.०५.१९७६

389. ऋषि के अनुसन्धान विचार

मुझे वह काल स्मरण आ गया। एक ऋषि का अनुसन्धान किया हुआ, विचार मुझे स्मरण आ गया है। एक समय महर्षि भुन्जु हुए हैं, जिनके पिता त्रेत केतु ऋषि हुए हैं, त्रेकेतु ऋषि ब्रह्मवेत्ता भी थे। २०.०५.१९७६

390. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी की भी इतनी प्रेरणा रहती है। इतनी प्रेरणा बाध्य करती रहती है, कि हम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार विनिमय करें। २४.०५.१९७६

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इन वाक्यों को निर्णय कराने जा रहा हूँ, कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में विज्ञान को जानना चाहिए। आज का मानव विज्ञान में गति कर रहा है, आज का मानव नाना प्रकार के अणु महा परमाणुओं को एकत्रित करने में लगा हुआ है। २४.०५.१९७६

391. सौमनोत राजा के यहाँ गुरु जी के साथ महानन्द जी

एक समय जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आया, तो एक समय उन्होंने आश्रम से प्रस्थान किया, भिक्षा के लिए। क्योंकि याग के लिए कुछ कर्म काण्ड युक्त करना था। तो वह सौमनोत नामक राजा के यहाँ पहुंचे, सौमनतुक नाम का राजा यह मनु वंश में था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। राजा और वे दोनों अपने गृह में स्वयं अपना कला-कौशल भी करते थे। उनके कृषि का उद्योग था। वे कृषि में अन्न उत्पन्न करते थे। गऊ उनके द्वारा थी, गौ घृत के द्वारा और अपनी कृषि करके उस अन्न को पान करते थे। और राष्ट्र को पालन करते थे। प्रजा को कर्त्तव्य में लाने का प्रयास करते थे। उस समय मैं साधना करता था। पूज्यपाद गुरुदेव मुझे राजा के यहाँ ले गए। राजा ने स्वागत किया, चरणों को छू कर आसन को त्याग दिया, राज स्थली को त्याग दिया और उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके बोले कि गुरुवर! कैसे गमन हुआ? कैसे कष्ट किया? मुझे वहीं से आज्ञा दे देते। मैं आपके द्वारा आता और राष्ट्रीय वाहन में लाने का प्रयास करता। गुरुदेव ने कहा कि कोई बात नहीं, राजन !हम तुम्हारे आसन पर आए हैं, तुम्हारे आसन को दृष्टिपात करने की उत्कृष्ट इच्छा थी। राजा ने कहा कि आप क्या पान करोगे? तो गुरुदेव कहते हैं कि हम तुम्हारे राष्ट्र का भोजन प्राप्त नहीं करेंगे। राजा कहता है कि प्रभु क्यों? मेरे राष्ट्र का जो अन्न है, वह पाप का अन्न नहीं है। मेरे राष्ट्र का जो अन्न है वह स्वयं मेरी पत्नी और मैं (हम दोनों) कला कौशल करते हैं। कृषि में उद्गम करते हैं और उस अन्न से हम अपने उदर की पूर्ति करते हैं। तो पूज्यपाद का हृदय गद्-गद् हो गया। उन्होंने नाना पदार्थों का पान कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो वह काल स्मरण है, परन्तु कुछ अन्न पान किया। राजा हो तो ऐसे हों। मैं प्रभु से यही कहता हूँ, कि ऐसे विवेकी राजा होने चाहिए। स्वार्थी राजा नहीं होने चाहिए, कि राष्ट्र नष्ट हो जाएं या न रहे, परन्तु हम राज स्थली को न त्यागें। पूज्य महानन्द जी २४.०५.१९७६

392. अश्वपति के राष्ट्र में चर्चाएँ

मैं उस काल की चर्चा कर रहा हूँ, जब महाराज अश्वपति आश्रम में महात्मा भुन्जु आदि और भी ऋषियों का आगमन हुआ। आगमन होने के पश्चात अश्वपति को राष्ट्र की धाराओं को निर्धारित करना था। तो महात्मा भुन्जु और महात्मा तपेश्वर ऋषि महाराज ने एक वाक्य कहा था कि महाराज! हम यह चाहते हैं कि राष्ट्र का निर्माण पवित्र होना चाहिए। भगवान मनु ने जो कहा है, भगवान मनु के वाक्यों को अपने जीवन में लेकर के ऊँचा बनाइए। महाराजा अश्वपति ने कहा कि जो महापुरुषों का आदेश होगा, उसका मैं पालन करूंगाऔर प्रजा भी उसी का पालन करेगी। तो राजा ने चतुर्थ प्रकार के नियमों की धारा को निर्धारित किया। उन्होंने सबसे प्रथम यह कहा कि समाज में चरित्र होना चाहिए। वाणी का चरित्र सबसे महान है, वाणी सर्वत्र पवित्र होनी चाहिए। क्योंकि वाणी से मानव एक दूसरे का

ऋणी बन जाता है। इसलिए एक दूसरे का ऋणी मानव को नहीं बनना है। मेरे पुत्र और पुत्रियों को गृह आश्रम में रहने वाले जो प्राणी मात्र हैं, वह एक दूसरे के सहायक बनते चले जाएं। कैसे सहायक बनें? जैसे ऋत में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक दूसरे में गुंथा हुआ सा दृष्टिपात हो रहा है, नाना प्रकार के लोक लोकान्तर हैं वह ऋत और सत में गुंथे हुए हैं। अपने-अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहे हैं। वे गतिशील हो रहे हैं और गतिशील होते हुए, वह एक दूसरे में सहायक बने हुए हैं। ०५.०६.१९७६

393. गुरुदेव के यहाँ अध्ययन

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करने पहुंचे थे, तो चार प्रकार की आभा प्रकट कराते थे। सबसे प्रथम वह यह कहा करते थे, कि सबसे प्रथम मानव को जब वेदमन्त्र उच्चारण करना चाहिए, तो मानव को लगभग पंद्रह कृतियों में अपना मानसिक चिन्तन करना चाहिए। वेदा अमृता प्रकाश का चिन्तन करना चाहिए और चिन्तन करके जब वेदमन्त्र की ध्वनि उत्पन्न होती है, तो वह हृदय से होती है। यदि उससे भी अन्न का दोष हो जाए, तो ऋषि कहा करते थे कि उसके पश्चात मौन हो जाओ। वाणी से कुछ उच्चारण न करो, मानसिक चिन्तन करो और चिन्तन करने के पश्चात परिणाम यह होता है कि उसी चिन्तन से वेद की आभा, शुद्धता में परिणत हो करके वह हृदय से उच्चारण होने लगती है। हृदय ही परमात्मा का जो सर्वत्र जगत है, यह परमात्मा का जगत है, यह परमात्मा का हृदय है और हृदय की जो तरंगें हैं, हृदय की जो सूक्ष्म विद्या वेद में निहित होती हैं और निहित हो करके अपने हृदय से शुद्धता ला करके परमात्मा के हृदय से मिलान कर लेता है और मिलान करके उस मानव का जीवन प्रकाशमय बन जाता है, तो कौन ऐसा प्राणी है, जो इस विद्या को धारण नहीं करेगा। राजा भी इस विद्या को धारण करके राष्ट्र के नियम निर्धारित करता है। ०५.०६.१९७६

394. अनुष्ठान से पवित्रता

मुझे वह काल स्मरण है, जहाँ वर्षों तक अनुष्ठान चलते रहते थे। क्योंकि अनुष्ठान से मानव का हृदय, अंतरात्मा पवित्र होती है, उसे देवी सम्पदा आती है, मानव में धैर्य की शक्ति आती है। इसी प्रकार मानव अपनी आभा में अनुष्ठान करता रहा है। परम्परा से अनुष्ठान की परम्परा है। २४.१०.१९७६

395. स्मृति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब योगीजन इस नाना प्रकार की अग्नियों में अपने जीवन को ले जाते हैं। इसी अग्नि में योगेश्वर अपनी यौगिकता को ले जाता है। २१.०२.१९७७

396. राजकोष का प्रभाव

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। राजाओं के राजकोष का ऋषि-मुनि अन्न ग्रहण नहीं करते। जो महान तपस्वी होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना चाहते हैं, प्राण और मन की क्रिया को जानना चाहते हैं। राष्ट्र उन ऋषियों होता है, राष्ट्र से ऋषि नहीं होता। यह वाक्य तुम्हारे विचार में आना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र को जन्म देने वाला ऋषि है। राष्ट्र को जन्म ऋषि देता है। राष्ट्र ऋषि को जन्म नहीं देता। २२.०२.१९७७

397. गुरुदेव से साधना

पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करते थे, प्रभु! हमें साधना में परिणत करा दो, हम साधना में प्रवेश करना चाहते हैं।

तो पूज्यपाद गुरुदेव हमें प्राणों की धुकधुकी दिया करते थे। अन्न की धुकधुकी दिया करते थे। अन्न और प्राण दोनों का सम्बन्ध है। क्योंकि प्राण ही तो अन्न को निगल जाता है, प्राण ही संसार को निगल जाता है। यह प्राण ही है जो प्रकृति को अकिंचन बना देता है। यह प्राण ही हैं जो विस्तार रूप बना देता है। यह प्राण ही है जो अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने लगता है। तो यह प्राण ही प्राण अपना कार्य करता है। प्राण का जो भोज है। वह अन्न है, अन्न को पान करता है। क्योंकि अन्न उसी में समाहित हो जाता है। २२.०२.१९७७

398. गुरुदेव की अमूल्य विषय महानन्द जी

आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक ऐसे अमूल्य विषय को ले करके अपनी वार्त्ता उद्धृत की है कि जो बहुत गम्भीर और जो क्रिया से सम्बन्धित है। जो मानव के जीवन से सम्बन्धित है। जो वेद की विद्या को ऊँचा बनाने के लिए वह सहायक है। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो ऐसा निर्णय पुनः पुनः देते रहते हैं। आज हम तुम्हें उन्हीं के रूपों की कुछ चर्चाएं करना चाहते हैं। वह वास्तव में तो पूज्यपाद गुरुदेव के समीप हम यदि अपना कोई वाक्य प्रकट करते हैं तो ऐसा है जैसे सूर्य में रात्रि के काल में विचरने वाला एक जुगनू अपना प्रकाश देता है। परन्तु कोई बात नहीं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बारम्बार समय देते रहते हैं, और मैं उस समय का सदुपयोग करने का प्रयास करता हूँ। यथार्थ विद्या को देने के लिए तत्पर होता हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मेरे हृदय में नाना प्रकार की विडम्बना तो यह रहती है कि मैं जब विष्णु राष्ट्र, अश्वमेध और यहाँ नाना राजाओं की मनु सिद्धान्त और मनुजी के राष्ट्र निर्माण की चर्चा करूं तो मेरे लिए इतना शोभनीय नहीं। २३.०२.१९७७

399. गुरुदेव के समीप नाना ऋषियों का समूह

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण कराना चाहता रहता हूँ कि जो मानव प्रश्न करता, वह दार्शनिक धाराओं में, यौगिक धाराओं में उसका निराकरण होता रहे। मैं आज भी अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा भ्रमण कर रहा था। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव आज मुझे वह सुखद समय स्मरण आ रहा है, आज मैं उस काल को स्मरण कर रहा था, जब पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा नाना ऋषियों का समाज जाता था, नाना मृगराजों का झुण्ड जाता था। परन्तु विचारधारा के साथ साथ उनकी प्रश्नों की उत्तरावलियां चला करती थीं, और तपे हुए मानवता के विचार ये प्रकट किया करते थे, और आज मैं उन वाक्यों को स्मरण कर रहा हूँ। २४.०२.१९७७

400. अश्वपति के यहाँ अध्यापन

मैं बहुत काल तक महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन का कार्य करता रहा। परन्तु अध्यापन का जब कार्य करता, तो प्रातःकाल में ब्रह्मचारियों की एक पंक्ति लगा करती थी। वह जो पंक्ति लगती थी, उस पंक्ति मैं प्राण के निदान करने का, प्राण और मन दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता रहा। परन्तु उनमें ब्रह्मचारियों को यौगिक क्रियाएं, अनुसन्धान कराता रहा क्योंकि कोई भी मानव, कोई भी अध्ययन करने वाला प्राणी, बिना प्राणायाम किए ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। आज कोई भी ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी रहना चाहता है, अध्ययन करना चाहता है, तो अध्ययन के साथ मैं गार्हपथ्य नाम की अग्नि-पूजा करने वाला हो। गार्हपथ्य नाम प्राणायाम का है। जो प्राणायाम करने वाला हो मन, को एक सूत्र में लाने वाला हो। मेरे पुत्र ने बहुत ऊँची बातें की थीं। अध्यापन का कार्य वही कर सकता है जो स्वयं भी ब्रह्मचारी हो। स्वयं चरि (चरित्र) की रक्षा करने वाला हो। जो स्वयं अनुसन्धान करने वाला हो। जो स्वयं प्राण की क्रिया को जानने वाला हो। यह विद्यालय में जब विद्या अध्ययन कराता है, अध्ययन की क्रिया उसके समीप होता है, उसमें साधना का एक काण्ड होता है। साधना की एक प्रतिभा होती है। तो ब्रह्मचारी जब विद्यालय से अवतीर्ण होता है तो वह राष्ट्र और समाज को महान बनाता चला जाता है। वह तपस्वी कहलाता है। २६.०२.१९७७

401. अश्वपति के यहाँ नियम

अश्वपति के काल में यह नियम था कि माताओं को, ब्रह्मचारणियों को आयुर्वेद की विद्या दी जाती। २६.०२.१९७७

402. अश्वपति के यहाँ राष्ट्र नियम

मैंने यह दृष्टिपात किया महाराज अश्वपति के यहाँ पांच ऋषि थे, जो नियमावली का निर्माण कर रहे थे। राष्ट्र का विधान बना रहे थे। और सबसे प्रथम विधान में मेरी प्यारी माताओं का पूजन हो। माताओं का पूजन क्या कि उनको आयुर्वेद का ज्ञान हो। आयुर्वेदचार्य होगी, तो अपने गर्भ से ऊँची सन्तान को जन्म देंगी। क्योंकि वही उनकी पूजा कहलाई जाएगी। पूजा का अर्थ क्या है? उनका सदुपयोग करना है। उसके पश्चात नियमावली क्या? वैज्ञानिक और बुद्धिमान होने चाहिए। यौगिक कक्ष होने चाहिए। उसके पश्चात वनज कक्ष होना चाहिए। वैज्ञानिक सब कक्षों में अपने कर्त्तव्यां में रमण करते चले जाएं। यह नियमावली बनाई गई। इसी नियमावली पर राष्ट्र का निर्माण हुआ। निर्वाचन कौन कर रहे हैं? ऋषि कर रहे हैं। ब्रह्मवेत्ता और विवेकी कर रहे हैं। २६.०२.१९७७

403. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे! महानन्द ही मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं, परमाणुवाद की विचारधारा पर ले जाना चाहते हैं। परन्तु आज से पुरातन काल में, हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था। १९.०३.१९७७

404. गुरुदेव से पुत्रेष्टि याग पर चर्चा

एक समय मैंने अपने पूज्यपाद से यह कहा था कि आप में जो पुत्रेष्टि-याग के मन्त्रार्थ हैं, उन मन्त्रों को वायुमण्डल में ओत-प्रोत करा दीजिए। उन मन्त्रों को आप मन्त्रणा करके यज्ञशाला में देवताओं का हूत कर दीजिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ऐसा कुछ योग की आभाओं में रमण करते हुए, ऐसा कहा था कि अभी वह समय नहीं आ पाया है। इन्होंने समय की अभावता का वर्णन किया। ब्रह्मचर्य के आध्यात्मिक सुकृत में प्राप्त होती रही है। आज मैं उस आभा में नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज मैं अपने वाक्य केवल इसी आभा में प्रकट करना चाहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरी मनोकामना पूर्णता को प्राप्त हो। वह समय निकट आ रहा है, जैसे वायुमण्डल में देवता प्रसन्न होते हैं, ऐसे ही मानव के शरीर में देवता वास करते हैं, और विशेष कामना की प्रवृत्ति, विशेष बलवती होने के कारण, चित्त में प्रसन्नता न रहने से मानव के सुकृत में ह्रासता को प्राप्त होते रहते हैं। हे यज्ञमान! तेरा! हृदय सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। प्रसन्नता को प्राप्त होना चाहिए। जितना भी प्रसन्न होगा, जितना भी आनन्दवत होगा और प्रभु का आश्रय होगा, संसार के भोग विलासों का आश्रय न ले करके तू मेरे चैतन्य देव का जब आश्रय लेगा तो मेरे हृदय में प्रफुल्लता, प्रसन्नता महत्ता की ज्योति तेरे मुखारबिन्दु पर सदैव जागृत रहेगी।

405. गुरुदेव से महानन्द जी के प्रश्न

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में प्रकट कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे, जिस भी काल में उनके शरण में गया, उसी काल में वह मौन हो गए। परन्तु अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करता रहता हूँ कि मौन रहने का समय नहीं हैं मौन रहना तो एक मानवता है। परन्तु वह समय दूर चला गया है। आज का विचार मैं यह देने के लिए आया हूँ कि आज का जो वायुमण्डल है उसमें ऐसे तथ्यों की उत्पत्ति हो गई है। हे प्रभु! संसार में, राष्ट्र में समाज में रक्त भरी क्रांति के अवशेष उत्पन्न होते चले जा रहे हैं। हे प्रभु! आज की जो राष्ट्रवाद की घोषणा है, आज का जो जीवन है, वह जीवन एक ऐसा है, जहाँ मानवता का कोई प्रसारण नहीं होता, केवल अमानवता का प्रसारण होता है। २०.०३.१९७७

406. गुरुदेव से पुत्रेष्टि

आज मैं अपनी यज्ञशाला को दृष्टिपात कर रहा था, यज्ञमान जब तू निष्ठा से इस कार्य को करता है, मेरा अन्तरात्मा गद्-गद् होता है। परन्तु ज्ञान न रहने के कारण कर्म कांड में व्रत की न्यूनता रह जाती है। उसमें कोई बात नहीं, न होने से होना बहुत ही प्रियतम माना जाता है। हे ब्राह्मण! तेरा उद्गान पवित्रवत हो। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में कुछ चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मेरे पिता ने, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज से बहुत पुरातन काल में एक पद्धति का निर्माण किया था। जिस याग में जो वेदों में से पुष्प होते हैं, उनको निकाला जाता है। उनसे पुत्रेष्टि याग का चलन होता है। पुरातन काल में वह चलन होता रहा। अब वर्त्तमान में ब्रह्मणत्व सूक्ष्म तत्त्व को प्राप्त हो गए हैं। वह अनुसन्धान की प्रवृत्ति न रही। २०.०३.१९७७

407. प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी बारम्बार मुझे प्रेरणा देते रहते हैं। आज उनकी प्रेरणा यह है कि त्रेता में ऋषि मुनि का क्या विचार विनिमय करते रहे हैं। २५.०३.१९७७

408. पूर्वकाल का स्मरण

मुझे वह काल जब स्मरण आता है तो हृदय गद्गद हो जाता है कि ऋषि मुनियों ने कितना अध्ययन किया। एक-एक मन्त्र के ऊपर उन्होंने तप किया है। २५.०३.१९७७

409. महाभारत काल का स्मरण

मुझे वह काल स्मरण आ रहा है, जिस काल में महाभारत का संग्राम हो रहा है और भीष्म जी वाणों की शय्या पर विराजमान हैं। रक्त का संचार हो रहा है परन्तु ब्रह्मचारी ने यह नियम बना लिया कि जब तक सूर्य उत्तरायण नहीं होगा तक तक मैं अपने शरीर को नहीं त्यागूंगा। इस संकल्प को कौन करता है। ब्रह्मचरिश्यामि जो ब्रह्मचारी रहता है। यह उसी का संकल्प है। ०३.०४.१९७७

410. स्मृति

मुझे वह काल स्मरण है जब रेवक मुनि महाराज अपनी स्थली पर विराजमान हैं। सामगान गा रहे हैं। सिंहराज आते हैं और उनके चरणों को छू करके विद्यमान हैं। गाड़ी के नीचे ऋषि विद्यमान हैं और एक सौ एक वर्ष हो गए तप करते हुए। कितनी महत्ता है उस महापुरुष के द्वारा है। ०३.०४.१९७७

आज मैं अपने सूक्ष्म आभा के द्वारा एक यागों का दर्शन कर रहा था। और वह दिग्दर्शन मेरे अन्तरात्मा को बहुत प्रिय लग रहा था। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि पूर्वकाल के अनुसार तो यज्ञमान में सूक्ष्मता रहती ही है, परन्तु मेरे महापिता यह कहा करते थे, न करने से कुछ करना बहुत प्रिय माना जाता है। ०३.०४.१९७७

411. आत्माओं का भ्रमण

मैंने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रगट कराया कि वह देव लोकों कुछ आत्मा ऐसी होती हैं जो ६-६ माह तक लोकों में शुद्ध आत्माओं में भ्रमण करती रहती है। उनके संस्कार होते हैं। जैसा संस्कार, उसी के अुनसार उसको श्रेणी प्राप्त होती रहती है। मैं यह कहा करता हूँ कि ६-६ माह तक देवताओं के लोक में भ्रमण करके वह पुनः किसी पुण्यवान माता के शरीरों में प्रवेश हो करके संस्कारों के भोगने के लिए गमन करता है संसार में। ०३.०४.१९७७

412. अश्वपति का काल

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल मुझे प्रगट करते हुए कहा था कि महाराजा! अश्वपति के यहाँ जब यह नियमावली बन गई। प्रत्येक मानव राष्ट्र की घोषणा करता रहता है और यह कहता है कि हमारा राष्ट्र राम-राज्य होना चाहिए। राम-राज्य उस काल में होगा, जब राम के गुणों को प्रत्येक मानव अपनाने वाला बनेगा। ०३.०४.१९७७

413. गुरुदेव के क्रियाकलाप

पाँचों प्राणों को जान करके वायुयान पर गति करता है। वायु ही वायु में रमण करने वाला, ज्ञानी कहलाता है, पवित्र कहलाता है। वह योगाभ्यास में रमण करने वाला है। ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जान करके और पिण्ड दोनों का समन्वय करने वाला वैज्ञानिक, वायु के क्रिया-कलापो को सर्व प्रकार से जान सकता है। परन्तु वह जान करके उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस क्रिया-कलाप को बहुत देर तक करते रहे। मैंने निश्चय के द्वारा उनमें ओत-प्रोत हो करके उस विद्या को जाना था।

414. गुरुदेव का प्राण अनुसन्धान

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वर्षो-वर्षों हो जाते थे, अनुसन्धान में मौन हो करके, वायु पर अनुसन्धान करते थे और वायु को जानते रहते थे। एक सूर्य स्वर कहलाता है। एक चन्द्र स्वर कहलाता है। सूर्य तेजोमय कहलाता है और चन्द्र शीतलमय कहलाता है। एक रात्रि और एक दिवस में कितने प्राणों की गतियों में यह परमाणु अदलते-बदलते रहते हैं। इस पर बारह वर्ष का एक अनुसन्धान किया था और बारह वर्ष के पश्चात एक द्वन्द्व स्वर को हम जान पाए। उनका द्वन्द्व स्वर जो है वह कहाँ-कहाँ कैसे गति करता है! बारह वर्ष का तप इस सूर्य प्राणायाम जो तेजोमय है जो वायु में तेज गति कर रहा है। सूर्य जो एक रात्रि और एक दिवस में कितने स्वरों में गति करता है? जानने के लिए, बारह-बारह वर्षों का अनुष्ठान बारह वर्षो का तप किया जाता है। २१.०४.१९७७

415. गुरुदेव द्वारा मधु विद्या

हम नित्यप्रति पुरातन काल में जब पूज्यपाद गुरुदेव गुरुओं के समीप जाते थे, तो सबसे प्रथम उन्होंने हूत करने की क्रिया को निर्णित किया और प्रातःकाल, सायं काल को जब याग करते थे, तो उसके पश्चात आचार्य यह कहा करते थे, पूज्यपाद गुरुदेव! कि यह याग हमें क्या वर्णन करा रहा है? याग हमें किस स्थली पर ले जा रहा है? तो हम यह कहा करते थे कि पूज्यपाद हम इसको नहीं जानते। परन्तु पूज्यपाद उस पर निर्णय कराते रहते। धीमी-धीमी शिक्षा देते रहते। मधु विद्या का वर्णन करते हुए यह कहा करते कि यह जो याग कर्म है, यह सर्वत्र कर्मों में एक महान श्रेष्ठ कर्म कहलाता है। यह मानव को त्याग के क्षेत्र में ले जाता है, यह मानव को उस त्याग में ले जाता है जहाँ मानव के द्रव्य का सदुपयोग होता है, और उसी के अनुसार हम अपने विचारों को बनाते हैं, हम नाना साकल्य को लेते हैं, जलों को लेते हैं। जब अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। अग्नि में हम घृत देते हैं। ०६.०८.१९७७

416. दुःख का कारण

मैंने एक समय अपने आचार्यों से पूज्यपाद गुरुजनों से यह कहा कि यह संसार यदि तपस्वी बन जाएं, तो इसे दुःखद अथवा अस्वात नहीं होगा। इसे अस्वाथ नही होगा, इस संसार में मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में, प्रगट कराया, कि आज का संसार दुःखित है, माता अपने पुत्र से व्याकुल है। वह क्यों है? क्योंकि मेरा पुत्र मेरे समीप नहीं रहा, चला गया। पति दुःखित है, पत्नी के लिए और पत्नी पति के लिए दुःखित हो रही है। यह परिणाम यह क्यों हो रहा है? इसका मूल कारण है कि मानव में तप की सूक्ष्मता जब आ जाती है, तप नहीं रहता, माता-पिता तपस्वी नहीं रहते, तो पिता से पूर्व ही पुत्र का निधन हो जाता है। माता से पूर्व हो जाता है। वह दुःख का कारण बन जाता है। उसमें मानव व्याकुल होता रहता है। तो यह नहीं होना चाहिए। ०६.०८.१९७७

417. महर्षि लोमश मुनि

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि लोमश मुनि अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि लोमश मुनि के द्वार पर कागभुषुण्ड जी आ गए। महर्षि कागभुषुण्ड जी आ गएं, तो दोनों का विवेचन प्रारम्भ होने लगा। महर्षि लोमश मुनि कहते है कागभुषुण्ड जी, यह जो संसार कैसा सतो विचरण करने वाला संसार है? उस समय कागभुषुण्ड जी कहते हैं कि हे भगवन! हे ऋषिवर! हे ब्रह्मवेत्ता! आप तो ब्रह्म के मर्म को जानते हैं। आप तो चित्त की प्रवृत्तियों को जानते हैं। उसके पश्चात भी आप संसार की वार्त्ता प्रगट कर रहे हैं। परन्तु मैं यह उच्चारण अवश्य कर रहा हूँ कि मानव को अपने जीवन में मनुष्यत्व की प्रक्रियाओं को जान लेना चाहिए और जान करके ही हम अपने जीवन को सार्थक करते हैं। ०६.०८.१९७७

418. महानन्द जी की प्रेरणा

आज का हमारा वेदमन्त्र द्वारा कहीं से प्रेरणा आती रहती है, मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरणा देते रहते हैं। ०९.११.१९७७

419. गुरुदेव से आग्रह

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रार्थना करने के लिए आया हूँ कि मैं सदैव यागों के सम्बन्ध में निवेदन करूं अपने पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा के आधार पर इनका हमारे ऊपर अनुग्रह होता। ०९.११.१९७७

420. गुरुदेव के वाक्य

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने केवल तीन वाक्य उच्चारण किए हैं। एक लोकाचार। लोकाचार किसे कहते हैं? वेद की भाषा में लोकाचार कहते हैं, जो लोकप्रिय अपने जीवन को बनाता है। लोकाचार में वह अनुशासन में अपने जीवन को ले जाता है। उसके पश्चात उसमें एक विज्ञानवाद माना गया है। विज्ञान में वह समाधि तरंगों को जानता हुआ, नाना यन्त्रों का निर्माण करता है। और वही मानव जब समाधि में प्रवेश करता है, तो आध्यात्मिकवाद, लोकाचार और विज्ञानवाद एक सूत्र में पिरोएं जाते हैं और उस सूत्र में पिरोने के नाते वही विज्ञान मानव के जीवन का साथी बन जाता है। ०९.११.१९७७

421. गुरुदेव की नियमावली

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की यह नियमावली रही है जहाँ भी मानव पुरोहित रहा है वहाँ यागों का चलन रहा है। यागों की परम्परा रही है। क्योंकि यज्ञ सुगन्धी से राष्ट्र भरण किया जाता है। उसका अनुसरण प्रजा करने लगती है। प्रजा में चरित्र होना चाहिए। प्रजा में महत्ता होनी चाहिए। प्रजा में चरित्र नहीं है प्रजा में मानवता नहीं है। मेरी प्यारी पुत्रियों में इस बनावटी श्रृंगार की आभा है। वेद यह कहता है, धर्म और मानवता यह कहती है कि संसार में जितना भी श्रृंगार है, वह माता की, पुत्री की वाणी में है। उसका श्रृंगार उसका गर्भाशय है, वह श्रृंगारित होती रहती है। उसी से वह मनोनीत हृदय को ऊँचा बनाती रहती है।

जहाँ संसार में विज्ञान को अपने में धारण करते हुए समाधिस्थ को त्याग देते हो, जहाँ लोकाचार समाप्त हो जाता है, वहाँ मनोनीतता में अकर्त्तव्य की भावना आ जाती है, वह ही हृदय अकृतों में नष्ट करा देता है।

422. याग के लिए मानव जीवन

आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि मानव का जीवन याग के लिए है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराना चाहता हूँ, कि आधुनिक जगत कुछ इस प्रकार का बन गया है। राष्ट्र पद्धति विचित्र न रहने से, उनमें क्रियात्मक जीवन न रहने से धर्म को प्रत्येक मानव एक आडम्बर की दृष्टि से दृष्टिपात कर रहा है। वह यह कहता है कि धर्मयज्ञं ब्रह्मे मैं यह कहा करता हूँ कि कोई भी वाणी धर्म से विमुख नहीं हो सकता। ०९.११.१९७७

423. गुरुदेव के चरणों में अध्ययन

एक समय का वाक्य मुझे स्मरण आ गया है। एक समय हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत थे। कुछ अध्ययन कर रहे थे कुछ उनसे यौगिक चर्चाएं प्रारम्भ हो रही थीं, तो पूज्यपाद गुरु से यह प्रश्न किया कि प्रभु! आपने यह कैसे जाना है? जो इतने ब्रह्माण्ड की आप चर्चाएं करते हैं, इतने गम्भीर! आप इस संसार को अनुभव भी नहीं होने देते, कि यह संसार क्या है? परन्तु आपका ऐसा जो विचित्र यह अनुपम जगत है। यह जो विचारों का जगत है, प्रभु! इसमें आप हमें ले जाते हैं। उन विचारों के जगत में कौन-सी आभा है? और कैसे आपने इसे जाना है? परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि जो भी मानव संसार में विचारक बनना चाहता है, वह प्रातःकाल एक याग करता है, उस याग का नाम हमारे यहाँ ब्रह्मयाग कहा जाता है जितना ब्रह्म का चिन्तन किया जाता है। ऊषा काल में ऊषा देवी अपनी लालिमा ले करके आती है। संसार में प्रकाश को लेकर आती है। उस समय प्रत्येक मानव ब्रह्म का चिन्तन करता है और जैसे रात्रि और दिवस दोनों का मिलान होता है उस काल में अपने मनस्तत्व जहाँ ऊषा काल आता है, वहाँ जहाँ अन्धकार और प्रकाश का मिलान होता है, ऐसा जो काल उसको हमारे यहाँ सन्ध्या का काल कहते हैं।

उसे सन्ध्या का काल क्यों कहते हैं! क्योंकि उसमें प्रकाश और अन्धकार दोनों का मिलान होता है। प्रातःकाल को भी और सायंकाल को भी विचारक जो ब्रह्मवेत्ता हैं अथवा जो ब्रह्म का चिन्तन करने वाला है वह ब्रह्म का चिन्तन करने के लिए तत्पर होता है और वह विचारता है इसी प्रातःकाल को और वह चिन्तन करता है लोक-लोकान्तर की मालाओं को और वह गम्भीर एक अगाध समुद्र में चला जाता है, इतनी अगाध आभाओं में रमण करने लगता है क्योंकि ब्रह्म ही एक चैतन्य है। ब्रह्म की जो चेतनता है, ब्रह्म का जो चैतन्यमयी स्वरूप माना गया है, प्रातःकाल उसे ब्रह्मयाग कहते हैं अथवा ब्रह्म का चिन्तन कहते हैं। वह कहता है, हे प्रभु! मैं आप को समर्पित हो गया हूँ। उस समर्पणता के आँगन में हमें धारण कराइये, प्रभु!। १३.०३.१९७८

424. महानन्द जी की लालसा

मेरे प्यारे महानन्द जी भी लालायित रहते हैं कि मैं भी दो शब्दों की विवेचना करूं। १४.०३.१९७८

425. महानन्द जी को शरीर ग्रहण करने का आग्रह

परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी अपने विचारों को प्रकट करेंगे। कटुता की आभा त्याग करके अपने सुन्दर विचारों को देंगे। इनके विचारों में एक विडम्बना रहती है। मैं अपने प्रभु से याचना करता रहता हूँ कि हे प्रभु!। यह महान वेदना समाप्त होनी चाहिए। क्योंकि ये वेदनाएं एक विडम्बना ही नहीं है। जैसे माता वियोग में व्याकुल हो जाती हैं, ऐसे ही यह व्याकुलता मानव को सदैव दृष्टिपात आती रहती है। ऐसे ही मेरे प्यारे पुत्र के हृदय में यह वेदना है, ये तरंगें होती हैं, परन्तु ये मानव क्यों नहीं बन जाते, अपने शरीरों को धारण करके और उस वेदना को अपने में ही दृष्टिपात करते रहें। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ शब्दों की विवेचना करेंगे। १६.०३.१९७८

426. गुरुदेव का आनंदमयी जीवन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी कुछ आनन्द की चर्चाएं कर रहे थे और वे आनन्दमयी जीवन को बनाने की प्रेरणा देते ही रहते हैं क्योंकि इनका हृदय उदारतामय होता है। ये यौगिक प्रसार और यौगिक आभा वाले जितने भी प्राणी हैं, संसार में ऋषि हैं, जिन्होंने अपनी अन्तरात्मा को जान लिया है, जिन्होंने संसार को मिथ्या ही जानकर त्यागा है, ऐसे प्राणी सदा उदार होते हैं, उनमें उदारता होती है। उनका मन, वचन, कर्म एक ही होता है। आज में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में कोई टिप्पणियां करना नहीं चाहता हूँ। परन्तु हमारा यह वाक्य क्या कहता है? आज मैं अपने उन वाक्यों के सम्बन्ध में विवेचना प्रकट करने आया हूँ। जो मुझे आज दृष्टिपात आ रहा है, मैं वायुमण्डल की तरंगों को जब श्रवण करने लगता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रभु के लिए क्या खिलवाड़ हो रहा है। मुझे खिलवाड़ सा प्रतीत होता है और इन्द्रजाल सा प्रतीत हो रहा है।

मैंने इससे पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह प्रकट कराया था कि दुराचार से वह राष्ट्र कभी ऊंचा नहीं बनेगा। जब यहाँ त्रेता के काल में जाता हूँ। १३.०३.१९७८

427. पूज्य महानन्द जी

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराने जा रहा हूँ कि आधुनिक काल के छात्र को ऊंचा बनना होगा। यदि नहीं बनेगा तो यह राष्ट्र रक्तभरी क्रान्ति में परिणत हो जाएगा। यह आलस्यमय ब्रह्मचारी बन गया है। १३.०३.१९७८

428. गुरुदेव के यहाँ महानन्द जी का अध्ययन

मुझे स्मरण है। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप आया, तो मुझे एक-एक शब्द को अध्ययन करने के लिए एक-एक माह तक वार्त्ता प्रकट नहीं करते थे। मैं जब आचार्य जी के समीप किसी समय में आया, परन्तु बारह-बारह वर्ष तक तप कराते रहते, अध्ययन की प्रक्रियों को वर्णन करते रहते। परन्तु उत्तर नहीं देना और पत्रों का पान किया जाता था, पंचांगों का पान किया जाता। अन्न भी वे देते, जिसमें ऊँची तरंगें उत्पन्न होतीं। बुद्धिमान तब बनता है, जब मानव को सब प्रकार का ज्ञान होता है। आज तो ज्ञान का अभाव है। वेद के मन्त्रों को यदि आज के विद्यार्थी से आचार्य से यह कहा जाए कि आचार क्या है? उसके सम्बन्ध में वह उत्तर नहीं दे पाते। १६.०३.१९७८

429. महानन्द जी की वेदना

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बारम्बार यह वाक्य प्रकट कराते रहते हैं, यह प्रेरणा भी देते रहते हैं हे पुत्र! तू वेदनित न हो। मैं वेदना करने नहीं आया हूँ। मैं तो केवल यह प्रकट करने के लिए आता हूँ कि मानव समाज को ऊंचा बनाना है। मानव समाज अपनी आभा में आभायित रहता रहे। परन्तु विज्ञान विज्ञान के आँगन में हैं। विज्ञान होना चाहिए, विज्ञान से ही आगे जा करके मानव आध्यात्मिक वेत्ता बनता है। पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल में कहा था कि जब मैंने उनसे यह प्रश्न किया कि भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान में क्या अन्तर्द्वन्द्व है। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि भौतिक विज्ञान ऐसा आभायित है, कि जब आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करता हैं, तो भौतिकवाद के मार्ग से विचरण करके जाता है। इसीलिए संसार को जानना, परमाणुओं को जानना, तरंगों को जानना, सूर्य लोक में प्रवेश करना और भी नाना लोक लोकान्तरों में यातायात का बनाना और एक बात स्वीकार कर लो, कि संसार में जितने भी लोक लोकान्तरों की यात्रा हैं, चाहे वह सूर्य मण्डल, चाहे बृहस्पति हो, चाहे शनि हो, कोई भी मण्डल हो, परन्तु उसमें जीवन है। कुछ लोकों में पार्थिव तत्त्व हैं, कुछ लोकों में जल प्रधन प्राणी रहते हैं, किन्हीं में अग्नि प्रधान प्राणी रहते हैं। परन्तु जहाँ जीवन है जहाँ, जल है, जहाँ प्राणवादक वायु है, वहीं प्राणी का जीवन विद्यमान है। राष्ट्र के राष्ट्र विद्यमान हैं। मंगल का राजा अपने राष्ट्र में शासन कर रहा है, चन्द्रमा का कर रहा है आज इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं। १८.०३.१९७८

430. महानन्द जी की उपासना

आज महानन्द जी कुछ वेद मन्त्रों की उपासना कर रहे थे अथवा कुछ उच्चारण भी कर रहे थे। आज का हमारा वेद का पठन-पाठन क्या कह रहा। ०७.०४.१९७८

मेरे प्यारे महानन्द जी की प्रबल इच्छाएं हैं कि मैं भी दो शब्द उच्चारण करूं। ०९.०४.१९७८

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। कल्पना ही नहीं चिन्तन का विषय दे रहे थे, और हमारे लिए कुछ सामग्री त्यागते हुए वे अपनी एक महान और ऊर्ध्व में उड़ान उड़ रहे थे। यज्ञमय स्वरूप का वर्णन कर रहे थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यज्ञमय स्वरूप का वर्णन करते रहते हैं। परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ परिचय कराने आया हूँ कि जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ हम एक याग का दिगदर्शन कर रहे हैं। मेरे पूज्यपाद यज्ञ की आभा को दृष्टिपात करके मेरा अन्तरात्मा गद्-गद् हो रहा था। वास्तव में जहाँ तक कर्म काण्ड का सम्बन्ध है, वह कर्म काण्ड तो भावनाओं के सहित रहता है परन्तु कर्म काण्ड में स्थिरता नहीं आनी चाहिए। ०९.०४.१९७८

431. पूज्य महानन्द जी

मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करने आया हूँ कि आधुनिक जगत का जो मानव है, उसका जो मार्ग है वह द्वितीय बन गया है। आधुनिक जगत में जब मैं राष्ट्रवाद और मानववाद की चर्चाएं करता रहता हूँ और जब मुझे यह आधुनिक काल स्मरण आता रहता है, तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव तक इन वार्त्ताओं को लाने का प्रयास करता रहता हूँ। आधुनिक काल का जो विज्ञानवाद है विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। ०९.०४.१९७८

432. राष्ट्र में धर्म

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देना चाहता हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में ऊंचा बनाने के लिए, सुगन्धि को उत्पन्न करना होगा। मेरे हृदय में यह वेदना रहती है कि नाना प्रकार की रूढ़ियां राष्ट्र से समाप्त हों, नाना प्रकार का जो धर्म राष्ट्र रहता है। वास्तव में धर्म एक होता है, एकागी धर्म को अपना लेना चाहिए। ०९.०४.१९७८

433. अनधिकार से राष्ट्र पतन

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देने के लिए आया हूँ, कि इस समय जो संसार के प्राणियों की गति हो रही है, वह समय दूर नहीं है जब यहाँ जितने अन्तरिक्ष में लोक लोकांतर हैं, वहाँ वैज्ञानिकों का आदान प्रदान होने जा रहा है। क्योंकि मंगल का प्राणी मंगल का वैज्ञानिक पृथ्वी पर भ्रमण करने आता है और यहाँ का प्राणी मंगल में चला जाएगा, कुछ काल के पश्चात और चन्द्रमा में गति करने वाले चन्द्रमा के प्राणी यहाँ गति करेंगे। वह समय आ रहा है और यदि यह समय भयंकर अनधिकार चलता रहा, तो यहाँ अग्नि भी प्रदीप्त हो जाएगी। ०९.०४.१९७८

434. परमात्मा की अमूल्य वाणी

आज मेरे प्यारे महानन्द जी उन्हीं पुरातन काल की वार्त्ताओं की पुनरुक्ति करते चले गए। इनके हृदय में एक वेदना रहती है कि रूढ़ियां समाप्त होनी चाहिए। इन रूढ़ियों को शक्तिशाली प्राणी ही समाप्त किया करते हैं, जो ज्ञानी होते हैं, वेद की पोथी उनके समीप होती है। क्योंकि वेद के पक्षपात से रहित विचार हैं, और जो पक्षपात से रहित विचार हैं, यह परमात्मा की अमूल्य वाणी है। वह मानव के लिए शिक्षा प्रद हैं और जो मानवीय दर्शनों की विवेचनाएं हैं वह मानवीय दर्शनों में ही ओत-प्रोत रहती हैं। मानव को स्वतः ही अपना दर्शन करना चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपनी एक सुन्दर विवेचना प्रकट की, कि मेरी पुत्रियों के अश्लील नृत्य नहीं होने चाहिए। इसका परिणाम भी इन्होंने प्रकट किया। वास्तव में इसका परिणाम बड़ा विचित्र है कि जब ब्रह्मचर्य मानव का दूषित हो जाता है और दूषित होने पर मानव के हृदय में चंचलता आ जाती है, अब जो शिक्षा प्रणाली है, जो शिक्षा की प्रतिभा है जो गार्हपत्य अग्नि की पूजा की घोषणा करता है ब्रह्मचारी के लिए, यमाचार्य जैसा ऋषि कर रहा है, वेद का वाक्य भी कहता है, उस पथ से ब्रह्मचारी विचलित हो जाता है। विज्ञान के दुरूपयोग होने पर रावण जैसे साम्राज्य समाप्त हो गए। महाभारत भी इस विज्ञान के दुरूपयोग में समाप्त हो गया।

मुझे अपने पुत्र की विवेचना बहुत सुन्दर लग रही थी कि विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए, रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। मानव मानव की धर्म और व्यापकता एक महान आभा में रमण करती हुई उज्ज्वल स्वरूपों को प्राप्त होती रहे। और मेरे प्यारे महानन्द जी अभी अभी यज्ञमान को शुभ कामना प्रकट कर रहे थे। मेरी भी सदैव यह कामना रहती है कि द्रव्य का अपने गृह में सदुपयोग होता रहे और देव पूजा होती रहे, देवताओं का आह्वान होता रहे। स्वाहा होता ही रहे। उसके पश्चात उनके जीवन की आभा मेरे हृदय की कामना है, कि जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, पवित्रता में सदैव धारण करता रहे। ०९.०४.१९७८

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी जब समाधि में प्रवेश करते थे, तो वे अपनी चित्त की धारा को बाह्य चित्त में प्रवेश करा देते थे, और जहाँ बाह्य चित्त में प्रवेश हुआ, यह जो प्रकृति का सर्वत्र चित्त है जिस चित्त के गर्भ में, प्रकृति के गर्भ में, चित्त रूपी गर्भ में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड अपना क्रियाशील दृष्टिपात होता है, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड, लोक लोकांतर एक आभा में, एक चित्त में दृष्टिपात होते हैं, मानो इन सबको दृष्टिपात कर लेते हैं।

435. गुरुदेव की समाधि

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य ऐसा कहा करते थे, कि आंतरिक जगत से जब बाह्य जगत में प्रवृत्तियों को प्रवेश कर देते हैं और जो परमात्मा का अमूल्य हृदय रूपी चित्त है, उस चित्त में जब हमारे चित्त का समन्वय होता है, तो कोई लोक ऐसा नहीं रह पाता। जिसको यह समाधि के द्वारा दृष्टिपात न कर लें, और जितना भी मण्डलवाद है, जितना भी तरंगवाद है, जितना भी रथवाद है, जितना भी मानव के चित्र बन करके शब्द, वह इसके द्वारा प्रवेश करके अपने में अनुभव करने लगता है। अब विचार आता है, चिन्तन करने से प्रतीत होता है कि वह जो अनुभव कर रहा है, उस मानव शरीर में जो अनुभव कर रहा है वह एक चेतना है। यह चेतना मन के द्वारा दृष्टिपात करता रहता है। वह अनुभव में लगा हुआ है, वह अपने ऐसे सूक्ष्म जगत में चला जाता है, जिस जगत में नाना प्रकार के जो मोक्ष के निकट आत्माएँ होती हैं। वह भी कहीं कहीं उनके लोकों में गति करने लगता है। उन गतियों में जब प्रवेश हो जाता है तो वास्तव में दृष्टिपात करने लगता है। १२.०४.१९७८

436. समाधि से बोध

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य ऐसा कहा करते थे, कि आंतरिक जगत से जब बाह्य जगत में प्रवृत्तियों को प्रवेश कर देते हैं और जो परमात्मा का अमूल्य हृदय रूपी चित्त है, उस चित्त में जब हमारे चित्त का समन्वय होता है, तो कोई लोक ऐसा नहीं रह पाता। जिसको यह समाधि के द्वारा दृष्टिपात न कर ले और जितना भी मण्डलवाद है, जितना भी तरंगवाद है, जितना भी रथवाद है, जितना भी मानो मानव के चित्र बन करके शब्द वह इसके द्वारा प्रवेश करके मानो अपने में अनुभव करने लगता है। १२.०४.१९७८

437. अनुपम चिन्तन

हमारे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि सर्वत्रता में यह आनंद है। अपने सामान्य जिसको हम सामान्य बनाए हुए विद्यमान हैं उससे जब हम व्यापक क्षेत्र में

प्रवेश कर देते हैं, तो व्यापकता का जो ज्ञान है, व्यापकता की जो तरंगें हैं, वह जो विवेक है, उस आनंद में ही मानव को मग्न रहना चाहिए। क्योंकि उससे आगे यह अनुभव करता रहे, तो उसका एक अनुपम चिन्तन है और मनन है। क्योंकि वह संसार के क्षेत्र से उपराम हो गया है। १२.०४.१९७८

438. गुरुदेव के द्वार
एक समय मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पहुंचा। मेरे पूज्यपाद नेत्रों के ऊपर अनुसन्धान कर रहे थे। नेत्रों से कुदृष्टिपात नहीं किया जाएं, सुदृष्टि ही मानव की रहनी चाहिए। उन्हें १०१ वर्ष हो गएं, सुदृष्टिपात करते हुए। कहते हैं, जो प्राणी हिंसक आ रहा हो, वह प्राणी नेत्रों की ज्योति से ही वह उसी स्थली पर विद्यमान हो जाता था। सर्पराज आ गया है, सर्पराज उस नेत्रो की ज्योति से अपनी स्थली में प्रदान हो गया है। विचार आता है कि नेत्रों के द्वारा जब मानव नेत्रों का तप करता है, वह तपस्वी बनता है, तो वायुमण्डल की तरंगों में मानव के चित्र विद्यमान हैं। शब्दों के साथ में है उस मानव को वह दिव्यज्योति प्राप्त हो जाती है कि अन्तरिक्ष में जो शब्द विद्यमान है उनके साथ में जो शब्द हैं अथवा चित्र हैं वे उनको दृष्टिपात आने लगता है। ०३.०७.१९७८

439. व्याकरण का विकास ब्रह्मा जी द्वारा
मुझे स्मरण है सृष्टि के प्रारम्भ में इस शरीर को ही आदि ब्रह्मा जी ने जान करके इसी ध्वनि से व्याकरण की उपलब्धि की थी। व्याकरण का जो विकास हुआ है, शब्दों की जो ध्वनियाँ आती हैं, वे जो हमारे अन्तर्हृदय में इस आन्तरिक जगत में जो नाना प्रकार के यन्त्रों की ध्वनियाँ आ रही हैं मानव का बाह्य-जगत इतना विशाल बन गया है, कि आन्तरिक ध्वनियों को स्वीकार करने में विघ्नत हो गया है। वे जो ध्वनियाँ हैं, जिनको योगी, ऋषि साधकों ने अनहद कहा है। इसको अनहद ध्वनि कहते हैं जिसको योगीजन श्रवण करते हैं, जिसके श्रोत्र वहीं स्थिति रहते हैं। मानव के द्वारा चित्त में जो आवागमन के संस्कार होते रहते है, वे समाप्त होने लगते हैं, वे भस्म होने लगते हैं। तो विचार क्या कि हम अपने श्रोत्रों के द्वारा उस ध्वनि को स्वीकार करें, जो ध्वनि मानव के आवागमन के संस्कारों को नष्ट करने वाली है। ०३.०७.१९७८

440. गुरुदेव के द्वार जिज्ञासा
मुझे स्मरण है एक समय हम कुछ शिष्य, जिज्ञासु अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पहुँचे। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा-हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारा आगमन क्यों हुआ? अब हमने कहा, हे भगवन! हम इसलिए आए हैं कि परमात्मा के हृदय में क्या विज्ञान है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि प्रभु के सर्व विज्ञान को मैं तो जान नहीं पाया हूँ। परन्तु इतना उच्चारण किए देता हूँ कि मेरी जो यह विज्ञानशाला है, यह मेरी आध्यात्मिक विज्ञानशाला है और यह मेरी भौतिक विज्ञानशाला है। भौतिक विज्ञानशाला में मुझे लगभग ३७२ आकाश गड्गाएँ दृष्टिपात हुई हैं, और आध्यात्मिक विज्ञान में जब मैं पहुँचा तो मुझे १ करोड़ ९२ लाख बावन हजार ५०० आकाश गड्गाएँ मुझे आध्यात्मिक-वाद में दृष्टिपात हुई है।

441. गुरुदेव द्वारा आकाशगंगा बोध
आकाश गङ्गा को जब प्राप्त करने लगे हम पूज्यपाद से, तो पूज्यपाद उच्चारण करने लगे कि जब मैं भौतिक-यन्त्रों के द्वारा एक आकाश-गङ्गा के सूर्यो की गणना करने लगा, तो मुझे लगभग ५ खरब, ५ अरब, ९५ करोड़ ८५ लाख ५२ एक ही आकाशगङ्गा में मुझे सूर्य दृष्टिपात आने लगे। जब मैं आध्यात्मिक-क्षेत्र में पहुँचा, तो मैं एक आकाश गङ्गा के सूर्यों की गणना नहीं कर सका। वह अरबों में नही, खरबों में नहीं, नील और पदम में जा पहुँची। परन्तु मेरे से गणना समाप्त हो गयी। कितना प्रभु का व्यापक हृदय है और ऐसी-ऐसी यहाँ करोड़ों आकाशगङ्गाएँ मुझे आध्यात्मिक मार्ग में दृष्टिपात आने लगी।

442. परमात्मा का यह जगत उसका हृदय हैं।
हे ऋषियों! परमात्मा का हृदय तो इतना विशाल है। जो अपने हृदय को जानेगा, अपने हृदय का परमात्मा के हृदय से समन्वय करेगा, तो यह वाणी उच्चारण करने में असमर्थ हो जाएगी। वह वाणी नेति-नेति उच्चारण करने लगेगी। तो परिणाम क्या? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ये वर्णन कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि परमात्मा का जो यह जगत है यह उसका हृदय हैं। मानव का जो हृदय है वह भी हृदय है जिसमें सर्वत्र माननीय ब्रह्माण्ड, मानवीय दर्शन ओत-प्रोत रहता है। ०६.०७.१९७८

443. महानन्द जी द्वारा गुरुदेव को बोध
मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को, यह निर्णय कराने के लिए आया हूँ, महाभारत काल के पश्चात यह जो रूढ़ियाँ आई। भिन्न-भिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ आई, इन रूढ़ियों ने सबसे प्रथम राष्ट्र तक सीमित रह करके, राष्ट्र को स्वार्थवादी बनाया। २४.०८.१९७८

444. महानन्द जी की वेदना
आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने, अपनी एक दुखमयी वेदना प्रगट की, यह परम्परागतों से एक वाक् उच्चारण करते चले आ रहे है कि राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। २४.०८.१९७८

445. गुरुदेव का लक्ष्य
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद्र समाज! मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में, बहुत ही परम्परा से, मेरी वन्दना, मेरा बारम्बार नमस्कार होता रहा है। परन्तु आज मैं अपने विचारों को पूज्यपाद, गुरुदेव को निर्णय देना चाहता हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो उद्देश्य है? अथवा इनका जो लक्ष्य है वह इतना विचित्र है कि इसको अपने में धारण करने में असमर्थ है। जब मैं यह विचारता हूँ कि आधुनिक काल के समाज में, नाना प्रकार के मदों में मानव परिणत है। कहीं मानव, जहाँ ये वाक्, जहाँ ये आकाशवाणी का प्रसारण हो रहा है। आज मैं याग जैसे महान कर्मों को दृष्टिपात कर रहा था। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करने आया हूँ, कि जहाँ मानव के एक विचारों में, द्वितीय विचारों में भिन्नता रहती है। वहाँ मानवीयता का ह्रास होता रहता है। यह वाक् बहुत ही

प्रियतम है आज मैं ब्रह्मण, यज्ञमान के लिए अपने वाक् प्रकट करने के लिए आया हूँ। हे यज्ञमान! तेरा हृदय, तेरी महानता विशाल बनती चली जाए।

446. द्रव्य से अग्निकांड
हे पूज्यपाद! आपने तो मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा, वहीं द्रव्य अग्नि का काण्ड बन जाता है, उसी प्राणी के लिए, जब वह मृत्यु की शैय्या पर जाता है, तो व्याकुल हो रहा है और यह कह रहा है, हे भगवन्! मेरे प्राण-अन्त होने चाहिए। अब मैं यह शरीर नहीं चाहता। परन्तु जिस शरीरों में शक्ति नहीं रही, जिन शरीरों से नाना भोगवाद में परिणत रहे हो। माता का दुरूपयोग किया, माता लक्ष्मी का दुरूपयोग किया। अहा, वही लक्ष्मी उनके समीप आकर के वीरांगना बन करके उसको कहती है कि तुमने मेरे द्रव्य का दुरूपयोग किया, आज तूने मेरा दुरूपयोग किया, मैं तेरी मां बन करके आई। हृदय से आलिंगन करने के लिए, मोक्ष में ले जाने के लिए, परन्तु तू नारकिक बन गया, तू नारकिक ही बना रहे। मैं इसमें क्या कर सकती हूँ।

447. प्रेरणा
मुझे बहुत पुरातन काल की वार्त्ता स्मरण आती रहती है। मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे नाना प्रेरणा देते रहते है। उन प्रेरणाओं के आधार पर आज का हमारा वेद का ऋषि भी, वेद का मन्त्र भी, इसी प्रकार का आता चला जा रहा है।

448. स्मृति
मुझे वो काल स्मरण आता रहता है। मुझे वो काल क्या, संसार की नाना प्रकार की चर्चाएँ, मुझे स्मरण आती रहती है। महाराजा अश्वपति के यहाँ नित्य प्रति प्रातः काल में बुद्धिमानों के द्वारा याग होता रहा। उन यागों का अभिप्राय क्या? हम याग करते रहे। याग की परम्परा, आचार्य कुल में होती है। इसी प्रकार आचार्य कुल में क्या, विद्यालयों में सदैव यागों की प्रथा है।

449. देववाणी
हमारी देववाणी जो परमात्मा ने हमें प्रदान की है, कितनी सुंदर वाणी है, रसना है। नाना प्रकार के रसों का स्वादन करने वाली है।

450. महाराजा गौणिक नामक राजा के यहाँ पुत्रेष्टि याग
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का मुझे एक सूक्ष्म जीवन स्मरण आता रहता है। आज का, वर्तमान की चर्चा न देता हुआ परम्परा की चर्चाएँ। महाराजा गौणिक नामक राजा थे। जो महाराजा रघु के वंशलज में हुए हैं। गौणिक नाम के राजा के यहाँ वृष्टि यज्ञ होना, याग होना था। राजा स्वयं पत्नी सहित उनके द्वार पर गए और चरणों को छुआ और यह कहा प्रभु! हमारा निमन्त्रण स्वीकार कीजिए। तो आचार्य कहता है, पूज्यपाद गुरुदेव कहते हैं-कि तुम एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर के तुम मुझे निमन्त्रण दो। वह कितना आभा वाला शब्द है। उन्होंने प्रतिज्ञा की और प्रतिज्ञा करके भिन्न भिन्न स्थली पर वास होता, उनका क्या गायत्राणी छंदो का पठन-पाठन करना। ब्रह्म की आभा में रमण करने का नाम ब्रह्मचारी कहलाता है।

वह जब उनके द्वार पर पुनः आए, पुनः आने के पश्चात उन्होंने नमः करके कहा-प्रभु! अब, तो उसके पश्चात बारह दिवस का समय दिया, कि तुम याग की पारम्परिक रचना करो। तो उसके पश्चात वो याग हुआ। राजा के समीप जब पहुँचे, तो राजा ने स्थल को त्याग दिया और कहा आओ, भगवन्! अब उस स्थली को, जिसको त्याग करके राजा भयंकर वनों में चले जाते थे। आज का समाज, आज की वो वैदिक परम्परा इस समाज से चली गई, आज का राजा वृद्ध हो जाए, नष्ट, उसकी वाणी कार्य न करें, नेत्र कार्य न करे। घ्राण अपना कार्य त्याग दे, श्रोत्र त्याग दे। परन्तु वह उस स्थली को त्यागना नहीं चाहता। कहाँ चला गया समाज, मैं आश्चर्य से वाक् को प्रकट कर रहा हूँ।

451. आधुनिक राष्ट्र में खिलवाड़
राजा एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहते हैं उसके पश्चात वृष्टि याग करते हैं। साकल्य एकत्र किया जाता है। उसी प्रकार का साकल्य, आज का राजा कहता है। आज का प्रजा का नेतृतव नहीं, प्रजा को जो गढेले में ले जा रहें हैं, उनका नेतृत्व करने वाला कहता है, आज का समाज। परन्तु, वह कहता है याग कर्म तो पाखण्ड है। अरे, पाखण्ड इसलिए है क्योंकि उसने अपने हृदय को इतना निकृष्ट बना लिया है कि उसको सभी शुभकार्य पाखण्ड दृष्टिपात आते हैं। आज का समाज, आज का राजा कहता है कि द्रव्य होना चाहिए। राष्ट्र का चरित्र कहीं चला जाए, राष्ट्र की आभा कहीं चली जाए, द्रव्य होना चाहिए। जब राजा द्रव्य की मौलिकता में आ जाता है, द्रव्य का संग्रह करने में लग जाता है। उस राजा के राष्ट्र में अग्नि के ऐसे भयंकर, अग्निकांड होते है कि राजा सदैव चिंतित रहता है समाज चिंतित हो जाता है। ०५.०३.१९७९

452. प्रेरणा
मुझे स्मरण है उद्दालक मुनि का गोत्र। उद्दालक मुनि के गोत्र में नाना ऋषि हुए। परन्तु आज मुझे महानन्द जी प्रेरणा यही दे रहे हैं, आज मुझे याग की प्रेरणाएं प्राप्त हो रही हैं। ०८.०८.१९७९

453. याग से प्रसन्नता
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! भद्र ऋषिमण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी आध्यात्मिकवाद के मर्म की चर्चाएं कर रहे थे। इनका आध्यात्मिकवाद तो परम्परा से ही रहता हैं, जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी प्रवेश है, वहाँ एक याग की प्रतिभा है। आज मेरा आत्मा प्रसन्नता युक्त हो रहा था। कैसा प्रिय याग? मैं अपने विचारों से, मैं यह उच्चारण करने आया हूँ। मेरी सहानुभूति रहती है, यागों में यज्ञमान और उद्गान गाने वाला ब्राह्मण पर और यज्ञमान उनका आयु दीर्घ होना चाहिए। आयु में बलवती होनी चाहिए। हे यज्ञमान! तू अपनी अन्तरात्मा को उज्ज्वल बनाने में सदैव तेरी भावना रहहनी चाहिए। संसार तो परंपराओं से ही गति कर रहा है। आज मैं यही उच्चारण करने के लिए आया, कि यज्ञमान सपत्नी उनका सौभाग्य अखण्ड बना रहे। उनके जीवन में सदैव सुमति आनी चाहिए। और

पवित्रता की महान देवी, उनके अन्तरहृदय में प्रवेश की जानी चाहिए। गान गाने वालों की आयु दीर्घ हो और उद्गन गाने वाला, वायुमण्डल में देवताओं के आँगन में विद्यमान हो जाता है।

454. गुरुदेव को वर्तमान संसार का परिचय व स्वार्थवाद

मैं बहुत पुरातन काल से गुरुदेव को इस संसार का परिचय कराता हूँ कि यह संसार अग्नि वेदी पर आने के लिए जा रहा है। वह समय दूर नहीं रहा जब यह अग्नि के काण्ड में परिणत होने जा रहा है। मैं आज संसार के स्वार्थ-वाद को दृष्टिपात करके आश्चर्य कर रहा हूँ। राष्ट्रवाद में स्वार्थ वाद है। प्रत्येक गृह में स्वार्थवाद है। पति-पत्नी स्वार्थी बन गए हैं। इस समाज का क्या बनेगा? इसको प्रभु ही जानता है। परन्तु मैं अपने वाक्यों में उच्चारण क्या कर सकता हूँ? केवल स्वार्थवाद ही इस समाज के विनाश का कारण बनता चला आया है परम्परा से।

इसीलिए प्रभु से मेरी प्रार्थना है, कि हे प्रभु! तू संसार के प्राणियों को सुमिति दे और यह स्वार्थवाद समाप्त हो। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य उच्चारण करके अपना विराम देता हूँ। यज्ञमान का जीवन दीर्घ हो। आयु में महत्ता आए यह सदैव मैं प्रार्थना करता रहता हूँ। ०८.०८.१९७९

455. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरणा देते रहते हैं, प्रेरणा का जो द्यौतक है प्रेरणा की जो मानवीय तरंगें हैं, वह मानव के हृदय को छूती रहती हैं। हमारे हृदय को भी छूती रहती हैं, अथवा स्पर्श करती हैं। प्रेरणा क्या, यज्ञ गृहे वृत देवा मानो देखो, याग के सम्बन्ध में अपना कोई विचार प्रकट करें। ०४.०९.१९७९

456. याग से वायुमण्डल शोधन

आज जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। पूज्यपाद वहाँ वेदों का याग हो रहा था, होता जन अपनी उद्गमता से, उदारता से आहुति प्रदान कर रहे थे। मेरा हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा था। मेरा अन्तरात्मा कैसा प्रसन्न हो रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं ब्रह्मा की स्थली पर विराजमान हूँ। उसी प्रकार जहाँ शुद्ध हृदय से संकल्प से अपवाद को त्याग करके और पति-पत्नी गम्भीर हो करके गम्भीर मुद्रा में प्रवेश करके, आत्मीयता से याग करते तो सौभाग्य की ही चर्चा है। वह तो सौभाग्य ही सौभाग्य है। तो हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और याग जैसे उत्तम कर्मों को रचाते रहें क्योंकि इसमें वायुमण्डल शोधन होता है। इससे तुम्हारा विमान बन करके अन्तरिक्ष को चला जाता है। वह स्वाहा के साथ में तुम्हारा यज्ञशाला का, यज्ञमान का विमान है, और विमान यह द्यु लोक को चला जाता है। इसके विज्ञान की चर्चाएं, तो मेरे प्रभु मेरे पूज्यपाद बारम्बार, आज भी प्रगट कर रहे हैं। इससे पूर्व काल में भी कर रहे थे। इसी प्रकार करते रहते हैं, विचार देते रहते हैं। मैं भी उन विचारों की कुछ टिप्पणियां करने चला जाता है। ०४.०९.१९७९

457. महानन्द जी की प्रेरणा व प्रार्थना

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं। जहाँ यह प्रेरणा आती रहती है वेद की यह प्रेरणामयी आभा मुझे बाध्य करती रहती है। तो आज मैं तुम्हें एक ऐसी विवेचना में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ आज का हमारा वेदमन्त्र ममतामयी की याचना कर रहा था, ममतामयी की प्रेरणा दे रहा था। हे मां! तू सरस्वती! बन करके तू हमारे कण्ठ को सजातीय बना देती है। हमारा कण्ठ, हे मां सरस्वती! तेरे ही, आभा में ओत-प्रोत जब हो जाता है, सत्व, सत्त् में ही तो वह सरस्वती बना करके कण्ठ का उज्ज्वल बना देती है। मानव को ख्याति-मयी प्रवीण बना देती है और यह उच्चारण करता है। मानव कि अमुक प्राणी के कण्ठ में सरस्वती वास कर रही है। २८.०९.१९७९

458. महानन्द जी के प्रश्न

मेरे प्यारे महानन्द जी नाना प्रकार के प्रश्न करते रहते हैं, परन्तु उनकी विचारधाराओं में ऐसी विडम्बना तथा एक ऐसी महत्ता रहती है, जिसके ऊपर हम परम्परा से विचार-विनिमय करते चले आए हैं।

प्रेरणाओं से उद्बोधन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषिमण्डल और भद्र समाज! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव याग के सम्बन्ध में अपनी कुछ विवेचना प्रकट कर रहे थे, क्योंकि मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ अपनी प्रेरणाएं दीं। उन्हीं प्रेरणाओं के आधार पर मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपना कुछ संकेत दिया। परन्तु संकेत का परिणाम यह हुआ कि जितना ज्ञान और विज्ञान ऋषि-मुनियों के मस्तिष्क में नृत्य कर रहा था अथवा वह जो प्रवाह परंपरा से बहता रहा है, उसी प्रवाह को मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट किया। परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ वाक्य प्रकट कराने के लिए आया हूँ अपना विचार देने के लिए आया हूँ। १७.०२.१९८०

459. जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों से मानव का मिलन

जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों से मानव का मिलन होता रहता है। हे यज्ञमान! मेरे जीवन की सदैव यह कल्पना रहती है, मैं यह कामना करता रहता हूँ, कि कल्पना ही नहीं, कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरे जीवन में एक महत्ता होनी चाहिए, क्योंकि यज्ञशाला में यज्ञमान ही एक ऐसा होता है जिसकी वाणी को होतागण शोधन करते हैं। उसकी वाणी का शोधन होता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव समय-समय पर प्रकट कराते रहते हैं, वाक्यों का विश्लेषण करते रहते हैं। यज्ञमान का रथ बन करके द्यो लोक को जाता है। २३.०२.१९८०

460. यज्ञ से पुत्र प्राप्ति

वेद में मन्त्र आता है, कि यज्ञ कर्म करने से पुत्र उत्पन्न होते हैं, तो उसके ऊपर अनुसन्धान होने लगा। अनुसन्धान होने के पश्चात मुझे स्मरण है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो यह वर्णन कराया, परन्तु मुझे यह स्मरण है कि पुत्र का जन्म बारह वर्षाणि गतम ब्रह्माणि कृतोः त्रि-वर्षों का अभ्यास करने से, यज्ञ करने से, यज्ञोमय सन्तान

का जन्म होता है। परिणाम क्या? कि आज मैं तुम्हें ऊर्ध्वा में ले जाना नहीं चाहता हूँ। मैं इस सम्बन्ध में उच्चारण करने नहीं आया हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराने के लिए आया हूँ, किस प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा से रहा है। २३.०२.१९८०

461. गुरुदेव के अनुष्ठान

मुझे स्मरण है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब हमें वेदों का अध्ययन कराते रहे, तो वेद-मन्त्रों को ही दृष्टिपात करते रहे और बारह-बारह वर्ष के उन्होंने लगभग बारह अनुष्ठान किए। तो नेत्रों में दिव्यता आ गयी। नेत्रों में ज्योति आ गई। वह रात्रिकाल में इन तारा-मण्डलों की माला बना लेते थे। माला बना करके इसको धारण करते रहे। माला को धारण करके जो वेद का मन्त्र कहता है हम उस सूत्र की कल्पना करते हैं जिस सूत्र में सर्वत्र ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। जिस सूत्र में ज्ञान और विज्ञान पिरोया हुआ है उस सूत्र के ऊपर हम स्थिर हो जाते हैं और स्थिर हो जाने के पश्चात जिसे योग कहते हैं हम योग में अपने को ले जाते हैं। २९.०४.१९८०

462. गुरुदेव के साथ विनोद और अनुष्ठान

मुझे स्मरण आता रहा है एक समय हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विनोद कर रहे थे और विनोद में यह उच्चारण कर रहे थे कि प्रभू! यह वाणी अग्नि का स्वरूप कैसे है? हम उस अग्नि को जानना चाहते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे पुत्र! यह वह अग्नि है, जो भयंकर अग्नि बन करके स्थूल जगत को भस्म कर देती। तुम्हें प्रतीत है, इस वाणी के कारण राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, अग्नि में चले जाते हैं। इस वाणी के कारण ग्रहों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। यह बाह्य जगत की अग्नि जो काष्ठ में रहने वाली है, इसका द्वितीय रूप यह वाणी अग्नि कहलाता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बारह वर्ष तक का अनुष्ठान किया। मुझे स्मरण आता रहता है यह अनुष्ठान उन्होंने ही नहीं किया। बाल्यकाल में जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा भगवान राम अध्ययन कर रहे थे, तो दोनों का अध्ययन, दोनों की प्रतिक्रियाएं, दोनों का विचार-विनिमय होता रहता था।

463. भगवन राम की जिज्ञासा

भगवान राम एक समय एक वेद मन्त्र का अध्ययन कर रहे थे। जब भगवान राम सायंकाल में अध्ययन कर रहे थे, और अध्ययन करते-करते वह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पहुंचे। वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि यह वेद मन्त्र क्या कहता है? मैं इस अग्नि स्वरूप वाणी को जानना चाहता हूँ। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, वत्स राम! विराजो। प्रायः वैसे तो मध्यरात्रि में तुम्हारा आना अशोभनीय है परन्तु जब तुम जिज्ञासु हो, तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मैं अवश्य दूंगा। क्योंकि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता थे, ब्रह्मनिष्ठ थे, मृत्यु को उलांघ गएं थे। भगवान राम विराजमान हो गये। ३०.०४.१९८०

464. गुरुदेव से जिज्ञासा

एक समय जब हम अध्ययन करते थे, तो कुछ गार्गी गोत्र के जिज्ञासु और कुछ अंगीरस गोत्रके जिज्ञासु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पहुंचे और उन्होंने कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि घ्राण इन्द्रिय के द्वारा हम मृत्यु को कैसे लांघ सकते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा-शान्त। वे शान्त विद्यमान हो गए। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यह जिज्ञासा तुम्हे कैसे उत्पन्न हुई, यह पिपासा कैसे जागरूक हुई है? जिज्ञासुओं ने कहा-प्रभु! हम बहुत समय से अभ्यास कर रहे हैं, बहुत समय हो गया है अध्ययन करते हुए, परन्तु एक ही वृत्तियों में आकर हम ग्रसित हो गए हैं, हम उसे जान नहीं पा रहे हैं कि घ्राण में आकर हम मृत्यु की आभा को अपने से दूर चाहते है।

गुरुदेव ने कहा कि तुमने किसी काल में शीतली प्राणायाम किया है? उन्होंने कहा-हमने किया है। परन्तु शीतली प्राणायाम का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है। गुरुदेव ने कहा कि तुमने किसी काल में अग्नि प्राणायाम किया है। जिज्ञासु बोले कि महाराज! किया है, उसका समन्वय अग्नि से होता है। उन्होंने कहा तुमने किसी काल में धनुर्प्राणायाम किया है। जिज्ञासुओं ने कहा महाराज! किया है, उस धनु प्राणायाम का सम्बन्ध लक्ष्य से होता है। गुरुदेव ने कहा कि तुमने किसी काल में संकल्प प्राणायाम किया है अथवा नहीं। जिज्ञासुओं ने कहा नहीं किया।

465. प्राणायाम

हमारे यहाँ कितने ही प्रकार के प्राणायाम होते हैं एक सूर्य प्राणायाम होता है, एक चन्द्र प्राणायाम होता है, एक शीतली प्राणायाम होता है, एक भस्त्रिका प्राणायाम होता है और एक प्राणायाम होता है, जो संकल्प मात्र होता है। इसके सम्बन्ध में मैं आज बहुत पुरातन काल की वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अभ्यास करते रहे। तो इन श्रेष्ठ प्राण का, प्राणायाम का वायुमण्डल से जो सम्बन्ध है और वायुमण्डल में जो परमाणु गृहीत हो रहे हैं, उस प्राणायाम का सम्बन्ध आहार से होता है, क्योंकि आन्तरिक परमाणु उसी प्रकार के बनाने होते हैं, तो बाह्य-जगत के जो परमाणु होते हैं, उससे उनका समन्वय होता है। ०२.०५.१९८०

466. पीपल का पञ्चांग

मुझे स्मरण आता रहता है, पूज्यपाद गुरुदेव ने उन जिज्ञासुओं को पीपल का पञ्चांग पान कराया। पीपल एक वृक्ष है, उसकी पाँचों वस्तुओं को ले करके जल के द्वारा अग्नि में तपाया जाता है। उसको पान करने से मानव के हृदय की शुद्धता हो जाती है। मानव का हृदय शुद्ध और पवित्र जब बन जाता है। उस काल में, वे साधक, वे जिज्ञासु के हृदय की ग्रन्थियाँ स्पष्ट हो जाती हैं और हृदय की ग्रन्थियाँ, जिस काल में स्पष्ट हुई, उसी काल में उसे वायुमण्डल का ज्ञान हो जाता है और वह मृत्यु अन्धकार से दूर होने लगता है, अन्धकार नहीं रहने पाता।

467. साधना

मुझे स्मरण है यहाँ ऐसे-ऐसे ऋषि हुए, जिन्होंने १००-१०० वर्ष प्राणों को जहाँ का तहां स्थिर रखते हुए पार हो गये। परमाणुवाद को न जाना है, न आना है, एक जड़वत उसी में, अपने में रत्त हो गये। तो यह मैं तुम्हें साधकों की चर्चा करता चला गया। साधकों की चर्चाएं, साधक क्या करते हैं, साधना क्या है? साधना है

कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में ला करके दोनों को अन्तर्मुखी, अन्तर्हृदय में शांत करना साधना कहलाती है। ०२.०५.१९८०

468. स्मृति

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मुझे स्मरण आता रहता है कि यह संसार परम्परागतों से चला आ रहा है। लाखों वर्ष हो गए हैं इस संसार को दृष्टिपात करते हुए। १५.०८.१९८१

469. वायुमण्डल के परमाणुओं से विनाश का बोध

मैंने बहुत पुरातन काल में पूज्यपाद गुरुदेव को कहा है कि यह संसार अग्नि के मुख में जा रहा है। अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। बहुत सूक्ष्म समय रह रहा है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यही कहा और यह क्यों कहता रहता हूँ? क्योंकि वायु-मण्डल में जो एक वायु चल रही है, अन्तरिक्ष के अन्दर जो परमाणु गति कर रहे हैं, इनकी दशा एक विशिष्ट बनती जा रही है। १५.०८.१९८१

470. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी बारम्बार यागों के सम्बन्ध में नाना विचार और प्रेरणा देते रहते हैं। परन्तु जितना भी याग कर्म है वह आत्मा का भोजन है। परन्तु जितना अयाग है वह आत्मा को अपने में हीनता को पहुंचाने वाला है। हीनता को प्राप्त होता रहता है। २४.०८.१९८१

471. ब्रह्मा जी का रावण को उद्बोधन

राजा रावण का बाल्यकाल था और बाल्यकाल में ब्रह्माजी ने उनको शिक्षा दी थी। ब्रह्माजी के चरणों में विद्यमान हैं। प्रातःकाल का समय था। प्रातःकाल के समय पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा, इनका बाल्यकाल का नाम वरुण था। बाल वरुण ने कहा कि हे भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि हम आपके चरणों की जो वन्दना कर रहे हैं, उसके मूल में क्या है? बाल्यकाल था। आचार्य ने कहा, हे बाल्य! तुम मेरे चरणों में जीवन चाहते हो। क्योंकि संसार में माता-पिता एक बाल्य को जन्म देते हैं परन्तु जीवन गुरु देता है। जीवन आचार्य देता है और संसार में जन्म की मृत्यु होती है। जीवन का प्रकाश होता है। जीवन की मृत्यु नहीं होती है। इसीलिए प्रत्येक मानव जीवन की इच्छा करता रहता है। तो इसीलिए हे बाल्य! तुम जो मेरे समीप हो, वह केवल इसलिए कि तुम जीवन चाहते हो, मृत्यु नहीं चाहते। जन्म की जैसे मृत्यु होती है क्योंकि जन्म और मृत्यु जीवन के दो छोर हैं। इसीलिए मानव को जन्म के ऊपर विचार विनिमय नहीं करना चाहिए। विचार-विनिमय करना चाहिए कि हम संसार में जीवन चाहते हैं और जीवन किसे कहते हैं? जीवन उस प्राणी का सफल होता है, महान होता है, जिस प्राणी की अन्तरात्मा में सदैव प्रसन्नता रहती है। और प्रसन्नता कहाँ रहती है? प्रसन्नता वहाँ रहती है जहाँ ओज होता है, जहाँ तेज होता है। जहाँ ब्रह्मचर्य होता है। जो प्राणी विनाश के क्षेत्र में रहता है, वह आनन्द और सुख को प्राप्त करने वाला कदापि नहीं होगा। मृत्यु के आँगन में जा रहा है। वह मृत्यु के क्षेत्र में रमण करना चाह रहा है। इसीलिए मेरे आचार्यों ने बहुत परम्परागतों से बहुत-सी वार्त्ताएं प्रकट की हैं। ब्रह्मा ने कहा रावण को हे रावण! विनाश की मृत्यु होती है, परन्तु ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाला जीवन को प्राप्त होता है। जीवन की मृत्यु नहीं होती, क्योंकि जीवन को पिपासा में प्राणी लगा रहता है। आनन्द को प्राप्त करने में लगा रहता है। इसीलिए हे बाल्य!! तुम मेरे समीप विद्यमान हो। २४.०८.१९८१

472. भगवान कृष्ण का जीवन व अशुद्धवाद का शोधन

हमारे यहाँ पुरातन के वैज्ञानिकों में, एक समय भगवान कृष्ण से अर्जुन ने कहा था। एक समय वह एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे, भगवान कृष्ण अपनी विज्ञानशाला में। अर्जुन ने कहा कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो परमाणुओं में अशुद्धवाद होता है इसके निवारण के लिए, आप क्या कर सकते हैं? भगवान कृष्ण ने कहा हे अर्जुन! यदि परमाणुओं का दुष्प्रहार होने लगेगा, तो मैं उसके पश्चात याग करूंगा। नाना साकल्य एकत्रित करके घृत एक ऐसी वस्तु है, जिसे हम पशु याग कहते हैं। पशु याग क्यों कहते हैं? क्योंकि पशु से घृत आता है और उस घृत के द्वारा जो याग करते हैं अग्निष्टाम, अग्नि में वह प्रवेश करते हैं वह परमाणुवाद को उत्पन्न करते हैं और सूक्ष्म बनाता हुआ, वायुमण्डल में प्रवेश करके अशुद्धता को निगलते चले जाते हैं, उनका सम्बन्ध द्यौ लोक से रहता है। तो याग कर्म जहाँ इस प्रकार का ऊर्ध्वा गति में ले जाने वाला है, हे यज्ञमान! तेरे आहार और व्यवहार की सामग्री भी उसके अनुसार होनी चाहिए। यदि तेरे आहार और व्यवहार में अशुद्धवाद आ गया, तो याग की परम्परा, याग की जो धारा है, वह तेरे आत्मायिता की जो शान्ति है, उसे निगलती चली जाएगी और तेरे हृदय में एक ही उज्ज्वल अग्नि प्रदीप्त हो सकती है। वह तेरे हृदय को अपने में धारण करती, तेरे हृदय को अशान्त बनाने का मूल कारण बन सकती है। २४.०८.१९८१

473. ब्रह्मरन्ध्र से सोलह संस्कार

जब आदि ब्रह्मा हुए तो ब्रह्मा जी के द्वारा भगवान शिव पहुंचे, और महाराजा शिव ने यह आराधना की कि प्रभु! आप षोडश संस्कारों का निकास कीजिए। तो महाराजा ब्रह्मा ने कहा कि मैं इसको नहीं निकास सकता। उन्होंने कहा-तो मैं नृत्य करता हूँ और मैं नृत्य करता हुआ उसके पश्चात तुम उसको जानने की इच्छा करो। भगवान शिव ने उस समय नटवर बनकर के, उन्होंने दण्डवत नृत्य किया। दण्डवत जब नृत्य किया तो उनके यहाँ, एक उनकी भुजाओं में एक गति थी। किस प्रकार की एक अभ्राहत गति थी, परन्तु जो गति थी, वह गति ब्रह्मा ने जान ली और ब्रह्मा ने उस गति को जानने के पश्चात ब्रह्मा समाधिष्ट हो गए, और समाधिष्ट होकर के यहाँ वह गति आभा में रमण करने लगी। तो ब्रह्मा जी ने एक ब्रह्मरन्ध्र के निचले भाग में कुछ नाड़ियों में गति हुई और वह गति सोलह नाड़ियाँ होती हैं, जो एक आभा में रमण करती हैं। परन्तु उनमें जो गति हुई जैसे समाधिष्ठों में प्राणायाम करने वाले की नासिका के ऊपरले भाग में पिंगला, इंगला, सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ अपनी गति करने लगती हैं और जब ब्रह्मरन्ध्र में एक हो करके, ये त्रिवेणी बन करके जब यह गति करती हैं, तो एक-एक कृतिका होती है और वह कृतिका वह जब गति करती है, तो जो सोलह नाड़ियाँ हैं, उनमें गति हो जाती है और गति होने के पश्चात, एक-एक नाड़ी में से, एक-एक शब्द उत्पन्न होता है, जिसको योगीजन जानते हैं। वह ब्रह्मा ने लेखनियाँ बद्ध कीं। और बद्ध करने के पश्चात उस अनुभव को ले करके सोलह संस्कार ब्रह्मरन्ध्र से उत्पन्न होते

हैं। १२.०९.१९८१

474. प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी भिन्न-भिन्न प्रकार की हमें प्रेरणा देते रहते हैं। आज उनकी प्रेरणा है कि याग के सम्बन्ध में कुछ अपना उद्गार प्रकट किया जाए। ३०.०९.१९८१

475. गुरुदेव का कजली वनों वाला काल

पूज्यपाद गुरुदेव का तो वह काल था, जिस समय कजली वनों से लाया जाता था। परन्तु वह समय नहीं रहा। मानव का समय परिवर्तित होता रहता है। समय की परिवर्तिता मानव के जीवन का परिवर्तन कर देती है और मानव की दशा द्वितीय बन जाती है।

476. गुरुदेव द्वारा अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग

मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ एक याग कराया। वह याग क्या था? वह वृष्टि याग था। जब यह चर्चाएं हुई कि वृष्टि नहीं हो रही है, अकाल हो गया है। पृथ्वी विष उगल रही है और सूर्य अपने तेज से इस पृथ्वी में अन्नाद को दग्ध कर रहा है और पृथ्वी के विष को पान करने वाला, सूर्य अपने को अपने में धारण कर रहा है, उस समय ऋषि-मुनियों का एक समूह एकत्रित हुआ और उस समूह में यह चर्चाएं हुईं, कि कजली वनों से ऋषि-मुनियों को लाया जाए और अमृत की वृष्टि करानी चाहिए। उस समय ऋषि-मुनियों ने यही कहा कि महर्षि शृङ्गी जी को लाया जाए और उनके द्वारा याग होना चाहिए। ३०.०९.१९८१

मेरे पूज्यपाद का वह जीवन कितना महत्वदायक था? एक सौ अड़सठ वर्ष का उस समय अग्रीत चल रहा था। तपस्या में तल्लीन, अध्ययन, संसार की आभाओं का ज्ञान नहीं होता था। उस समय राजा ने ऋषि-मुनियों से प्रार्थना की कि तपस्वी को कजली वनों से लाया गया और लाने के पश्चात याग का आयोजन किया गया और मेरे पूज्यपाद यह कहा करे हैं कि आत्मा का बल सर्वश्रेष्ठ बल कहलाता है। आत्मा में जो बलिष्ठता है, वह कोई अवृताम नहीं। शरीर की बलिष्ठता भी है, परन्तु आत्मा सर्वश्रेष्ठ माना गया। ३०.०९.१९८१

477. अश्वपति के यहाँ वृष्टियाग

पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रकट कराया मुझे, कि यह जो आधुनिक भौतिक विज्ञान है यह बुद्धिजीवियों की आत्मा को हीन बना देता है। आत्मा में हीनता आ जाती है। यह याग हुआ। उस याग में ज्ञानी और वैज्ञानिक सब विद्यमान हुए और विद्यमान हो करके अश्वपति के यहाँ याग हुआ। ३०.०९.१९८१

478. व्रत का अभिप्राय

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय मुझे प्रकट कराया, कि एकादश व्रत का नाम अन्नादाम त्यागम मैंने अपने पुत्र से कहा-नहीं पुत्र!अन्न को त्यागने का नाम व्रत नहीं माना गया है। व्रत कहते हैं संकल्प को, व्रत कहते हैं इन्द्रियों को संयम करना चाहिए। ०१.१०.१९८१

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल!अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृत की वृष्टि कर रहे थे। इनका वाक्य चल रहा था, कि याग वैज्ञानिक कर रहा है, याग माता कर रही है, याग राष्ट्र में होता है। परन्तु मानव का जीवन भी एक याग है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परम्परागतों से ही, प्रकट कराता रहता हूँ, कि हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! यह जो वर्तमान का काल है, यह बड़ा विचित्र काल है जहाँ मानव-मानव का हनन करने के लिए तत्पर है। आज जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, मुझे प्रसन्नताएं होती रहती हैं, जब प्रायः यागों का चयन होता रहता है। हमारी जहाँ आकाशवाणी जा रही है वहाँ एक याग की रचना अथवा एक याग की सम्पन्नता और याग में एक प्रतिभा कृति कहलाई।

479. राजा जनक के यहाँ गुरुदेव द्वारा वृष्टि याग

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बहुत परम्परागतों की वार्त्ता है, एक समय राजा जनक के यहाँ याग हुआ था। उस याग को वृष्टि याग कहा गया, और राजा जनक के यहाँ, जब याग हुआ तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को कजली वनों में से लाया गया और महामन्त्रों के उच्चारण के बाद वृष्टि हो गई।

480. आधुनिक काल का पतित काल

परन्तु समय-समय का एक गायन है, समय-समय की वार्त्ताएं हैं। आज मैं उन कालों में जाना नहीं चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आज का राष्ट्र, आधुनिक जगत का मानव याग जैसे कर्म को पाखण्ड कहता है। यह क्यों कह रहा है? क्योंकि मानव-मानव का शत्रु बन रहा है। मानव का आहार और व्यवहार अशुद्ध हो गया है। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! जहाँ राष्ट्र यह कहता था, कि प्राणियों की रक्षा की जाए, जहाँ राष्ट्र कहता था, अहिंसा परमोधर्मः को ले करके याग किए जाएं, वहाँ आज का राष्ट्र कहता है कि प्राणियों का पालन किया जाए। पालन करके भक्षण किया जाए, परन्तु आज का राष्ट्रवाद, हिंसावाद का प्रतीक बन गया है। जहाँ राष्ट्र पालन करने को कहता है, वहाँ भक्षण करने को कह रहा है। अरे भोले राजन्! जहाँ तू पालन करता है, वहाँ भक्षण की वार्त्ता आती है, तो कहाँ चला गया, तेरा वह राष्ट्रवाद कहाँ? वह मनु-सिद्धांत चला गया? कहाँ भगवान राम का यह राष्ट्र चला गया।

481. गुरुदेव का आशीर्वाद

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज का आधुनिक काल का जो अपने को शिक्षित समाज कहता है, वह कहता है मैं शिक्षा में पूर्ण हूँ, परन्तु वह अहिंसा का पालन न करता हुआ हिंसक बन रहा है। तो प्रभु! मूझे तो ऐसा प्रतीत होता है, पूज्यपाद कि थोड़ा समय रह रहा है, कि यहाँ अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है। परन्तु आज पूज्यपाद गुरुदेव, मैं यज्ञमान को अपने उद्गार प्रकट करने आया हूँ, कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन की धाराएं महान बनी रहें और गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। यह जो याग जैसा कर्म है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो कई काल में प्रकट कराया। यह याज्ञिक कर्म कहलाता है, जिससे आत्मा में पवित्रता आती है और लक्ष्मी-वसुधा मां का पूजन होता है। लक्ष्मी का पूजन होता है और उस लक्ष्मी का पूजन हो करके गृह पवित्र बनते हैं। जिन गृहों में लक्ष्मी

का पूजन होता है अथवा वह देवताओं को अर्पित की जाती है लक्ष्मी। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते हैं वह गृह सौभाग्यशाली होता है। वह गृह महान कहलाते हैं, क्योंकि द्रव्य का सदैव सदुपयोग होना चाहिए। जिन गृहों में द्रव्य का, लक्ष्मी माता का तिरस्कार होता है, एक समय वह आता है कि माता उस गृह को त्याग देती है। वह लक्ष्मी से दूर हो जाता है। लक्ष्मी उस प्राणी से दूरी हो जाती है। तो परिणाम हमारे यह वाक्य उच्चारण करने का यह है, कि हम यज्ञमान को सदैव यह अपनी प्रेरणा देते रहते हैं कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और गृह में सदुपयोग होता रहे लक्ष्मी का।

482. इकत्तर प्रकार के कर्म-काण्डों के ज्ञाता गुरुदेव

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो याज्ञिक कहलाए गए है। इकत्तर प्रकार के कर्म-काण्डों के याग को जानते हैं। कजली वनों से लाया जाता है याग के लिए। जैसे यज्ञ जन्मों में ओत-प्रोत रहने वाला हो। परन्तु वृष्टि याग, अग्निष्टम याग, पुत्रेष्टि याग, ब्रह्मयाग, विष्णु याग, रुद्र याग, हिम याग, देवी याग, सम्पत्ति याग, श्रभ्कान्त याग, नाना प्रकार के यागों का वर्णन वैदिक साहित्य में आया। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा ऋषि आते, उन यागों का चयन करा-करा के ले जाते। परिणाम क्या? आज मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता हूँ। ०३.१०.१९८१

483. गुरुदेव की यज्ञशाला में कुम्भकरण

एक समय जब यागों का हम किसी काल में जब अनुसन्धान कर रहे थे, तो उस समय महाराजा कुम्भकरण एक समय उस यज्ञशाला में पधारे थे, हम उस समय में सप्तकोण की यज्ञशाला का निर्माण करते रहते थे, उनमें याग करते रहते थे। कुछ समय के पश्चात उन्होंने याग के कर्मकाण्डों को जानने का प्रयास किया था। उस समय हमने उनके आहार और व्यवहार को प्रायः श्रवण किया था। उनका आहार और व्यवहार बड़ा पवित्र था। उनकी पत्नी, एक समय यज्ञशाला में पधारी और जिस भी काल में यज्ञशाला के उत्सव या नृत्य होते रहते थे, तो उस काल में वे यज्ञ में विराजमान हो करके प्रभु की स्तुति, नमस्कार अपनी आभा में सदैव रमण करती रहती थी। १८.०१.१९८२

484. नवासी प्रकार के यागों के कर्मकाण्डों के ज्ञाता गुरुदेव

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करता हूँ कि संसार जिस काल की, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, के चर्चा करते रहते हैं और हम सदैव अपने पूज्यपाद गुरुदेव के विपरीत चर्चाएं करते रहे हैं। परन्तु ये सान्त्वना की चर्चाएं करते रहते हैं, और हम क्रान्तिमयी चर्चाएं करते रहते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई कालों में यागों की चर्चाएं कीं। आज भी जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहाँ भी मैं यागों का चयन कर रहा था। परन्तु जहाँ तक कर्मकाण्ड का सम्बन्ध है, कर्मकाण्ड के ऊपर, यागों के ऊपर, बहुत-सी आपत्ति चलती रही है। यागों के कर्मकाण्ड, कई प्रकार के होते रहे हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नवासी प्रकार के यागों के कर्मकाण्डों की विवेचना होती रहती थी। अश्वमेध याग का कर्मकाण्ड भिन्न है, गो मेध याग का कर्मकाण्ड भिन्न है और पुत्रेष्टि याग का कर्मकाण्ड भिन्न है। ऋषि-मुनि परम्परागतों से ही, जहाँ वे विज्ञान के ऊपर चर्चाएं करते रहे हैं, वहाँ वे यागों के कर्मकाण्डों में भी संलग्न रहे हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नाना यागों के ऊपर अन्वेषण करते रहे हैं। २०.११.१९८१

485. गुरुदेव अश्वपति के राष्ट्र में

मुझे स्मरण है एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि चलो, आज हम अश्वपति के राष्ट्र में गमन करते हैं। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और हम कुछ और महापुरुष थे। परन्तु राजा ने जब अन्न इत्यादि के लिए उच्चारण किया, तो ऋषियों ने कहा कि राजन्! हम तुम्हारा अन्न ग्रहण नहीं करेंगे, क्योंकि तुम्हारा अन्न राजा-महाराजाओं का जो अन्न है, वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ होता हैं। परन्तु राजा ने नतमस्तक हो करके, चरणों में ओत-प्रोत हो करके कहा कि प्रभु मेरा अन्न आप योगाभ्यास से, योग से मेरे अन्न को दृष्टिपात करके आप पान कीजिए, मेरा अन्न दूषित नहीं है। जब मैं आज के ऋषि-मुनियों के समाज को दृष्टिपात करता हूँ, यदि राजा भोजन के लिए उच्चारण कर देता है, तो महात्मा अपने जीवन को धन्य स्वीकार करने गता हैं, परन्तु कहाँ ऋषिजन ऐसे थे कि राजा के द्वारा स्पष्ट उच्चारण करते थे। कहाँ वह आधुनिक काल का विशेषकर जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, इस राष्ट्र का साधु समाज स्वीकार करता है कि मेरे द्वारा तो अधिराज आते हैं, मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ वह बलवती बन जाता है। आज जब मैं इन वाक्यों पर जाता हूँ तो मैं यह कहा करता हूँ कि यह ब्रह्म विद्या का अपमान है। यह ब्रह्म विद्या के ऊपर नाना प्रकार की त्रुटियां हैं। इसको हमें स्वीकार नहीं करना चाहिए। मैं आज इन वाक्यों में जाना नहीं चाहता। २०.११.१९८१

486. ब्रह्मा जी द्वारा कर्मकाण्ड

ब्रह्मा ने कर्मकाण्ड की उपासना करते हुए और आदि ब्रह्मचारियों को यह शिक्षा दी और उन्होंने कहा-तुम्हारी कर्मकाण्ड में विशेष वृत्ति हो, तो तुम कर्मकाण्डी बनो। प्रभु को एक-एक कण-कण में पिरोया हुआ स्वीकार करो। , कहाँ, कैसे, मानव विद्यमान होता है, उसको कर्मकाण्ड कहते है। जैसे एक यज्ञशाला में, अग्नि का चयन कर रहा है। परन्तु अग्नि की परिक्रमा कर रहा है। जोन से, विध से, आभा में होनी चाहिए। यह कर्मकाण्ड का विषय है। यज्ञमान पश्चिम दिशा में विद्यमान होता है, क्योंकि वह कुबेर है। वह वरुण का अधिपति कहलाता है वह यज्ञमान है, उद्गाता, कहा? उत्तरायण में रहता है। उदगान गा रहा है, सोम रस में तन्मय हो कर। वह उत्तरायण में रहता है और पूर्व दशा में सम्भवति ब्रह्मण अध्वर्यु रहता है। अध्वर्यु क्यों रहता है? क्योंकि वह सबको प्रकाश देता है। त्रिवत कहलाता है। त्रिनेत्रों वाला कहलाता है। क्योंकि त्रिवर्धा में ही यह जगत विद्यमान रहता है। दक्षिणायन में ब्रह्मा रहता है। ब्रह्मा का अभिप्रायः क्या है? क्या, सर्वत्र विद्युत का जितना कोष है, वह सब ब्रह्मवर्चोसि कहलाता है। जहाँ जिसका जैसा स्थान हो, उसको वहाँ विद्यमान होने का नाम कर्मकाण्ड कहलाता है। यह कर्मकाण्ड की प्रतिभा, कहीं-कहीं ऐसा है, जब अश्वमेध याग होते हैं। तो कहीं ब्राह्मण, ब्रह्मा राजा को ऊर्ध्वा स्थान दे करके, उसका राज्याभिषेक किया जाता है। वह अश्वमेध याग में आता है।

487. विशेष विज्ञान

यह कर्मकाण्ड की आभा प्रगट कराते हुए, ब्रह्मा ने कहा-हे ब्रह्मचारियों! तुम कर्मकाण्डी बनों। वह कर्मकाण्ड के ऊपर अध्ययन करने लगे, कि वह सुनीति ब्रह्मचारी, उनके द्वारा, उनके चरणों में ओत-प्रोत हो, उनके अध्ययन करने का विषय, केवल त्रेतवाद था। जिसे हम विज्ञानकाण्ड कहते है। विज्ञान कहते है। यो तो सर्वत्र में विज्ञान विद्यमान है। परन्तु ज्ञान और विज्ञान का ज्ञान होना उसकी प्रतिभा, उसकी प्रतिभाषिता में रमण करने का नाम विज्ञान कहलाता है। आज जब हम विज्ञान में रमण करते है, तो ऐसी, ऐसी तरंगों को, हम उद्बुद्ध करना, हम दृष्टिपात करते है। जिन तरंगों को हम, इस संसार की, प्रतिभा में दृष्टिपात करने लगते है। जैसे हमारे यहाँ वैज्ञानिक जनों ने, नाना सूर्या की किरणों को, एकत्रित किया, ब्रह्मा जी ने यही वाक् कहा-हे ब्रह्मचारी! संसार में वो वैज्ञानिक, विशेषतम होता है, जो सूर्य की किरणों के द्वारा, वाहनों को गति देता है। परन्तु जो पृथ्वी के, खनिज के द्वारा वाहन को गति देता है वह उस वायु मण्डल को अशुद्ध करता है। यह वैज्ञानिक तथ्यों में प्राप्त होते है। परन्तु वायुमण्डल में एक त्रुशुक नाम की, वायु गति करती है। वह इतनी शक्तिशाली रहती है, उसका द्यौ से सम्बन्ध रहता है। उस वायु को, यन्त्रों में लाने का प्रयास करते है। और यन्त्रों में ला करके उसके द्वारा वाहन को गति देते है। वह विशेषकर विज्ञान होता है। जो महानता में रहता है। उससे मानव की बुद्धि में घृणित पना नहीं आता। उसमें मानव का चरित्र नष्ट नहीं होता। २२.०१.१९८२

488. ब्रह्मा जी के आश्रम में महर्षि पुलस्त्य, मनिचंद

ब्रह्मा जी ने महात्मा पुलस्त्य जी को निमन्त्रित किया और उन ब्रह्मचारियों के पिता मणिचन्द्र को भी निमन्त्रित किया और उनके निमन्त्रण के अनुसार, वह विद्यालय में आये, तो विद्या में ब्रह्मचारी पारायण हो गये, पुलस्त्य ऋषि महाराज बड़े प्रसन्न हुए, आचार्य के चरणों की वन्दना की, और कहा-कि धन्य है प्रभु! आप ने हमारे वंश को पुनः से महान बनाया है। परन्तु ब्रह्मा जी ने महात्मा पुलस्त्य से एक वाक् कहा-कि समय की प्रबलता इतनी विशेषकर है, यह जो तुम्हारा जेठी पुत्र है, यह पुत्र मन का विशुद्ध नहीं है। यह मन का विशुद्ध नहीं बनेगा जीवन में।

उन्होंने कहा भगवन! यह क्यों? उन्होंने एक वाक् कहा इसलिए क्योंकि यह ब्रह्मचारी ऐसा है? इसके ऊपर तुम पुनः विचार विनिमय करना। मैंने तो तुम्हें संकेत दे दिया है, इसके विचार राजसी है, और राजसी विचारों में कोई महानता नहीं है। परन्तु मेरे यहाँ तो विद्या दी जाती है, विद्याओं का प्रसार किया जाता है। अब विद्या को कौन ब्रह्मचारी, किस प्रकार उसका अध्ययन करता है, यह विषय आचार्यो का नहीं होता, यह विषय उनका होता है, जो उसको अध्ययन करता है। किस दृष्टि से अध्ययन करता है। एक वेद के, वेद का पठन-पाठन करने वाला किस दिशा में, अपने को ले जाता है। इस दिशा का आचार्य वर्णन नहीं कर सकता। वेद के पठन-पाठन करने वाला भी, ह्रासता को प्राप्त हो सकता है। परन्तु बहुत सूक्ष्म अध्ययन करने वाला भी महान बन सकता है। २२.०१.१९८२

ब्रह्मा जी ने अपना दीक्षान्त एक उपदेश होता है। वे दीक्षान्त उपदेश देने लगे, क्योंकि प्रत्येक मानव अपने में, उऋण होना चाहता है। ब्रह्मा जी अपना उपदेश दे करके, उऋण होना चाहते थे। उन्होंने उऋण होने के लिए, ब्रह्मचारियों की पंक्ति, विद्यमान है, और उन्होंने अपना दीक्षान्त उपदेश प्रारम्भ किया। हे ब्रह्मचारियो! हमारे इस विद्यालय में, परम्परागतों से ही, ब्रह्मचारियों को, शिक्षा और दीक्षा दी जाती है। दीक्षा का जो माध्यम है वह, वेद की तरंगे हैं, जो मानव प्रातःकालीन संध्या के गर्भ में जाता है, जब रात्रि और दिवस दोनों का मिलान होता है, इसी प्रकार तरंगों का और वेद की विद्या इन दोनों का समन्वय होता हुआ, ब्रह्मचारियों! तुम्हारे हृदय में वह प्रवेश करता है। उससे तुम्हारा ब्रह्मचर्यतव ऊर्ध्वा में गति करता है। क्योंकि बिना साधना के ब्रह्मचर्य की आभा को कोई मानव एकत्रित नहीं कर सकता। क्योंकि ब्रह्मचर्य को वहीं ऊंचा बना सकता है, जो साधक होता है, जो प्राण की गति के ऊपर, अपने को उसमें परिणत कर देता है, जैसे हे ब्रह्मचारियो! मैंने दिशाओं की आभा और उसका ज्ञान विज्ञान तुम्हें प्रगट कराया जैसे एक एक दिशा का देवता है, और वह देवता भी एक सूत्र का देवता है। वह भी सूत्र में पिरोएं हुए है। जैसे तुम इस देवताओं के सूत्र में, जैसे तुम्हारा जीवन देवताओं से पिरोया हुआ है। एक ही देवता का भी कोई सूत्र है।

489. जीवन का दिशाओं से सम्बन्ध

दीक्षान्त उपदेश देते हुए उन्होंने कहा कि पूर्व दिशा का देवता अग्नि है, दक्षिण दिशा का देवता इन्द्र है, और पश्चिम दिशा का देवता वरुण है और उत्तरायण का देवता सोम है और ध्रुवा का देवता विष्णु है और ऊर्ध्वा का देवता बृहस्पति है। ऐसे ही ईशान कोण का देवता सूर्य है, और दक्षिणाय का देवता अदिति है। इसी प्रकार पश्चिम दिशा की कोण का देवता मेध है और उदीची का, सोम का, देवता ज्ञान है और यह दस दिशा कहलाई जाती है। परन्तु यह जो हमारा मानवीय जीवन है, इससे इन दिशाओं का बहुत विशेष घनिष्ट सम्बन्ध रहता है, क्योंकि जब हम पूर्व में अपने जीवन को ले जाते है, तो हम प्रकाश में होते हैं। दक्षिणाय में ले जाते है, तो अन्धकार से प्रकाश में ले जाते है, तो कुबेर बनते है, और जब उत्तरायण में जाते है तो सोम, ज्ञान, विवेकी बन जाते है। इसी प्रकार ध्रुवा में जाते है तो खनिज के स्वामी बन करके, हम विष्णु को दृष्टिपात करते है। ऊर्ध्वा में जाते है तो बृहस्पति को दृष्टिपात करते है। इसलिए जब मानव इस विद्या को जान लेता है तो पाप कर्म करने का अधिकार उसे मिलता ही नहीं। क्योंकि जहाँ उसका मन जाता है वहीं देवता विद्यमान होता है। परन्तु हे ब्रह्मचारियों! इस विद्या का भी कोई, दस देवता है, दस दिशाएं है, इनका भी कोई सूत्र है। जैसे तुम्हारा जीवन इनमें पिरोया हुआ है, ऐसे ही यह भी किसी में पिरोई हुई है। जैसे इन देवताओं का, एक शरीर है, ऐसे ही यह भी किसी के परिणाम है।

ब्रह्मा ने कहा यह जो तुम्हे दृष्टिपात आ रहे है देवता, इन दिशाओं का कोई सूत्र है और जो सूत्र है वही ब्रह्म है। प्राणो वै यह चक्र चल रहा है। प्राण ही सूत्र है। एक-एक परमाणु में, प्राण परिणत हो रहा है। यहाँ प्राण एक सूत्र रूप में स्वीकार किया। द्वितीय उन्होंने एक अध्याय के पश्चात दूसरा विषय उन्होंने प्रारम्भ किया, हे ब्रह्मचारियों! जैसे कर्मकाण्ड की, नाना प्रकार के यागों की चर्चा आती है। इनका भी कोई सूत्र है। जैसे यह याग किसी का शरीर है, ऐसे ही जैसे याग हमारा शरीर है, और जिसका याग शरीर बन रहा है, जो भी किसी का, शरीर है वह भी किसी का आयतन माना गया है। परन्तु जैसे यह ब्रह्माण्ड, इस संसार का है, इसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी किसी का आयतन वाला, वह ब्रह्म कहलाता है। वे परमपिता परमात्मा कहलाता है। उसका वही सूत्र बन करके संसार को अपने में पिरो रहा है।

द्वितीय उन्होंने कर्मकाण्ड की आभा को परिणत किया। जब तृतीय विषय उन्होंने प्रारम्भ किया तो उन्होंने कहा -हे ब्रह्मचारी! यह जो तुम्हें विज्ञानमय संसार दृष्टिपात आ रहा है, नाना निहारिकाओं वाला ब्रह्माण्ड है, एक-एक निहारिकाओं के लोकों की तुम गणना करने लगोगे, तो तुम्हारा जीवन ही व्यतीत हो जाएगा और अन्त में तुम मौन हो जाओगे। क्योंकि तुम्हें जहाँ मैं यह उपदेश देता हूँ, विद्यालयों में, तुमने यह सब दृष्टिपात किया, इन कक्षों में जहाँ उपदेश शाला है, वहाँ विज्ञानशाला भी है। जहाँ विज्ञानशाला है, वहाँ नाना प्रकार के यन्त्र विद्यमान है। और वह यन्त्र उन्हें लोकों की आभायें हमें दृष्टिपात आती है जब सूर्य कहाँ-कहाँ, क्या-क्या करता है, उसकी छाया, इन वैज्ञानिक यन्त्रों में आती है। लोक लोकान्तर निहारिका है, जितनी निहारिकाओं के चित्र, यन्त्र में आते है।

490. विशाल यन्त्र शाला

तुम्हें प्रतीत है यह यन्त्र कहाँ से लाए गये? महाराजा सोमकेतु दद्दड मुनि महाराज ने, अपनी विज्ञानशाला में, वैज्ञानिको को अपनी आभा प्रकट करके उन्होंने यन्त्रों को जाना और एक-एक यन्त्र में दस-दस निहारिकाओं का दिग्दर्शन होता है और एक निहारिका जिसे हम एक आकाश गंगा कहते है, उस एक आकाश गंगा के पृथ्वियों का जब गणित करने लगे, तो पृथ्वियाँ अनगणित हो गई। एक-एक निहारिका में इतनी पृथ्वियाँ है, एक-एक निहारिका में गणना नहीं कर सकते। सूर्यों की, बृहस्पति की, इसी प्रकार ध्रुव मण्डल है।

इसी प्रकार एक समय महाराजा सोमकेतु ने गणना की, तो उन्होंने जब गणना करते-करते एक ध्रुव की गणना करने लगे, ध्रुव मण्डल की, तो एक निहारिका में चार खरब के लगभग उन्होंने ध्रुवों की गणना की और अन्त में वे मौन हो गये। तो इसमें चार खरब विशेष निहारिका में ध्रुव मण्डल जैसे मण्डल है जिनमें लगभग सहस्रों सूर्य समाहित हो जाते है ऐसा मण्डल है। तो ऐसी निहारिका, सोमकेतु मुनि की यन्त्र शालाओं में दस निहारिकाओं के चित्र उन्हें दृष्टिपात आते थे। तो हम, इन निहारिकाओं के सम्बन्ध में या इन लोकों के सम्बन्ध में बहुत विचार करने से प्रतीत होता है कि अनन्त वाला, यह ब्रह्माण्ड है।

491. ब्रह्मचारी

तो ब्रह्मा जी ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! यह दीक्षान्त भाषण इसलिए दे रहा हूँ, तुम्हें, क्योंकि तुमने इस विद्या को अध्ययन किया है, इस विद्यालय में, इस विद्या को तुम सुरक्षित और विद्या का सदुपयोग करो और ब्रह्मचर्य में रह करके, अपने जीवन को व्यतीत करो। ब्रह्मचर्य की बहुत-सी मीमांसा ऋषि-मुनियों ने की है। परन्तु ब्रह्मचर्य की एक ही मीमांसा है, क्या अपने श्वास को सूत्र में पिरोने का नाम ब्रह्मचारी है। किस सूत्र में, अपने श्वास में पिरोने का नाम एक ब्रह्मचर्यवत कहलाता है। ऐसा क्यों कहा ऋषियों ने? इसलिए यन्त्रों में यह दृष्टिपात हुआ है। अब यह वेद से भी सिद्ध होता है और यह वैज्ञानिक यन्त्रों से भी सिद्ध हुआ ऋषि-मुनियों को, कि मानव का यह जो श्वास गति करता है, इस श्वास के साथ में अन्तरिक्ष में एक चित्र बनता है। एक-एक श्वास के साथ में मानव का जो श्वास है, उस मानव का, उतने आकार का एक चित्र बन करके अन्तरिक्ष में चला जाता है। २२.०१.१९८२

492. सोनक देश में त्रेतकेतु राजा

मुझे पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा से सोनक देश में त्रेतकेतु राजा के यहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यपाद गुरुदेव ने विद्यालय में किसी आचार्य के दर्शनार्थ के लिए मुझे प्रेरित किया। जब मैं सौनम राष्ट्र में त्रेतकेतु राजा के राष्ट्र में जो विद्यालय था, उसके द्वार पर पहुंचा, तो वहाँ आचार्यों से कुछ चर्चाएं होने लगी। ब्रह्मचारियों ने अपनी वार्त्ताएं प्रकट कीं। जब ब्रह्मचारियों से शारीरिक विज्ञान के ऊपर चर्चाएं हुईं तो उन्होंने प्रसन्न हो करके सर्वत्रता का परिचय दिया, कि हमारे शरीर में नाना स्तम्भ माने गए हैं। मैंने प्रश्न किया, ब्रह्मचारियो के मध्य में कि मानव के शरीर के कितने स्तम्भ होते हैं? उन्होंने चौबीस खम्भों का मुझे वर्णन कराया और उन चौबीस खम्भों में दस प्राण की आभाएं हैं और दस इन्द्रियां हैं, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार का उन्होंने वर्णन किया। जब ब्रह्मचारियों ने उसका उत्तर मुझे भली-भांति प्राप्त हो गया, तो मैं प्रसन्न हो गया। ब्रह्मचारी का चरित्र तब तक ऊचा नहीं बन सकता, जब तक उसको अपने शरीर का बोध नहीं होता, उसको अपनी इन्द्रियों का बोध नहीं होगा, कौन-कौन-सी इन्द्रिय क्या-क्या कार्य करती हैं? २९.०१.१९८२

किसकी प्रेरणा से कौन-सी इन्द्रिय अपना क्रिया-कलाप प्रारम्भ कर देती है? जब तक यह विद्यालयों में ज्ञान ब्रह्मचारियों को प्रदान नहीं करते, उनको नहीं प्राप्त होगा, तो वह चरित्रवान प्राणी नहीं बन सकता। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्यालयों से प्राप्त होता है। विद्यालय में आचार्यजनों को चाहिए, कि शरीर के सर्वत्र ज्ञान का उन्हें बोध कराएं। हमारा शरीर एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में माना गया है। जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान पत्नी सहित विद्यमान हो करके याग करते हैं, देवताओं को प्रसन्न करते हैं, देवताओं की आभा में अपने-अपने देवताओं को निहारते रहते हैं इसी प्रकार जब मैं विद्यालयों में याग होते और याग के पश्चात उन्हें उपदेश दिया जाता है, हे ब्रह्मचारियों! तुम महान और पवित्र बनने के लिए, अपने मानवीयतव को जानने के लिए और दर्शनों को जानने की इच्छा प्रकट करो। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने ब्रह्मचारियों से वार्त्ता प्रकट की, उन्होंने शारीरिक विज्ञान सब प्रकट करा दिया और किस-किस लोक से, किस-किस मण्डल से, किन-किन इन्द्रियों का समन्वय रहता है? किस काल में यह दसों प्राण बाह्य जगत और आन्तरिक जगत में क्या-क्या कार्य करते हैं? जब तक ब्रह्मचारी को यह बोध नहीं होता और वह क्रियात्मक नहीं होता, तब तक ब्रह्मचरिष्यामि हम ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर सकते।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह ज्ञान-विज्ञान कराया, क्योंकि यह सब विद्याएं वेद से प्राप्त होती हैं। परन्तु वेदों का अध्ययन, वेदों की आभाएं और क्रियात्मक जीवन होना चाहिए।

यह मैं त्रेतकेतु राजा के यहाँ दृष्टिपात करता रहा हूँ सोनम राष्ट्र में। आधुनिक जगत और वर्तमान का काल जब मुझे स्मरण आता है, तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्मुख आ करके रुदन करता रहता हूँ और यह उच्चारण करता रहता हूं कि आज जो गुरु-शिष्य परम्परा है वह कहाँ चली गई? जब मैं आधुनिक काल के विद्यालयों में प्रवेश करता हूँ, गुरुओं से यह प्रश्न करता हूँ कि शरीर के कितने स्तम्भ हैं? तो उत्तर नहीं प्राप्त होता। ब्रह्मचारियों के मध्य में जाता हूं, तो वह अपवाद कह करके यह उत्तर देते हैं कि हम नहीं जानते। परन्तु वह अपवाद में ले जाते हैं, तो इसका दोषी कौन है? यह दोषारोपण कहाँ से प्राप्त होता है? यह राष्ट्र की

परम्परा में सूक्ष्मता है। हमें विद्यालयों को ऊचा बनाना है। विद्यालयों से राष्ट्रीय प्रभुता का जन्म होता है। आचार्य राष्ट्र की आभा उत्पन्न होती है। इसके ऊपर विचार होना चाहिए।

493. महानन्द जी रेंगनी भारद्वाज के यहाँ

पुरातन काल के विज्ञान के युग में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय मुझे पूज्यपाद रेगणी भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में प्रवेश कराया। नाना प्रकार की विद्याओं को, भौतिकवाद को जानने का प्रयास किया। विज्ञान हमें निर्भयता देता है, अभय देता है कि वह भयभीत न हो, संसार में विजयी हों, परन्तु आज का विज्ञान क्या कर रहा है? समाज के आत्मबल को नष्ट कर रहा है। आज के विज्ञानवेत्ताओं के समीप जाते हैं, तो आज का जो मानवीय दर्शन है, उसके ऊपर चिन्तन न होता हुआ, उसके ऊपर मनन न होता हुआ, वह समाज को भय दे रहा है। वह बार-बार यह उच्चारण कर रहा है कि अब विश्व संग्राम होने वाला है। अब यह समाज नष्ट होने वाला है। अब प्रलय होने वाली है। जब आज का वैज्ञानिक इन वाक्यों को प्रकट करता है।

मैं मन ही मन में मग्न होता रहता हूँ, यह कहता रहता हूँ, इस मानव समाज को क्या हो गया है? आज का वह मानव कहाँ चला गया है? आज का मानव त्रास क्यों दे रहा है समाज को? आगे आने वाला जो समाज है, वह प्रभु के ऊपर आज का समाज नहीं त्याग रहा है, क्योंकि आगे आने वाला, भविष्य को जानने वाला प्रभु है और प्रभु ने इस राष्ट्र का निर्माण किया है। वह इसके भविष्य को अच्छी प्रकार जानते हैं, परन्तु मानव समाज अपने-अपने सूक्ष्म-सूक्ष्म चमत्कारों में आ करके, वह आवेश में आ करके समाज को त्रास दे रहा है। यह त्रास नहीं देना चाहिए। इस त्रास से मानव का आत्मबल समाप्त हो जाएगा। आत्मबल जब समाप्त हो जाता है, तो संसार की मृत्यु हो जाती है, यह समाज नहीं रह पाता। तो इसीलिए मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ। मैं आज गुरुदेव को यह परिचय देने आया हूँ कि समाज को, अपनी राष्ट्रीयता को ऊचा बनाते हुए, विद्यालयों को ऊचा बनाते हुए चलना है, क्योंकि विद्यालयों से ही विज्ञान का जन्म होता है। वैज्ञानिक बनते हैं, उड़ान उड़ने वाले बनते हैं।

वैज्ञानिकों को यह चाहिए, समाज को ऊचा बनाना है तो समाज को ऊर्ध्वा दशा में ले जाएं और विज्ञान का सदुपयोग होने लगे। राष्ट्र में सात्विकता आ जाए विज्ञान के द्वारा। वह कैसे आती है? जब नाना चित्रावलियों का निर्माण राष्ट्र में हो जाता है। वैज्ञानिक कर लेते हैं, परन्तु यह कोई आश्चर्य नहीं है। एक मानव का शब्द है। शब्द के साथ में चित्र है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कल उच्चारण कर रहे थे कि इतना ऊर्ध्वा में विज्ञान की जो एक यन्त्र में अपने महापुरुषों के अपने सौवें महापिता के यन्त्रों में चित्र आ जाते हैं। पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया एक रक्त के बिन्दु से, जिस मानव का रक्त का बिन्दु है उसका साक्षात्कार हो जाता है। आधुनिक विज्ञान में जाता हूँ, तो आज का वैज्ञानिक इकाई में रमण कर रहा है। परन्तु पूर्व के भारद्वाज मुनि की विज्ञानशालाएं, यहाँ महाराजा कुम्भकरण की विज्ञानशाला है, उन विज्ञानशालाओं को दृष्टिपात करके आज की विज्ञानशालाएं इकाई में रमण कर रही हैं।

पूर्व का मानव, पुरातन काल का मानव यहाँ से उड़ान उड़ता है, चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। चन्द्रमा से उड़ान उड़ी है मंगल लोकों में चले गए। नाना लोकों का भ्रमण करते रहे। परन्तु एक यन्त्र जो बहत्तर लोकों में भ्रमण करने वाला और वह पुनः पृथ्वी मण्डल पर आ जाए। आज का वैज्ञानिक के वल चन्द्रमा तक पहुंचा है। कुछ कक्षों में यन्त्र रमण कर रहे हैं, कुछ मंगल के कक्ष में रमण कर रहे हैं आज के विज्ञान में। परन्तु पूर्व का विज्ञान इतना महान रहा है कि सूर्य की परिक्रमा करने वाले यन्त्र थे और शनि की परिक्रमा करने वाला यन्त्र था।

आज का विज्ञान इस पृथ्वी के सूर्य के गर्भ में तेरह लाख पृथ्वियों को जान पाया है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तीस लाख का वर्णन किया है परन्तु आज का विज्ञान केवल शनि को प्रकाश देने के लिए पांच सूर्य कहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इसके ऊपर टिप्पणी की और यह कहा कि शनि को बहत्तर सूर्य प्रकाश देते हैं, तो आज का विज्ञान मुझे इकाई में दृष्टिपात आ रहा है परन्तु ऋषि-मुनियों की विज्ञानशालाएं इतनी महान रही हैं। आज जब हम वेद की धाराओं को नहीं अपनाना चाहते, वेद रूपी प्रकाश से यह विज्ञान उत्पन्न होता है क्योंकि वेद एक प्रकाश है। ज्ञान का नाम वेद है और वेद रूपी प्रकाश को अपनाने वाला मानव ऊची उड़ान उड़ता है। विजानमयी उड़ान उड़ने वाला है, आज का विज्ञान ब्रह्मचर्य के ऊपर बल नहीं देता। ब्रह्मचरिष्यामि के ऊपर बल नहीं देता परन्तु पूर्व का वैज्ञानिक ब्रह्मचारी रह करके उड़ान उड़ता था इसीलिए मैं यह परिचय दे रहा हूँ कि आधुनिक जगत है मैं यह मानता रहता हूँ, मैंने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट कराया। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आज का मानव अपने में बहुत दुःखित हो रहा है। आज का राष्ट्र, इस संसार का राष्ट्र अपने में बहुत दुःखित हो रहा है क्योंकि समाज को चरित्र नहीं दे रहा है। पूर्व के राजा वैज्ञानिकता को लेते हुए समाज को चरित्र देते रहे हैं। चरित्र विद्यालयों से निर्माणित होता रहता है। परन्तु आज का जो राष्ट्र है वह विद्यालयों से निषकृय ब्रह्मचारियों को जन्म दे रहा है। निष्कर्म समाज बन रहा है, ब्रह्मचर्य को नष्ट करने वाला। आज जब मैं विद्यालयों में प्रवेश करता हूँ और ब्रह्मचर्य की चर्चा करता हूँ तो उसे अपवाद कह करके, उसको विनोद में कह करके दूरी कर देते हैं। परन्तु ब्रह्मचरिष्यामि इससे मानव को बोध होता है। संसार का ज्ञान और विज्ञान इसके द्वारा आता है।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रकट कर रहा हूँ, हे गुरुदेव! यह संसार कहाँ चला गया है? विज्ञान की तरंगों में, ज्ञान की तरंगों में संसार को जहाँ जाना हे, वहाँ त्रास दिया जा रहा है। आज मैं नाना पुरुषों की भविष्यवाणियों को भी श्रवण करता रहता हूँ। भविष्यवेत्ता कहते हैं कि इतने समय संग्राम हो करके यह समाज समाप्त हो जाएगा। यह वार्त्ताएं चलती रहती हैं क्योंकि समाज को जब त्रास ही करना हुआ तो क्यों न भविष्य की वार्त्ता प्रकट करके कह दिया जाए कि यह समाज समाप्त हो जाएगा। अरे भोले प्राणियो यह समाज अपने समयज पर जाता रहेगा। प्रभु का चक्र चलता रहेगा। परन्तु तुम अपने अशुद्ध वाक्यों को प्रकट करके समाज को त्रास क्यों देते हो? इस वाक्य को कोई उच्चारण नहीं करता है कि ऐसे त्रास नहीं देना चाहिए। इससे मानव का आत्मबल समाप्त होता है। आत्म गौरव यह कहता है कि मानव को साहसी रहना चाहिए, अपने में सन्तुष्ट रहना चाहिए। समाज को सन्तुष्टि देता चला जाए। तो जहाँ यह वाक्य वेद के वाक्य कहते हैं वहाँ इस समाज को ऊचे बनने के लिए अपनी मान्यताओं के ऊपर गम्भीरता से विचार-विनिमय करना चाहिए।

जहाँ मैं शिक्षा-प्रणाली की चर्चा कर रहा था, यह राष्ट्र की सूक्ष्मता है। राष्ट्र इसके ऊपर विचार नहीं कर रहा है कि हमारा मानव, हमारी आगे आने वाली जो सन्तति है, समाज है वह कहाँ जा रहा है? यहाँ समाज का आहार और व्यवहार अशुद्ध बनता जा रहा है। दूसरे के रक्त को पान करने के लिए मानव अपने में गौरव स्वीकार करता है। जब शुद्ध आहार की चर्चा करते हैं तो कहते हैं कि वह समय तो वृद्ध हो गया है, वह समाज समाप्त होता चला गया। आज का मानव कहता हैं कि वह चन्द्रमा में चला गया है। चन्द्रमा में जाना कोई आश्चर्य नहीं। सूर्य में जाना भी कोई आश्चर्य नहीं। मंगल में जाना आश्चर्य नहीं है क्योंकि हमारे पूर्वज मंगल मण्डलों में रह-रह करके और उन्होंने शिक्षा पा करके विज्ञान को प्रसार किया परन्तु इस समाज को, मानव को चरित्र देना चाहिए। मानवीय दर्शन देना चाहिए। मानव दर्शन तब प्राप्त होता है जब विद्यालयों में आचार्य तपे हुए होते हैं। विद्यालयों में आचार्य सर्वत्र आयुर्वेद की विद्या को जानने वाले और उनके द्वारा मानवीय दर्शन होना चाहिए और उसको क्रियात्मक देना चाहिए तो यह समाज ऊचा बन सकता है।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यही कहा करता हूँ कि भगवन्! वह समय दूरी चला गया है, जब अश्वपति के कहाँ शिक्षा देते रहे। आज का समाज तो त्रासी बन गया है। आत्मा को सूक्ष्म बना रहा है, उसके बल को नष्ट कर रहा है। हम अपने विद्यालयों को, अपने गृह को अपनी पुत्रियों को महान शिक्षा देते हुए हम गृहों में सुन्दर याग करते रहें। क्योंकि शिक्षा देना भी एक महान याग है, जिससे मानव का आतमबल ऊँचा बनता है। विद्यालयों में पुत्रियों को महान बनाना, शिक्षा दिलाना, आयुर्वेद की विद्या माताओं में होनी चाहिए जिससे अपने पुत्र का निर्माण माता मल्दालसा की भांति अपने गर्भस्थल में कर सके। इस प्रकार का राष्ट्रीय नियम हो तो यह समाज पूर्व की भांति, ऊचा बन सके अन्यथा मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह कहा कि इस समाज में धीमी-धीमी अग्नि प्रचण्ड हो रही है। वह समय आने में दूरी नहीं है जब अपने हृदय की अग्नि से ही यह मानव अपने में समाप्त होता चला जाएगा। वह समय दूरी नहीं है। यह समाज धीमी-धीमी अग्नि के समुद्रों के तट पर विद्यमान हो रहा है। विचारधारा में विकृतता आ गई है। जब इस प्रकार की विचारधारा बन जाती है तो समाज में अग्निकांड प्रायः होते रहते हैं। आज का जो राष्ट्र, समाज, विद्यालय यह समाज को ऊची जगह नहीं दे सकते। विज्ञान त्रासता में परिणत हो रहा है। आज का जो यज्ञमान जिसे मैं दृष्टिपात कर रहा था, हे प्रभु! इनकी मनोकामना पूर्ण हो। उनका सौभाग्यी जीवन बना रहे। सौभाग्य अखण्डता को प्राप्त होता रहे। इसके पश्चात अब हम अपने विचारों को विराम दे रहे हैं। पूज्य महानन्द जी २०.०१.१९८२

मुझे नाना प्रकार की प्रेरणाएं प्राप्त होती रहती हैं। १२.०२.१९८२

494. महानन्द जी द्वारा संसार परिचय

पूज्यपाद गुरुदेवः-मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपनी वेदनामयी वाणी के द्वारा हमें कुछ संसार का परिचय कराया। ०४.०३.१९८२

495. गुरुदेव

मुझे स्मरण हैं जब मैं किसी काल में अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा पंहुचा, तो गुरुओं ने मुझे वर्णन कराया तुम अग्नि, तुम वाजपेयी याग करो तो उस समय मैंने वाजपेयी याग किया और वाजपेयी याग करके इन्द्रियों पर सयंम करके और नाना साकल्य एकत्रित करके कामधेनु गऊ प्राप्त हुई और कामधेनु गऊ के दुग्ध के द्वारा हम पय याग करते थे, उसको पय याग भी कहते हैं, उसको हम वाजपेयी याग भी कहते हैं, उस याग के कर्म करने से, तो हमारे मस्तिष्कों की, क्योंकि उसमें सूक्ष्म आहार अपनाकर मौन रहना और शान्ति पूर्वक प्रभु की महिमा का चिन्तन करना, जब वह याग करते थे, तो मस्तिष्क की ग्रन्थियाँ स्पष्टीकरण को प्राप्त हो गई। क्योंकि ग्रन्थियों का स्पष्टीकरण होना, स्पष्टीकरण का आ जाना ही मूर्ध्वा मुख होना है, तो इसे मूर्ध्वा कहते हैं, मूर्ध्वा का क्या अर्थ है? ग्रन्थियों का मुख स्पष्टीकरणता को प्राप्त हो करके और ब्रह्माण्ड से, उसका समन्वय हो जा जाता है। और आकुञ्चन प्रवृत्तियां समाप्त हो जाती हैं, यह जो जितने भी प्रकार के अनुष्ठान हैं, अथवा कर्म है, इनसे होता क्या है? एक मानव का हृदय प्रसन्न होता है और मानव का जितना हृदय प्रसन्न होता हैंआकुञ्चन शक्ति समाप्त हो जाती हैं, संकुचित विचारधारा नही रहती, तो जब संकुचित धारा नही रहती और संकीर्णता नही रहती, ब्रह्म और चरी के रूप को हम मूर्ध्वा बना लेते हैं, तो उस समय शरीर में कोई रूग्ण भी नही रहता। उस समय सर्वत्र आयुर्वेद भी सिमट करकेउस मूर्ध्वा मुख के द्वार पर आ जाता है। ०९.०७.१९८२

496. गुरुदेव के चरणों में गुरुदेव

वह काल मुझे स्मरण आता रहता है, जिस काल में हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत हो जाते थे, और पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न करते रहते थे, वे उत्तर देते रहते थे, गान गाते थे प्रत्येक मानव की नस नाड़ियाँ उसके साथ गति कर रही है, मन्त्रार्थ उच्चारण किया जा रहा था, मानव के मुखारबिन्दु में, जो नसों का, नाड़ियों का जो एक इन्द्र जाल की भांति, जो एक जाल का प्रदर्शन हो रहा है। प्रत्येक नस नाड़ियाँ वेदमन्त्र से गतियां करने लगती हैं, संसार में जो वेद की विद्या, इसको मन्त्र कहते हैं। संसार की कोई भी गौणिक भाषा हो, उस भाषा का जो प्रादुर्भाव से हुआ है वह देव वाणी से हुआ, और देव वाणी में ही, यह वेद भाषा निहित रहती है, जब मैं यह विचारता हूँ कि वायु मण्डल में जो तरंगों का प्रादुर्भाव हो रहा हैं, जो तरंगेंवाद गति कर रहा है, उसके आँगन में एक वेदमन्त्र कटिबद्ध हो रहा हैं। तुमने यह जान लिया, नही। परन्तु और जानो जैसे वेद ध्वनि हम उच्चारण करते है। उसके पश्चात याग में हम स्वाहा कह देते हैं। ०५.०८.१९८२

497. मगध राष्ट्र में भ्रमण

मुझे स्मरण है एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और हम दोनों मगध राष्ट्र में पहुंचे। मगध राष्ट्र में महर्षि भद्रकेतु महाराज तपस्या कर रहे थे और भद्रकेतु ऋषि महाराज को १०१ वर्ष तपस्या करते हो गएं थे। उनके आश्रम में मृगराज भी आते, सिंहराज भी आते। जो दूसरे का भक्षण करने वाला सिंह हो, जो मृग का भक्षण कर जाता हो, परन्तु वह ऋषि का विचित्र आश्रम, जहाँ सब एक पंक्ति में विद्यमान हों। ऋषि की यह एक धारणा बनी हुई थी, वह वेद ध्वनि को गाते थे। सामगान गाते थे, उनकी इतनी पवित्र ध्वनि थी और इतनी शुद्ध थी कि आत्मा से आत्मा का मिलान करने के लिए। आत्मा सब में होता है। मृगराज में भी है, सिंहराज में भी है। अहिंसा में परिणत होने वाला शब्द मानव को अहिंसा परमोधर्मी बना देता है। परन्तु ऋषि के वे विशुद्ध तपस्यामयी शब्द सिंहराज और मृगराज

एक पंक्ति में होकर के श्रवण कर रहे थे।

498. महर्षि शौनक का आश्रम

जब पूज्यपाद गुरुदेव और हम उस ऋषि के द्वार पर पहुंचे, तो ऋषि से पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रश्न किया कि हे ऋषिवर! यह आभा तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई है? तो ऋषि ने यह उत्तर दिया कि मैं भद्रकेतु ऋषि, हमारा जो गोत्र है वह अंगीरस कहलाता है। और अंगीरस गोत्र में जो मेरी प्यारी माता भद्रेशमी कहलाती है। जब मैं माता के गर्भ में था, तो माता अपने गृह को त्याग करके भयंकर कजली बन में चली गई थी। वहाँ शौनक नाम के ऋषि रहते थे। शौनक नाम के ऋषि शांत मुद्रा में थे। उनके चरणों में ओत-प्रोत होकर के वह गान गाने लगी। ऋषि ने कहा पुत्री! तू धन्य है। निर्भयता में उनका इतना विवेक जागा, कि एक समय सिंहराज जब उनके समीप आया, तो सिंहराज से प्रार्थना कर रही है माता और कह रही है हे सिंहराज! क्या तू मुझे भक्षण करना चाहता है? मेरी आयु अभी दीर्घ है, तू मुझे भक्षण नहीं कर सकता। परन्तु यदि तू मुझे भक्षण करना चाहता है, तो यह तेरी धारणा अशुद्ध है। माता एक विवेकमयी शब्दों का उच्चारण कर रही थी। निर्भय हो करके, प्रभु के मध्य में विद्यमान होकर वह तपस्विनी, गायत्री छंदों में रमण करती रही। निर्भयता की आभा में रमण करती हुई सत्य उच्चारण करना और वेद की ध्वनि में रत्त रहना। शौनक ऋषि महाराज उसको शिक्षा देते रहे। और जब वह गान गाती थी, तो मृगराज, सिंहराज पंक्तियों में ओत-प्रोत होकर के, सर्पराज उनके शब्दों को ग्रहण करते रहे हैं। उस समय माता के गर्भस्थल में, माता की निर्भयता, माता का ज्ञान मेरे अंतःकरण में अंकित होता रहा। गर्भ से पृथक् हुआ, तो माता जब लोरियाँ पान कराती रहती, तो गान गाती रहती, और शौनिक के आश्रम में बालक की पालना हुई। जब पालना हुई तो मैं बाल्यकाल में था ऋषिवर! तो मैं कजली बन में चला जाता, सिंहनी के पुत्र और पुत्रियों को लाकर के मैं उनसे विनोद करता रहा, निर्भयता का जो उपदेश है यह माता से प्राप्त होता है। यह आचार्य के चरणों में जाने से प्राप्त हुआ। उनका उच्चारण किया हुआ वाक् मेरे हृदय में अंकित हो गया और अंकित हो जाने के पश्चात मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा-कि क्या माता इतनी शिक्षा दे सकती हैं? पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि वातावरण मानव को बाध्य कर देता है, उसकी जो धारणा बन जाती है, वह धारणा उसे वैसा ही बना देती है। और उसको निर्माणित कर देती है। पूज्यपाद गुरुदेव और मैंने, दोनों ने निर्भयता और ऋषि भद्रकेतु के आचरणों को अपने में धारण करते हुए वहाँ से गमन किया।

499. अन्तरात्मा से प्रेरणा

ऋषि-मुनियों की आभांए विचित्र रही है। मेरी प्यारी माताओं का कितना सहयोग रहा है, ऋषियों को अहिंसा परमोधर्मी बनाने के लिए। परन्तु माताएं ऐसी भी होती हैं, जो कई दैत्यों का निर्माण भी करती रही हैं। दैत्य, जो हिंसक रहे हैं, हिंसा करते रहे हैं। आत्मा की प्रेरणा को शांत करने वाले ही दैत्य कहलाते हैं। अन्तरात्मा से प्रेरणा जागती है, उसको दमन करते रहते हैं। जब दमन करने में अति हो जाती है तो वे दैत्य बन जाते हैं। परन्तु जो आत्मा की प्रेरणा को ग्रहण करते हैं, उसका पालन करते रहते हैं, और पालन करते-करते देवता बन जाते हैं।

500. महानन्द जी की ज्ञान की धारा

मैं आज पूज्यपाद गुरुदेव की आभा में प्रारम्भ का जो वेदमन्त्र है, उसके ऊपर अपनी कुछ विवेचना दे रहा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव तो सदा से ही परम्परागतों से ही, अपनी ज्ञान की धारा, जैसे गंगा प्रवाह में गति करती है, जल प्रवाह से जा रहा है, इसी प्रकार ज्ञान का जो स्रोत है, वह इतना महान गति कर रहा है, वह महान है। जब मैं आधुनिक काल की माताओं को लेता हूँ, तो माता श्रृंगार करने में तो प्रियतम है, परन्तु जब कंठ के श्रृंगार के ऊपर कोई प्रश्न करता हूँ कि कितना ज्ञान है, कितना विवेक है और विवेक के साथ में बालक को कितनी विवेकमयी धाराओं का प्रतिपादन करा रही है, तो उसमें माता शून्य बिन्दु हो जाती है, शून्यता को प्राप्त होती रहती है। हे माताओं! संसार के निर्माण में, इस राष्ट्र के निर्माण में, संसार की रचना में इन मेरी माताओं का विशेष हाथ रहा है। हे बालक! तू आयु में दीर्घ होने वाला, सुमति स्वंजनः आभा को प्राप्त होता रहे। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाने वाला हूँ। आज हमारे वाक् ये क्या कह रहे हैं? मैं विशेष आधुनिक जगत की श्रेष्ठता का वर्णन नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि मैं विद्यालय में जाता हूँ, आधुनिक जगत में, राष्ट्र में जाता हूँ, विज्ञानशालाओं में गति करता हूँ, तो कर्त्तव्य से समाज विहीनता को प्राप्त होता जा रहा है। वह तो मैंने पूज्यपाद गुरूदेव से प्रश्न किया था। वायुमण्डल यह कह रहा है कि आधुनिक जगत को रक्त में जाने में कोई दूरी नहीं है। क्योंकि जब कर्त्तव्यवाद में विहीनता आ जाती है, तो समाज में अशुद्धता आ जाती है। १२.०२.१९८२

501. स्वाति राज्य के जिज्ञासु, पूज्यपाद की स्थली

एक समय मुझे स्मरण है पूज्यपाद गुरुदेव जब अपनी स्थली पर जब रहते थे, तो एक समय स्वाति राज्य से तीन जिज्ञासु चले। वह भ्रमण करते रहे। ब्रह्म की खोज में थे। वह चाहते थे कि ब्रह्म हमें प्राप्त हो जाए। भ्रमण करते हुए जब आश्रम में आए, तो यह प्रश्न किया गया कि महाराज! पूज्यपाद! हम यह जानना चाहते हैं, कि मानव का कल्याण कैसे हो सकता है? उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि तुम कितना जानते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! हमने भ्रमण किया है, हम ब्रह्मचर्य से हैं, ब्रह्मवर्चोसि हैं, हम आगे जानना चाहते हैं। उस समय एक-एक वर्षों तक गायत्री छन्दों में उन्हें प्रवेश करा दिया। गायत्री छन्दों का पठन-पाठन होता रहा। एक वर्ष के पश्चात उन्होंने कहा, तुमने क्या जाना? उन्होंने कहा-प्रभु! हमारे कुछ प्रश्न हैं। उन्होंने कहा-क्या प्रश्न हैं? महाराज! इस संसार का जो सूत्र है वह क्या है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा-इस संसार का कोई सूत्र है, तो वह प्राण है। प्राण ही सूत्र कहलाता है, जिस प्राण से संसार बंधा हुआ है, कटिबद्ध हो रहा है, माला की भांति धागों का सूत्र बन करके एक माला बन रही है। वह एक वर्ष तक अध्ययन करते रहे, उसके पश्चात बारह वर्षों तक कन्दराओं में अध्ययन और योगाभ्यास करते रहे। वही जिज्ञासु वही महापुरुष अपने नाना प्रकार के जन्मों की तरंगों को जानने लगे। ०७.०३.१९८२

502. स्मृति

मुझे इस संसार की बहुत-सी वार्त्ताएं स्मरण आती रहती है। २३.०३.१९८२

503. गुरुदेव से अध्ययन

मुझे स्मरण आता रहा है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा हम अध्ययन करने के लिए पंहुचे, तो उन्होंने एक औषध होती है, जिसको हम सर्पनैनी का औषध कहते हैं तो सर्प नैनी का जो औषध हैं, उसका आसन विद्यमान करते हैं। उस आसन पर विद्यमान होते हैं। और उस काल में जो स्वाध्याय करते हैं, तो पृथ्वी की उस गन्ध को, वह औषध, वह आसन वह लेता रहता हैं, जिससे हमारी गति जैसे सर्प होता है, सर्प में जितनी सहन शक्ति होती हैं, परन्तु उतना उसमें क्रोधाभास भी होता हैं। परन्तु इस भाव को ले करके आसन नही बनाया जाता है, वह इस भाव को ले करके आसन पर विद्यमान होते हैं, जिससे हम सर्पों की वाणी को, सर्पों की भाषा को, हम जानने वाले बन जाएं। क्योंकि सर्पों की भाषा अब वह जो उनका नृत्त है, उनको भी जानना बुद्धिमान के लिए बहुत अनिवार्य हैं। क्योंकि हमारे यहाँ, जैसे गुड़ शोनि एक औषध होती है, उसको पान करने से हम अश्व की वाणी को, घोड़े के शब्द को, उसको अच्छी प्रकार हम जान लेते हैं। कि यह क्या कह रहा है? क्या इसमें रहस्यमयी उच्चारण कर रहा है, तो इन सबका हमें ज्ञान, इस प्रकार औषधियों के द्वारा होता हैं। क्योंकि हमें उसी प्रकार के भाव हमें उसका शोधन करना होता हैं, परन्तु हमें इसका अनुष्ठान प्रायः बहुत पुरातन काल में किया करते हैं। परन्तु आज तो इतना समय हमे इतना अनुष्ठान, सब क्रियाएं समाप्त हो गईं। १०.०७.१९८२

504. स्मृति, माता मल्दालसा की

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में माता मल्दालसा की चर्चाएं, हमारे समीप आती रही है। मैंने कई काल में माता मल्दालसा का वर्णन किया, नाना प्रकार की गाथाओं में जाने के पश्चात हम उस साहित्य में प्रवेश कर जाते है, जिस साहित्य में माता अपने में एक अनूठा अनुसन्धान करती रही है।

505. रेवक मुनि महाराज

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में रेवक मुनि महाराज के आश्रम में, चाक्राणी ने कुछ प्रश्न किए और वह प्रश्न बड़े अनूठे थे, बड़े महत्त्वपूर्ण माता अंगकृतियों में आचार्य गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज जिनको एक सौ पांच वर्ष तक गाड़ी के नीचे ही तपस्या करते हो गएं थे। उनका जीवन महानता में सदैव तत्पर रहा है। २८.०७.१९८२

506. पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में

हमारे यहाँ, परम्परागतों मे जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत होता था, तो यह विद्याएं उस काल में परम्परागतों से नृत्त कर रही थी और यह यागमयी जो विद्या, रूग्ण को शान्त करने की थी यह उस काल में कहलाती थी। ०५.०८.१९८२

507. पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा ब्रह्मवेत्ता

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब ब्रह्मवेत्ता बनाया, तो मुझे औषधियों के पंचांगों का पान कराया। दुग्ध के द्वारा कुछ औषधियों का पान करा करके मेरे हृदय को विशुद्ध किया। ०५.०९.१९८२

508. गुरुदेव की अमृत वृष्टि

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! ये जो हमारी वाणी है ये मृतमण्डल में जा रही है। परन्तु अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृत की वृष्टि कर रहे थे। अमृत बिखेर रहे थे। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिवस चन्द्रमा अपनी कान्ति के द्वारा अमृत को बिखेर देते है इसी प्रकार वह ज्ञान और विज्ञान की अमृतमयी धारा वृष्टि के रूप में बिखेरते रहते हैं। अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! नाना प्रकार के यागों का चयन कर रहे थे। उनमें अश्वमेध, अजायमेध, गौ-मेध और भी नाना प्रकार के यागों का वर्णन कर रहे थे। परन्तु जिस स्थली पर हमारी ये आकाश वाणी जा रही है उस स्थली को मैं सदैव वर्तमान के काल में मैं दृष्टिपात कर रहा था। सूक्ष्म रूपों से, वहाँ एक याग का आयोजन और याग का चयन हो रहा है। मेरा अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न हो रहा है। परन्तु जहाँ आत्मा प्रसन्न है वहाँ कुछ मैं किसी काल में वंजना में अपने में शोकातुर हो जाता हूँ और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मानव का जो कर्म फल है, मानव की कर्म की जो आभा है वह मानव को कहीं से कहीं ले जाती है। वह किन्हीं-किन्हीं रूपां में कहीं न कहीं मानव को उस कर्म को आभा में बाध्य कर देती है। इसीलिए मैं अपने पूज्यपद गुरुदेव से यह कहा करता हूँ कि प्रभु! यह कैसा विचित्र जगत है? इसमें कैसा कर्म फल है? कही वनों की आभा है और कहीं वह भी दृष्टिपात नहीं होता। १०.१०.१९८२

509. महर्षि लोमश

महाराजा शिव ने यह कहा तुम्हारे राष्ट्र का यदि अश्वमेध याग बनता है तो यहाँ कागभुषुण्ड जी विद्यमान है यह अपना निर्णय दे सकते है। महर्षि लोमश है यह भी अपना निर्णय दे सकेंगे। तो कागभुषुण्ड जी को उन्होंने संकेत किया, कि महाराज! आप उससे क्या सहायता प्रदान कर सकते हो? तो उस समय कागभुषुण्ड जी ने कहा कि महाराज! मेरी तो एक ही कामना रहती है कि जब तुम याग का आयोजन करोगे, अश्वमेध याग करोगे, तो मुझे भी निमन्त्रित कर देना, जिसका तुम मुझे अधिकार दोगे, उसको मैं अपनाने के लिए तत्पर रहूँगा।

यह वाक् रावण ने स्वीकार कर लिया। महर्षि लोमश मुनि को संकेत किया कि महाराज! आप इस याग में क्या सहायता प्रदान कर सकते है? महर्षि लोमश ने कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो, परन्तु निमन्त्रण करके जो भी मुझे स्थली प्रदान करोगे, मैं उसका दायित्व अपने ऊपर धारयामि करता हुआ उसको पूर्ण रूपेण करूंगा। यह वाक् स्वीकार कर लिया, परन्तु महाराजा शिव से कहा-हे प्रभु! आप हमारे राष्ट्रीय पूज्यपाद गुरुदेव है परन्तु हमारी ऐसी इच्छा है कि जो अश्वमेध याग होगा, वह आपके संरक्षण में होगा। परन्तु यह वाक् महाराजा शिव इत्यादियों ने भी स्वीकार कर लिया। २९.१०.१९८२

महर्षि लोमश इत्यादि और कागभुषुण्ड जी को, उस याग के लिए नियुक्त किया गया। २९.१०.१९८२

510. महाराजा अश्वपति का राष्ट्र

महाराजा अश्वपति का राष्ट्र मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टि का अभाव बन गया जब वृष्टि का अभाव हुआ तो उन्होंने बुद्धिमानों का एक समाज एकत्रित किया और यह कहा कि हे बुद्धिमानों! यह वृष्टि नहीं हो रही, इसके मूल में क्या है? उन्होंने कहा कि प्रभु! हम इसके मूल को नहीं जानते। उन्होंने कहा, इसके मूल में कोई रहस्य है। इससे मुझे प्रतीत होता है कि मेरे राष्ट्र में वैदिक ध्वनि नहीं हो रही है। जब वेद ध्वनि होती है वायुमण्डल सत वायु से भरन होता है उसके पश्चात सब कार्य समय पर होते रहते हैं।

महाराजा अश्वपति ने नाना ऋषि-मुनियों को निमन्त्रण दे करके, उन्होंने वृष्टि याग के कर्म-काण्ड वाले ऋषि-मुनियों को निमंत्रित करके वृष्टि याग का आयोजन किया। प्रजा से कहा कि अपने विचार बनाओ। तुम्हारा विचार वृष्टि में होना चाहिए। मानव के हृदय से जो विचार हैं हृदय का जो चिन्तन है वही वायु मण्डल में भरन करता है। वही गृहों को पवित्र बनाता है। जैसे माता-पिता, पति-पत्नि अपने गृह में विचारों को महान बना लेते हैं, विचारनीय बना लेते हैं तो गृह उन विचारों से पवित्र हो जाता है। यदि दूषित बना लेते हैं, वासनामयी बना लेते हैं, तो वासना वाला वातावरण बन जाता है। परंतु कर्त्तव्य के महान विचार बनाओ जिन विचारों से यह वायु मण्डल भरन हो जाए।

राजा के राष्ट्र की प्रजा ने एक विचार बनाया, कि वृष्टि याग होना चाहिए। तो वहाँ जब वैदिक ध्वनि होने लगी, साकल्य को अग्नि में प्रवेश कराया जाने लगा, वह अग्नि गृहपथ्य नाम की अग्नि थी। गृहपथ्य नाम की अग्नि, वृष्टि नामक अग्नि है, जो समुद्रों से जलों का उत्थान कर देती है। वह बड़वानल नाम की अग्नि बन करके, वह आभा में गति करती रहती है।

मुझे स्मरण है महाराजा अश्वपति के यहाँ जैसे ही प्रजा ने प्रार्थना की, ब्राह्मणों ने, आचार्यों ने वैदिक ध्वनि का पठन-पाठन किया, तो अन्तरिक्ष शब्दायमान हो गया। जब अन्तरिक्ष शब्दायमान हो गया तो उस वेदाग्नि को ले करके, उस महान यज्ञ की अग्नि को ले करके अन्तरिक्ष में देवता तृप्त हो गए और तृप्त हो करके, समुद्रों से जलों का उत्थान हो करके वृष्टि हो गयी।

महाराजा अश्वपति ने कहा-हे प्रजाओ! इससे यह सिद्ध हुआ है, कि हमारे यहाँ जब अनावृष्टि होती है या अतिवृष्टि होती है, तो प्रजा के विचारों में दूषितपन आ जाता है। विचारों में दूषितपन नहीं आना चाहिए, यदि मानव को अपने गृह को ऊँचा बनाना हो, प्रजा को अपने गृहों को शुद्ध बनाना हो, तो गृह में प्रातःकालीन वैदिक ध्वनि ब्रह्मयाग के द्वारा होनी चाहिए। वैदिक ध्वनि देवपूजा के साथ होनी चाहिए। उसके पश्चात मध्य और रात्रि के समय जब निद्रा की गोद में जाओ, तो श्वास के साथ में ओ३म रूपी धागे में श्वास को पिरो करके और वैदिक ध्वनि को उच्चारण करके निद्रित हो जाओ। तुम्हें सुखद-आनन्द की प्राप्ति होगी। ऐसा अश्वपति महाराज प्रजा को इस प्रकार का उपदेश देते थे। शासन भी करना, उपदेश भी देना, सुषुप्त भी रहना, उसमें रजोगुण की पुट लगा करके न्यायकारी बन करके राजा अपने राज्य को चला रहा है।

विचार-विनिमय क्या? इस प्रकार की विचारधारा वाला जो राष्ट्र होता है वह समाज को कहीं का कहीं ले जाता है। उसके राष्ट्र में मार्गों की हानि नहीं होती। उसके राष्ट्र में अन्नाद की हानि नहीं होती। उसके राष्ट्र में महत्ता ही महत्ता रहती है। ०४.११.१९८२

511. वैदिक कवच

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी अमृतमयी एक वर्षा कर रहे थे, जिस अमृत को पान करने के पश्चात, मानव के द्वारा शेष कर्म नही रहता, वह ऊर्ध्वा में प्राप्त होता हुआ, अपना अवर्चनीय अपने को बना लेता है, अवर्चनीय वह विषय होता हैं, जिसका मानव वर्णन नही कर सकता, उसको अवर्चनीय कहते हैं, जिस विद्या के ऊपर अध्ययन करता-करता मानव अन्तिम छोर पर चला जाता हैं, और उसके पश्चात वह नेति-नेति का प्रतिपादन करता हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, अभी-अभी ऐसी वार्त्ता प्रगट कर रहे थे, जो अग्नि से ले करके, पूर्व दिशा से ले करके, वह ऊर्ध्वा और ध्रुवा और वह उदीची की और प्रतीची का वर्णन कर रहे थे, इसका वैदिक साहित्य में बड़ा वर्णन आता है। हमारे आचार्यों ने उन्हीं वाक्यों को ले करके मानव को संध्या के सूत्र में परिणत कर दिया हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत काल पूर्व, अपने संध्यामयी वर्णन करते हुए, जिसका वर्णन पूज्यपाद गुरुदेव कल भी प्रगट करेंगें। परन्तु आज तो केवल मैं इतना उच्चारण करने के लिए आया हूँ, क्या पूज्यपाद गुरुदेव ऐसे कवच का वर्णन कर रहे थे, जिस कवच को भक्त अपने में धारण करता हुआ, देवी कवच को, अपने में धारण करता हुआ, देवतव को प्राप्त हो जाता है। जैसे हमारे यहाँ, यह वैदिक कवच, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन किया। १८.१२.१९८२

512. गुरुदेव की साधना

इस प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव लेपनों के द्वारा, साधना कराते रहे। १८.१२.१९८२

पूज्यपाद गुरुदेव तो इन वनों में बड़े ही रहते हैं, परन्तु मुझे आज इसमें परिणत करा दिया। मैं भी इसमें भ्रमण करने लगा हूँ, अब मुझे एक औषध मैं जानता हूँ, दूसरी औषध मुझे स्मरण आ रही हैं। मस्तिष्क के श्वधानम ब्रह्मा जैसे मानव को कासकतन नामक एक रूग्ण होता है। १८.१२.१९८२

513. सर्पकेतनी औषध

वह काल मुझे स्मरण आता रहा है, जब पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में, विद्यमान हो करके नाना प्रकार की औषधियों का पान करते हुए जब महानन्द जी का वह समय आया था, जब वह साधना के क्षेत्र में पंहुचे तो सर्पकेतनी नामक एक औषध होती हैं, सर्प केतनी नामक जो औषध होती हैं, उसका आसन बना करके और उस आसन पर विद्यमान हो करके, वह साधना के क्षेत्र में, वह साधना के क्षेत्र में जब प्रवेश होता हैं, तो मन की जो चंचलता है, वह एकाग्र हो जाती है। एकाग्र हो करके उस औषधि को सर्पराज उस औषध को स्पर्श नही करता, स्पर्श न करने से उसमें प्राण शक्ति, विशेषकर होती हैं। पृथ्वी को वह विशेष कराता है। अपने में ग्रहण करती है। वह साधक के लिए महान उपयोगी बनती हैं। १९.१२.१९८२

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आप औषध विज्ञान की चर्चा कर रहे हैं, मुझे आश्चर्य आता रहता हैं, मैं आपसे प्रश्न करता रहता हूँ, आपकी वार्त्ता को लाने के लिए मैं

समाज को यह दृष्टिपात में लगा रहता हूँ, कि पूज्यपाद गुरुदेव के मुखारबिन्दु से ज्ञान की तरंगों का जन्म हो जाएं, जो तरंगें उद्बुद्ध हो करके तरंगें शान्त होती हैं, उन तरंगों को उद्बुद्ध करने के लिए, मैं सदैव प्रार्थनाबद्ध करता रहता हूँ। हे मेरे पूज्यपाद! मुझे तो यह समाज ऐसा प्रतीत होता है, जैसा इस चिकित्सा के गर्भ में, चिकित्सा को जानने वाले प्राणियों ने मानव के मांस को भक्षण करने की प्रवृत्तियों को जन्म दिया हैं, और जन्म देने से युवक समाज भ्रष्टता के आंगन में जा रहा हैं, मानव अपनी आभा में नही रहा है, अन्तरात्मा की हृदय की वार्त्ता को वह शान्त करता रहता हैं, उपलब्ध होती है, वह उसे शान्त करने के लिए तत्पर, शान्त करने में लगा हुआ हैं। जैसे हृदय से तो, प्रेरणा उत्पन्न होंगी, परन्तु उन प्रेरणाओं को दमन करने वाला, स्वार्थी, जैसे राजा अपने मे यह जानता है कि मैं सुरापान की प्रवृत्ति, जो मैंने समाज मैं दी हैं, यह मेरे राष्ट्र के लिए विनाशकारक हैं, यह मेरा तो कर्तव्य नही हैं, परन्तु व्यवसाय होने से, स्वार्थ परता होने से, उन भावनाओं को वह दमन करता रहता हैं। दमनता की हुई निर्णायक आभाओं को अपनाता हुआ, वह समाज को रसातल के क्षेत्र में ले जाता हैं। १९.१२.१९८२

514. वर्तमान में अग्नि

पूज्यपाद गुरुदेव तो जाने या न जाने, परन्तु मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि अग्नि प्रदीप्त होने जा रही हैं। यह अग्नि शान्त होने वाली नही। २१.१२.१९८२

515. खण्डवा वन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! किसी काल में खण्डवा वन में जब भ्रमण करते रहते थे, तो नाना ऋषियों के दर्शनार्थ के लिए इस खण्डवा वन में आए और भी नाना ऋषि आते रहे हैं।

यह ऋषि-मुनियों की पवित्र स्थली है, उसी पवित्र स्थली पर पवित्र, ये यागों का आयोजन, ये पवित्र यागों की प्रतिभा जागरूक हो रही है। आज मुझे बड़ा आश्चर्य आता रहता है पूज्यपाद गुरुदेव! ने कई कालों में वर्णन भी किया, मैं भी इस वाक् की पुनरुक्ति करता रहता हूँ, कि जहाँ इस खण्डवा वन में, कण्व ऋषि और भी स्वेत्ताम, और भी नाना ऋषि तपस्या करते रहे हैं। उन सबका राष्ट्रीयता से आहार का प्रबन्ध, आहार का उनकी कृतियाँ बना करती थीं। राजा के यहाँ से वह द्रव्य आता था। जिस राज्य के द्रव्य में किसी प्रकार का तमोगुण और रजोगुण न हो, उस अन्न को ऋषि-मुनियों के लिए उन्हें प्रवाह से प्रदान किया जाता। १९.०१.१९८३

मैं पुनः से पूज्यपाद गुरुदेव! को इतने समय के पश्चात कुछ वाक्यों का परिचय दे रहा हूँ। जिनको ऋषि-मुनियों को लाखों लाखों वर्ष हो गए हैं। हे पूज्यपाद गुरुदेव! यह स्थली हमारी आकाशवाणी उनका चरित्र उनके चित्र वर्तमान में भी मानव के हृदय में गमन कर रहे हैं। मानव के हृदयों में, मानव की पृष्ठभूमियों में उपस्थित हो रहे हैं। १९.०१.१९८३

मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदव अभी-अभी कुछ अमृत बिखेर रहे थे। क्योंकि अमृत बिखेरना ही मानव का मौलिक सिद्धान्त कहलाता है। परम्परागतों से ही, यह मौलिक सिद्धान्त है, जिस आभा में मानव अपना वास करना चाहता है, उसी का वह सिद्धान्त बन जाता है। ०२.०३.१९८३

परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में मुझे यह वर्णन कराया, जब विद्यालय में प्रवेश करते थे उस काल में चरणों में ओत-प्रोत करा करके शिक्षाओं को प्रदान करते रहते थे। ०२.०३.१९८३

516. गुरुदेव से महर्षि लोमश जी की शिक्षा

मुझे स्मरण है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इससे पूर्व शब्दों में लोमश मुनि और काग भूषण्ड की चर्चा कर रहे थे। जब एक पंक्ति में विद्यमान हो करके पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा नाना प्रकार की शिक्षा का अध्ययन करते रहते तो उनका कितना विशाल तप था। ०२.०३.१९८३

517. महर्षि लोमश मुनि का आह्वान

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब हम अपने योग के आँगन में प्रवेश करते थे, तो एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि हे प्रभु! आज तो महर्षि लोमश मुनि का आह्वान होना चाहिए, उनके विचारों का आदान-प्रदान होना चाहिए। तो पूज्यपाद और हम वेद की ध्वनि के द्वारा उनके नामों का उच्चारण करते हुए आह्वान करते, तो वह आत्मा अन्तरिक्ष में जहाँ भी होती, तो उस आत्मा का इस आत्मा से मिलान हो जाता, इस प्रकार का योग की साधना में, यौगिकता विद्यमान रहती है। जब मैं यह विचारता हूँ जैसे माता अपने पुत्र को आह्वान करती है, अपनी वेदना उस बालक तक परिणत कर देती है तो मानव के हृदय में जो यन्त्रालय बने हुए हैं, उन यन्त्रालयों में वह चित्रण हो करके, एक आह्वान की प्रवृत्ति जाती है। १९.०३.१९८३

518. अश्वपति का काल गुरुदेव

मुझे स्मरण आता रहता है, वह अश्वपति का काल, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय मुझे वाजपेयी याग हुआ था, एक समय, महाराजा अश्वपति के यहाँ मुझे बोले कि हे पुत्रों! आज तुम याग में चलें, महाराजा अश्वपति के यहाँ से एक याग का निमन्त्रण आया है। जब याग में पहुंचे, तो महाराज अश्वपति ने यह कहा है कि तुम मेरे याग को जब सफल कर सकते हो? पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, हे राजन! हम तुम्हारे याग में जब उपस्थित हो सकते हैं जब तुम ब्रह्मवर्चोसि बन जाओगे। आज जब पूज्यपाद गुरुदेव ने ब्रह्मचर्य को कहा तो उन्होंने कहा, भगवन! मुझे स्वीकार है। आज मेरे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने पूर्व छ माह तक पूर्व ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान कराया। ब्रह्मचर्य का अभिप्रायः क्या है? क्या प्रत्येक श्वास की गति को मुद्रित हो करके ओ३म रूपी सूत्र में पिरो देने का नाम ब्रह्मवर्चोसि है। जब वह ब्रह्मवर्चोसि बन करके ओ३म रूपी सूत्र में श्वास को पिरो देता है, उस समय राजा याग करता है। यज्ञमान याग करता है, होता जन भी ओ३म रूपी सूत्र में पिरोए जाते हैं। वह वाजपेयी याग राष्ट्र के कल्याण के लिए, जब राजा तपस्वी है, ब्रह्मवेत्ता है, ब्रह्म की वार्त्ता कहता है, वह समाज को ब्रह्म की चर्चा कराता है, तो वह राजा ऐसा है, जो समाज को एक सूत्र में ला सकता है। १९.०३.१९८३

519. वेदों की पठन-पाठन स्थली

आज जिस स्थली पर हमारी ये आकाशवाणी जा रही है वहाँ वेदों का पठन-पाठन हो रहा है। वहाँ मेरा हृदय बहुत प्रसन्न रहता है, जब वेदों का गान होता है।

परन्तु जहाँ हृदय में प्रसन्नता होती है वहाँ हृदय में एक व्याकुलता भी होती है। मैं यह स्मरण कराता हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव तो जानते ही हैं। परन्तु मैं ये उच्चारण कर रहा हूँ वो समय था, जब, ऐसे-ऐसे याग होते थे। पुत्रेष्टि याग होते, वृष्टि याग होते, अग्निष्टोम याग होते, वाजपेयी याग होते। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को कजली वनों में से जहाँ सिंह अपनी ध्वनियाँ करते रहते हों, गज अपनी ध्वनियाँ करते रहते हों, कजली वनों से ला-ला करके ब्रह्मचारी के द्वारा यागों की रचना होती रहती थी। परन्तु आधुनिक काल का जब मुझे पूज्यपाद गुरुदेव का वह जीवन आधुनिक वर्तमान और पुरातन काल का जीवन स्मरण आता है, तो हृदय मैं प्रभु को ही धन्यवाद क्या? प्रभु! की कृतिका का वर्णन करने लगता हूँ। प्रभु! तू अनुपम है। तेरी महिमा कैसी विचित्र है? तू मानव को कहीं का कहीं पहुंचा देता है, कर्म की आभा के ऊपर। १९.०३.१९८३

मैं पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय नहीं देने आया हूँ। मैंने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में क्रियात्मक रूपों में इस विद्या का अध्ययन किया है। परन्तु आधुनिक काल का जो विज्ञान है, आधुनिक काल का विज्ञान तो क्रोध का भी कोई चित्र निर्धारित नहीं कर सका है, क्या इस मानव का क्रोध है और इसमें कितनी मात्राएं हैं? उस क्रोध में कितना नृत्य हो रहा है? उसका कोई यन्त्र निर्धारित नहीं हो सका है। परन्तु मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय करा रहा हूँ, परन्तु विज्ञान क्या बन रहा है? आधुनिक जगत का जो विज्ञान है, वह परमाणु शक्ति में विशाल है। परमाणु शक्ति को एकत्रित कर रहा है। परमाणुवाद में रमण कर रहा हैं, वह समय दूरी नहीं है, जब परमाणुवाद का इस संसार में आक्रमण होने वाला है। जब आक्रमण होगा तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अग्नि में परिणत करना चाहता है। वर्तमान का जो काल है, वह बड़ा विचित्र है। एक-दूसरे के आधात का संशयियों पर विद्यमान हैं। वह यह विचार रहा हैं पूज्य महानन्द जी। १९.०३.१९८३

520. ऋषियों के यहाँ गुरुदेव

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय मध्य रात्रि में कुछ अध्ययन और चिन्तन और मनन कर रहे थे। परन्तु मनन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव के हृदय में एक शंका की कृत्तियाँ उत्पन्न हो गई और वह शंका क्या थी? कि याग और विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ विवेचनाएँ हो गई और परन्तु उनके गम्भीर मुद्रा में परिणत हो करके चिन्तन और मनन होने लगा। पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि चलो, आज हम याज्ञवल्क्य मुनि के आश्रम में प्रवेश करेंगे और भारद्वाज अमरेत ऋषि के द्वार पर पहुंचेंगे। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और हम प्रातःकालीन होते ही वहाँ से प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए वह याज्ञवल्क्य, मुनि के द्वार पर पहुंचे। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ नाना प्रकार का विज्ञान में उनकी प्रायः गति थी और विज्ञान एक आभा में गति कर रहा था। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हम यह जानना चाहते है। ऋषिवर! क्या विज्ञान और याग दोनों का क्या समन्वय है? तो उस समय याज्ञवल्क्य ने कहा कि याग ही विज्ञान है और विज्ञान ही याग है। जब यह कहा कि विज्ञान ही याग है, तो उन्होंने कहा कि यह कैसे? हमें इसका निर्णय कराओ।

521. याग ही विज्ञान है।

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा कि हे ऋषिवर! आप तो गम्भीर मुद्रित हैं। गम्भीर मुद्रा में जाने वाले हैं आप नहीं जानते? क्या आप यह जानने के लिए आए हैं कि कितना बुद्धिमान है? उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा-नहीं। यह अपमानित होने के लिए नहीं, यह तो केवल जानकारी के लिए हम जानना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि हे प्रभु! यह जो संसार है, यह एक याग में परिणत है। प्रत्येक मानव याग कर रहा है, चाहे वह भौतिक विज्ञानवेत्ता हो, चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता हो, चाहे वह साधारण क्रिया-कलाप करने वाला मानव हो, वह सब याग में परिणत हो रहे हैं और वह विज्ञान उसकी आभा बन करके रहता है और आभा बन करके ओजस्व बन करके महानता को प्राप्त करा देता है।

522. गुरुदेव का ऋषियों के यहाँ भ्रमण

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वाक् स्वीकार कर लिया। उन्होंने यह निर्णय दे दिया कि संसार का नाम ही याग है, राष्ट्र का नाम ही याग है। परन्तु मानव के द्वारा जितना भी व्यापक कर्म है, व्यापकवाद है, रूढ़ियों से पृथक् है, अज्ञान से दूरी है, आत्मा के अनुकूल है, वेद की प्रतिभा उसे छूती रहती है, वह सर्वत्र एक प्रकार का याग ही माना गया है। पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत विस्तृत यागों के सम्बन्ध में व्याख्याएं कीं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वहाँ से भी गमन किया, भ्रमण करते हुए माता अरुण्धती और वशिष्ठ मुनि के द्वार पर पहुंचे। माता अरुण्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों के मध्य में वह याग करते थे, याग का जब क्रिया-कलाप चल रहा था, तो हमारा जब वहाँ समय हुआ, तो ऋषि ने कहा-आईए भगवन! आसन दिया, विराजमान हो गए। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से पूज्यपाद गुरुदेव ने नम्रता से कहा कि हे ब्रह्मवेत्ता! हे ब्रह्मनिष्ठ! आज हम आपसे कुछ जानने आएं हैं।

महर्षि बोले कि आपको क्या शंका हो गई है? आप तो आदित्य ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्म का चिन्तन करते रहते हैं। योगश्वरी को, ब्रह्मवर्चोसि बनते रहते हैं। उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो याग, जो तुम कर रहे हो, यह क्या है? उन्होंने कहा यह हमारी आत्मा है। यह जो याग है, यह हमारा आत्मा है, ऋषि ने कहा कि आत्मा कैसे है? वशिष्ठ बोले कि आत्मा इसीलिए कि बिना याग के मानव का मूल्य ही क्या है संसार में? बिना याग के मानव का कोई मूल्य नहीं, और याग कहते हैं शुभ कर्मों को। कोई भी मानव जितना भी आत्मीय कर्म करता है, सुकर्म करता है, जितना भी सुकर्म होता रहता है वही आत्मा के अनुकूल याग कहलाता है। यह वाक् जब वशिष्ठ ने कहा तो ऋषि प्रसन्न हो गए। पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रसन्न हो करके कहा, धन्य है ब्रह्मवेत्ता। यह सब निवारण होता रहा।

जब वैज्ञानिकों के मध्य में हम एक समय भ्रमण करते हुए, महाराजा हनुमान की विज्ञानशाला में पहुंचे। महाराजा हनुमान की विज्ञानशाला में एक भव्य विज्ञानशाला थी। वहीं महाराजा गणेश जी भी और महर्षि तत्त्वेतकेतु ऋषि महाराजा ये तीनो अपने विद्यालय में अनुसन्धान करते थे। आश्रम में अनुसन्धान करते रहते थे। वेद का अध्ययन करना, वेद की प्रतिभा को जानना, वेद के अनुकूल विचारों को व्यक्त करना और याग कर्म करना, अग्न्याधान करना, उसी के द्वारा अपने आश्रम और मानवीयता को वह सदैव पवित्र बनाते रहते थे, परन्तु जब पूज्यपाद गुरुदेव वहाँ पहुंचे, तो उन्होंने उनका स्वागत किया और यह कहा आइए भगवन! और वे विराजमान हो गए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, कहिए भगवन! हम तो कुछ जानने के लिए आए हैं? उन्होंने कहा, क्या जानना चाहते हो ऋषिवर? उन्होंने कहा,

कि विज्ञान से याग का क्या सम्बन्ध है?

523. याग में विज्ञान

महाराजा हनुमान ने अपना उत्तर देते हुए कहा, कि याग का जो समन्वय है, याग का जो विज्ञान से सम्बन्ध है, बिना याग के विज्ञान नहीं और बिना विज्ञान बिना याग के नहीं। उन्होंने कहा जब हम विज्ञानवेत्ता बनते हैं, तो वह जो अग्नि का परमाणु, भेदन किया हुआ परमाणु है, उसी को जानने के लिए हम सदैव तत्पर रहते हैं। जिस परमाणु को याग में भेदन हो जाता है, अग्नि के द्वारा उसका शोधन हो जाता है, उसी परमाणु को हम ला करके, यन्त्रों में यन्त्रित करते हैं। जो याग नहीं जानता, वह विज्ञान भी नहीं जानता। विज्ञान में अधूरापन नहीं होना चाहिए। होता है तो उसके मूल में केवल एक ही वाक् है क्या, उसमें याग नहीं है। याग कहते हैं समर्पित करने को।

हे यज्ञमान! जैसे तू अपनी यज्ञशाला में, अग्नि को अपने को समर्पित कर देता है, अपने को समर्पित करने वाला याज्ञिक कहलाता है। हे यज्ञमान! तेरा मन, वचन और कर्म याग में परिणत रहना चाहिए, मैं आज यज्ञमान के प्रति अपनी कामना आधुनिक काल में, वर्तमान के काल में जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, हमारी आकाशवाणी जहाँ जा रही है वहाँ एक याग हो रहा है, हे ब्राह्मण! हे याज्ञिक पुरुषों! मेरा हृदय से अग्रात रहता है, क्या तुम्हारा आयु दीर्घ हो करके और वेद का प्रसार जितना भी आ जाए, उतना यह समाज ऊँचा बनेगा। वह क्रियात्मक जीवन होना चाहिए। हे यज्ञमान! तेरा सौभाग्य है, जो आज तेरे द्रव्य का सुदपयोग हो रहा है, और तेरा द्रव्य देवताओं को प्रदान किया जा रहा है। देवताओं को साकल्य आहुति के द्वारा वायुमण्डल में प्रसारण किया जा रहा है। देवता उसे पान करते है। वे देवता कौन हैं, जो पान कर रहे हैं? पूज्यपाद गुरुदेव इसकी बहुत विचित्र व्याख्या किया करते हैं। वे कहा करते हैं पूज्यपाद ने कई काल में वर्णन कराया है कि यह जो देवता हैं, यह वासना ही तो पान करते हैं। ये सूक्ष्म परमाणु और तरंगों का पान करके यही स्थूल जगत को निर्माणित करते हैं।

524. गुरुदेव के आश्रम में महानन्द जी

इस प्रकार मुझे स्मरण है पूज्यपाद गुरुदेव यह प्रगट कराते रहते थे, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में प्रथम समय पहुंचा तो पूज्यपाद ने मस्तिष्क का अध्ययन करते हुए कहा, जाओ गायत्री की गोद में चले जाओ, तो मैं गायत्री की गोद में चला गया। पूज्यपाद गुरुदेव का जीवन तपस्वी था, क्रियात्मक था। तीन प्रातःकालीन अन्त पहर में अपने आसन को त्यागना, नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं में रमण होना, प्राणायाम करना, साधना में तल्लीन रहना, जब मैं उनके जीवन को दृष्टिपात करता, तो आश्चर्य में रहता, गायत्री की गोद में चला जाता था। गायत्री की गोद में जब मैं चला गया, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नाना प्रकार की औषधियों का पान कराते थे और अन्न नहीं देते थे, दूषित अन्नाद को नहीं देते थे परन्तु मैं महान बन गया पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत हो करके। २०.०३.१९८३

पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल में हमें यह निर्णय कराया था कि संसार में इतना द्रव्य है इसका सदुपयोग होना चाहिए, क्योंकि यदि द्रव्य का सदुपयोग नहीं होता, तो द्रव्य मानव को मृत्यु के आँगन में ले जाएगा और यदि द्रव्य का सदुपयोग होता रहेगा, तो यही द्रव्य मानव को सुखद और स्वर्ग में ले जाता है। क्योंकि संसार के मूल में यदि हम यह विचारते हैं, कि यह जितना द्रव्य है यह परमपिता परमात्मा की सम्पदा है। सृष्टि का सृजन करने वाले ने सृष्टि के प्रारम्भ में द्रव्य की आभा, द्रव्य क्या है? ०९.०५.१९८३

525. महानन्द जी की प्रेरणा

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रेरणा देता रहता हूँ और प्रेरणा दे करके कहा करता हूँ, प्रभु! यह संसार तो एक बड़ी आभा में जा रहा है। मानव में जहाँ अधिकार की पुकार होती जा रही है, कर्त्तव्य की विहीनता होती चली जा रही है। ०९.०५.१९८३

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय करा रहा हूँ कि आधुनिक जगत इस प्रकार की प्रतिभा में आ गया है। ०९.०५.१९८३

526. गुरुदेव को परिचय

पूज्यपाद गुरुदेव को मैं केवल अपना और संसार का परिचय देने चला आया हूँ और वह परिचय क्या है कि जिस स्थली पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, ये वाक्य उद्धृत हो रहे है वहाँ याग का दिग्दर्शन कर रहा था। परन्तु आत्मा प्रसन्न हो रहा था, क्योंकि जहाँ मानव याग करता है, देव पूजा कर रहा है, देवताओं को अग्नि के मुख में वह स्वाहा दे रहा है। अग्नि उसे वायुमण्डल में प्रसारण कर रही है। ये हमारा सौभाग्य है। हमारे ऋषि-मुनियों ने परम्परागतों से ही, सृष्टि से लेकर वर्तमान के काल तक जो भी तपा हुआ महान ऋषि आता हैं, ज्ञान और विज्ञान से गुथा हुआ रहता है, अपने संस्कारों को ले करके आता है। वह प्रथम याग की घोषणा करता है। वह कहता है कि अग्नि देवताओं का मुख है, इसको कोई यह नहीं कह सकता कि यह देवताओं का मुख नहीं है, क्योंकि अग्नि सूक्ष्म रूप बना देती है, परमाणुओं का भेदन कर देती है। वही सुयोजन करके वायुमण्डल में गृहों में छा जाती है। और उसके छा जाने पर वायुमण्डल पवित्र बन जाता है। १५.०५.१९८३

527. गुरुदेव के सानिध्य से वैज्ञानिक बोध

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव की अनुपम कृपा से नाना प्रकार के वैज्ञानिकों के समीप जा करके, वैज्ञानिकों की यज्ञशालाओं में, ज्ञानशालाओं में विद्यमान हो करके उनको दृष्टिपात किया।

जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भारद्वाज मुनि का नाम लेकर उच्चारण करते रहते हैं, उनके यहाँ सबसे प्रथम याग को जाना। याग के पश्चात विज्ञान को जाना। परन्तु ज्ञान और विज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते। १५.०५.१९८३

528. गुरुदेव

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपने भोले-भाले स्वरूपों में, अपनी प्रतिभा में प्रतिष्ठित रहते हैं। २९.०८.१९८३

529. गुरुदेव को बहत्तर यागों का कर्म-काण्ड

पूज्यपाद गुरुदेव ने बहत्तर यागों का कर्म-काण्ड जानते रहते थे। मैं भी जानता रहता हूँ। विचार क्या है उस विज्ञान में, गौ घृत में याग करना यज्ञमान की पत्नी सहित, जब याग हो रहा है, उस याग से वायुमण्डल पवित्र हो रहा है। २९.०८.१९८३

530. सोम्भुक ऋषि के पास शाखाएँ

यहाँ के पुस्तकालयों में लगभग दो-चार संहिताएं प्राप्त होती है। परन्तु विचारना यह कि, मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वर्णन कराया था कि यह शाखाएं हिमालय की कन्दराओं में विद्यमान हैं। ऐसा मैंने वर्णन किया था परन्तु वे शाखाए कहीं, हिमालय, बहुत विशाल है। इस हिमालय कि मैं किसी काल में दृष्टिपात करके ही उच्चारण करूंगा, वह किस स्थलियों में हैं, कौन-सी स्थली में विद्यमान हैं। परन्तु वे शाखांए एक सोम्भुक ऋषि हैं, जो जैमिनी मुनि महाराज के वंशलज कहलाते हैं वह जीवन मुक्त हुए। उनके शिष्य पर शिष्य कहीं हिलामय की कन्दराओं में हैं और उनके समीप वह पुस्तकों का कुंज सब विद्यमान है परन्तु वह भोजपत्रों पर आधुनिक काल का जो पत्र चल रहा है लेखनी पाद है उस पर नहीं, परन्तु भोज पत्रों की स्वाति पर है जिसके पृष्ठों की आयु भी विशाल होती है। उन आयु विशालों पर वे शाखाएं विद्यमान है। वेद की पोथी भी विद्यमान रहती हैं। मन्त्रों की गणना भी उनके समीप है। मैं किसी काल में उसका वर्णन करूंगा।

531. सप्त ऋषि

मैं तो इतना ही उच्चारण कर सकता हूँ क्या जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, जिसके पास हिमालय ह, जिसको साहित्य जो हरद्वाशंस कहते हैं, हमारे यहाँ पुरातन काल में, सप्त ऋषि वहाँ तप करते थे। सप्त ऋषियों से दस कोटि गणना में आ करके वह पूर्व दिशा में हिमालय की श्वेत कोटि स्थान में वह पुस्तकों का कुंज कहीं विद्यमान है। वह बहुत ही विशाल है, हिमालय मैं किसी काल में यह प्रगट करूंगा। क्योंकि जैमिनी मुनि महाराज ने हिमालय में तपस्या की है। उनके वंशलजों ने भी, जो जीवन मुक्त हुए, जीवन मुक्त का अभिप्रायः यह होता है कि वह किसी काल में माता के गर्भ में नहीं जाते। उनकी इच्छा हुई, वह अपने स्थूल में आ जाते है, इच्छा हुई, तो वह सूक्ष्म में चले गए। सूक्ष्म और स्थूल का अभिप्रायः यह कि वह परमाणुवाद को जानते हैं, जितने परमाणुओं से एक वह जो ब्रह्म का तपोमयी, श्रोत कहलाया जाता है, वह एक अणु है, उस अणु के आँगन में वह परमाणु आ जाते हैं, जिन परमाणुओं से माता के गर्भ में शरीर का निर्माण होता है। जीवन मुक्त आत्माएं, वह होती हैं, जो इन परमाणुओं को जानती हैं वह एक क्षण समय में जीवन को प्राप्त शरीर धारण कर लेते हैं, एक क्षण समय में सूक्ष्म वाले बन जाते हैं। वह आत्मा जीवन मुक्त कहलाते हैं। यह जैमिनि महाराज भी इस प्रतिक्रिया को जानते थे। जैमिनी मुनि महाराज ने अपने शिष्य स्वाति को यह वार्त्ता प्रगट करायी। स्वाति ने समर्पणां वेतुक ऋषि को परिणत करायी। समवाची ने वाचक ऋषि को यह वाक् प्रगट कराया यही क्रियाओं को प्रगट कराते हुए जो कुंज है, पुस्तकं कुंज है। २९.०८.१९८३

अन्यथा यहाँ यवनों के काल में मोहम्मद के मानने वालो ने यहाँ का नाना पुस्तकालय अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणत कर दिए है। साहित्य समाप्त हो गया है। साहित्य जब अग्नि में चला जाता है, जिस भी सम्प्रदाय का, जिस भी आभा का, जिसमें अकृत रहने वाला है, जब वह अग्नि में चला जाता है, तो रह ही क्या जाता है उसके समीप, परन्तु जो भी है उसके ऊपर अनुसन्धान करना हमारा सबका कर्त्तव्य माना गया है। यहाँ किसी का जन्म हुआ श्रृंगकेतु माता से, आधुनिक काल के पाण्डितव ने यह स्वीकार कर लिया, क्या वह तो हिरणी से उसका जन्म हुआ होगा। वशिष्ठ एक वेद में मन्त्र भी आता है। पंच जाया पुत्रः वशिष्ठः वह पंच जाया है, वह पांच ब्राह्मण हैं, उनकी एक पत्नी है। उसका नाम अप्सरा है। उस अप्सरा के गर्भ से वशिष्ठ को माना है। समाज ने जाना नहीं, वशिष्ठ मुनि महाराज जो महान तपस्वी, ब्रह्मवेत्ता उनका जन्म अप्सरा से स्वीकार करते हैं। क्योंकि पाण्डितव में जब अज्ञान आ जाता है, जब रूढ़ि बन जाती है, रूढ़ि बन करके साहित्य का विनाश हो जाता है। रूढ़ियों से साहित्य का विनाश होता है परन्तु ये रूढ़ियों को त्यागना चाहिए। २९.०८.१९८३

532. गुरुदेव की चर्चाएँ

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, आध्यात्मिक याग और भौतिक याग की चर्चा कर रहे थे। परन्तु वह उस काल की चर्चा करते रहते हैं, जिस काल में ऋषि-मुनि अपने आसनों पर विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहते थे और राष्ट्र उनके चरणों की वन्दना करता रहता था। परन्तु जो वर्तमान काल है, वह इसके महान विपरीत है। पुरातन जो काल था अतीत में प्रायः पूज्यपाद गुरुदेव सदैव रमण करते रहते हैं। और जहाँ विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहे। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से परिचय कराया था, बहुत पुरातन काल हुआ, जब मैंने यह परिचय कराया था कि आधुनिक जिस काल में हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर यह आकाशवाणी जा रही है, मेरा अन्तर्हृदय तो सदैव प्रसन्न रहता है, और यज्ञमान के साथ रहता है। मैं अपने यज्ञमान को पूज्यपाद गुरुदेव के आँगन एक अपनी शुभ कामना प्रगट करता रहता हूँ, और हम यह कहा करते हैं-हे यज्ञमान! जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, जिस गृह में द्रव्य को देवताओं को प्रदान किया जाता है, जिस गृह में द्रव्य का महान्, ऊर्ध्वा में कर्म रहता है, वहाँ यज्ञमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि सौभाग्य की अखण्डता ही, मानवीयता कहलाती है। १३.११.१९८३

533. राजा दशरथ के यहाँ, पुत्रेष्टि याग

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब राजा दशरथ के यहाँ, पुत्रेष्टि याग हुआ था, राजा दशरथ के यहाँ, एक पुत्रेष्टि याग हुआ था, तो राजा दशरथ को छह माह तक यह सोमरस का पान कराया, सोमरस को वह प्रतिदिन यज्ञशाला की अग्नि में तपाया जाता, और उसको पान कराया जाता था, क्योंकि वह ऊर्ज्वा उनमें प्राप्त हो गई थी, जिससे सन्तानों की उत्पति हो जाएं, तो वह ऊर्ज्वा सोमलता में होती हैं, क्योंकि उसमें सूर्य की किरणों की जो पुट लगा करती है, वह औषध

विज्ञान, प्रतिभा विज्ञान में, एक प्रतिभाषित बनी रहती हैं, क्योंकि इस विज्ञान को जानते हुए, बहुत से वैद्यराज हुए हैं, जो मुझे स्मरण है, जिसके ऊपर बहुत-सा अनुसन्धान भी परम्परगतो से होता रहा है। तो मानव को सोमरस पान करना चाहिए। योगीजन सोमरस का पान करते रहे हैं, वैद्यराज अपनी दृष्टि से औषध विज्ञान से बुद्धि को प्रखर बना लेते हैं। बुद्धि को एक जो मेधावी बना करके वह नाना प्रकार के इस पृथ्वी विज्ञान औषध विज्ञान में अपने में बड़े सहयोगी, अपने में बड़े महान सिद्ध हुए हैं। १४.११.१९८३

534. स्मृति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महात्मा दधीचि के यहाँ अश्विनी कुमारों ने ब्रह्म विद्या का पान किया था, और अश्व के मुखारबिन्दु से उन्होंने उस विद्या का पान किया। १४.१२.१९८३

535. पुरातन काल देखने का अवसर

मुझे बहुत पुरातनकाल में, बहुत से काल की दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय द्वापर आवृत्ति का मध्यकालीन कुछ महाराजा अन्तिम से पूर्व एक राजा हुए जिनका नाम स्वामी कृतिभानु राजा था। ०७.०१.१९८४

536. वाजपेयी याग

मुझे स्मरण है, पूज्यपाद गुरुदेव से एक समय मैंने प्रश्न किया था कि वाजपेयी याग का जब चलन हुआ महाभारत काल के पश्चात तो वाजपेयी यागों में बैल की बलि का वर्णन आया कि बकासुर इत्यादियों का जब वृष्टि वृण वास्तु हुआ, तो उस याग की प्रतिभा में काले हिरण का वर्णन आता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया कि याग को काला हिरण ले गया। उसने उसे बकासुर को प्रदान कर दिया और बकासुर ने उसकी सृष्टि कर दी और वृष्टि करते ही वहाँ बैल की बलि का वर्णन आता है। गऊ के बछड़े की बलि का वर्णन आता है, परन्तु बलि के वर्णन को भोले प्राणी ने जाना नहीं, अज्ञानता के कारण नहीं जाना। परन्तु हमारे यहाँ यज्ञ के यज्ञ कृति काला हिरण कहते हैं, धूम्र को और जब धूम्र मेघों में परिणत होगा, उस याग के परमाणुओं का नाम हमारे यहाँ कालोमयी हिरण कहा जाता है और बकासुर नाम मेघों का है। जब वह मेघों को प्रदान किया गया। मेघों ने उसकी पृथ्वी पर वृष्टि कर दी। जब वृष्टि हुई तो गऊ के बछड़ों ने पृथ्वी के ऊपर उसकी चमड़ी को वृत्त करते हुए उसमें बीज की स्थापना की, वहाँ परिश्रम करने का नाम बैल की बलि माना गया है। इस प्रकार की जब साहित्य कृतियों में अपभ्रंशता आ गई, तो इसे मानव अज्ञानता के कारण नहीं जान पाता, मैं तो यही कहूँगा। परन्तु आज मैं विचार देना नहीं चाहता हूँ।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य वर्णन करने आया हूँ कि यहाँ प्रत्येक याग में हिंसा की प्रवृत्ति आ गई है। जाने कहाँ से मानव के विचार आए, परन्तु प्राणियों का कुछ सौभाग्य है कि वह अहिंसा से परिणत यागों का पुनः चलन हो गया। १८.०१.१९८४

537. गुरुदेव द्वारा वाजपेयी याग

मुझे स्मरण आता रहता है जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में पहुंचा था किसी काल में, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने लगभग छह माह तक वाजपेयी याग किया। छह माह तक वाजपेयी याग करके वायुमण्डल जब पवित्र हो गया, तो उसके पश्चात योग-साधना में हमें परिणत कराया। योग-साधना में परिणत कौन होता है? कहाँ योग-साधना सिद्ध होती है, जहाँ वायुमण्डल पवित्र होता है। जहाँ वायुमण्डल में अशुद्धिया होती हैं, वायुमण्डल में एक-दूसरे के नष्ट करने की प्रवृत्तियां रहती हैं, उनके विचार गृहों में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ योग सिद्ध नहीं हो पाता। हमारे ऋषि-मुनि परम्परागतों से योग-सिद्धियों में रमण करते रहे हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय मुझे स्मरण कराया था कि एक समय महर्षि रोहिणीकेतु ऋषि महाराज, जो रोहिणीकेतु अगस्त्य मुनि महाराज के महापिता थे, वह अपनी पत्नि से बोले कि हे देवी! चलो हम याग करने के लिए चलें। तो उन्होंने कहा कि महाराज! आपको याग करना है या साधना करनी हैं? उन्होंने कहा, साधना और याग दोनों का एक ही मन्तव्य है। सबसे प्रथम मुझे स्मरण आता रहता है, कि जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में पहुँचा था किसी काल में। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने लगभग माह तक वाजपेयी याग किया था। माह तक वाजपेयी याग करके वायु मण्डल जब पवित्र हो गया तो उसके पश्चात योग साधना में हमें परिणत कराया। योग साधना में परिणत कौन होता है? वहाँ योग साधना सिद्ध होती है, जहाँ वायु मण्डल पवित्र होता है। जहाँ वायुमण्डल में एक दूसरे को नश्ट करने की प्रवृत्तिया रहती हैं। ऐसे विचार का गृहों में प्रवेश रहता हैं। तो वहाँ योगसिद्धि नहीं हो पाती। याग से वायुमण्डल को पवित्र बनाना है, चित्रों को दृष्टिपात करना है, उसके पश्चात हम योग में सिद्ध हो सकते। १८.०१.१९८४

वाजपेयी याग

मुझे स्मरण आता रहता है कि जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में पहुँचा था, किसी काल में, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने लगभग माह तक वाजपेयी याग किया था। माह तक वाजपेयी याग करके वायु मण्डल जब पवित्र हो गया, तो उसके पश्चात योग साधना में हमें परिणत कराया। योग साधना में परिणत कौन होता है? वहाँ योग साधना सिद्ध होती है, जहाँ वायु मण्डल पवित्र होता है। जहाँ वायुमण्डल में एक दूसरे को नष्ट करने की प्रवृत्तिया रहती हैं। ऐसे विचारों का गृहों में प्रवेश रहता हैं। तो वहाँ योगसिद्धि नहीं हो पाती। १०.०२.१९८४

538. बरनावा भूमि

जहाँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का मृत लोकी एक शरीर दृष्टिपात होता है, परन्तु जो भूमि, श्मशान भूमि बन सकती है, वह भूमि देवतव भूमि भी बन सकती है। परन्तु आज मैं हर्ष ध्वनि कर रहा हूँ कि जहाँ मेरी पुत्रियों के सतीतव का हनन हुआ हो, आज वहाँ वेदज्ञ ध्वनि हो रही है, मेरा हृदय बड़ा गद्-गद् हो रहा है, मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यहाँ की साहित्यिक चर्चाएँ प्रगट की थी और वह साहित्यिक क्या, कि मेरी पुत्रियों के उनके सतीत्व को नष्ट करने वाली भूमि बन सकती है, क्या वह देव भूमि बन सकती है। वह देवताओं की प्रतिभा बन जाती है। ११-३-१९८४

प्रेरणा
मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि याग के सम्बन्ध में अपना कुछ मन्तव्य दीजिए। ०४.०४.१९८४

539. महाराजा अश्वपति के यहाँ एक वृष्टि याग

जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय मुझे महाराजा अश्वपति के यहाँ एक वृष्टि याग में ले गएं थे राजा की प्रजा याग के लिए, ऐसे लालायित हो रही थी, कि हम देवताओं का पूजन करें, देवताओं को हवि प्रदान करें, जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाएं। परन्तु आधुनिक काल का मानव इन वाक्यों को जानता हुआ भी लज्जित हो रहा है। इन वाक्यों को जानता हुआ भी अपने मे पामरपने में परिणत हो रहा है। जब मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि यह जो आधुनिक काल का, वायुमण्डल चल रहा है। इस वायुमण्डल में संघर्ष हो रहा है। परमाणुओं का संघर्ष हो रहा है। मानव की वाणी का आदान प्रदान हो करके इसका एक नृत्य हो रहा है। और उससे वायुमण्डल का निर्माण है। ०४.०४.१०८४

540. गुरुदेव से अश्वपति के प्रश्न

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब किसी काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन कार्य और क्रिया कलाप करते रहते थे। तो महाराजा अश्वपति एक समय विद्यालय में आए और विद्यालय में आ करके उन्होंने-कहा कि मैं अपने राष्ट्र को दानेषु बनाना चाहता हूँ। वह कैसे बन सकता है? तो उस समय सर्वत्र ब्रह्मवेत्ताओं ने अपने कंठ से उद्गम्वृता उत्पन्न करते हुए कहा कि तुम तपस्या को चले जाओ। तो महाराजा अश्वपति ने १२ वर्ष का तप किया, और १२ वर्ष तक वेद के छन्दों में रमण करते रहे। उसका परिणाम यह हुआ कि उनका राष्ट्र सर्वत्र गायत्री की गोद में जाने के लिए तत्पर हो गया। क्योंकि प्रत्येक प्राणी गायत्री का पठन पाठन कर रहा है, वेद की ध्वनि को ध्वनित कर रहा है। तो महाराजा अश्वपति ने यह विचारा कि वास्तव में इस क्रिया कलाप को हम स्वतः करेंगे। वह प्रजा उसी के अनुसार पनपने लगेगी। यदि हमारा क्रिया कलाप अशुद्ध होगा, तो प्रजा अशुद्ध होगी, यदि हमारा विचार, क्रिया कलाप पवित्र रहेगा, ऊंची उड़ान उड़ने वाला होगा, तो प्रजा भी ऊंची उड़ान उड़ने वाली बनेगी। २८.०४.१९८४

541. आधुनिक काल

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इस संसार के सम्बन्ध में, आधुनिक काल के सम्बन्ध में, मैं कुछ परिचय दिलाना चाहता हूँ अथवा कुछ परिचय देना चाहता हूँ और वह परिचय क्या है कि ये जो आधुनिक जगत है, ये बड़ा विचित्र मुझे दृष्टिपात आ रहा है। जब मैं यहाँ के राष्ट्रवाद अथवा मानव समाज पर अपनी दृष्टिपात करने लगता हूँ, तो प्रायः ऐसा मुझे दृष्टिपात आने लगता है, कि ये समाज कहाँ चला गया है। १४.०५.१९८४

542. गुरुदेव का अनुभव

पूज्यपाद गुरुदेव का बड़ा अनुभव रहा है। विद्यालयों में जहाँ ये नाना प्रकार की शिक्षा प्रदान करते हैं, वहाँ याग भी होते है। प्रातः काल ब्रह्मचारी जन जब विद्यालयों में वेद ध्वनि से ध्वनित होने वाला एक शब्दनाद होता है, वो विद्यालय की आभा को पवित्र बना देता है। वहाँ के क्रियाकलाप को ऊँचा बना देता है। राजा की प्रतिभा को ऊँचा बनाता है। महाराज अश्वपति का जीवन, मैंने बहुत पुरातन काल में पूज्यपाद गुरुदेव भी मुझे वर्णन कराते रहते थे। १४.०५.१९८४

543. मृचि ऋषि

मैं मृचि ऋषि की चर्चा कर रहा था, मृचि ऋषि महात्मा विभाण्डक मुनि महाराज के पुत्र कहलाते थे, मृचि ऋषि अपने में कितने महान परन्तु अन्तिम परिणाम क्या हुआ? कि वह मोह, ममता में एक सिंहनी का एक बालक उसक समीप आ गया, उसे वह प्रीति करने लगा, उसे मोह हो गया। वह मृत्यु को भी प्राप्त हो गया, परन्तु यह विचारने लगे अब मैं कहाँ जाऊं? वह महात्मा सोम ऋषि महाराज के यहाँ उनकी पत्नी के गर्भ में उसके गर्भ में प्रवेश कर गई, वह मृचि ऋषि की आत्मा जब प्रवेश कर गई, तो उसे अन्तरात्मा का ज्ञान था, वह आत्मा ज्ञानी होता हैं।। वह माता के गर्भ में याचना कर रहा था तू यहाँ से मुझे दूरी कर मैं दूरी होना चाहता हूँ, ऐसा मुझे स्मरण है क्या वह नौ माह के पश्चात माता के गर्भ से पृथक हो गया। जब पृथक हुआ तो वह कुछ बाल्य, जब युवा बलवती होने लगा, जब बलवती हुआ, तो माता सोमकान्ता उसे लोरियों का पान कराती रहती, वह बुद्धिमान थी वह कहती, हे आत्मा! मेरे गर्भ में तो उस आत्मा को आना चाहिए था, जो मोक्ष के निकट होने वाली आत्मा थी। परन्तु तू मेरे शरीर में कैसे प्रवेश हुआ? तो उस अन्तरात्मा वह उसकी वासनाएं माता को भी स्पर्श करने लगी।
तो माता यह जान गई, कि यह पुत्र तो मृचि का अमेष पुत्र कहलाता हैं। उसका नाम ऋषि माता ने, वही ब्रह्मचारी, वही श्येनकेतु ऋषि महाराज बनें। श्येनकेतु ऋषि महाराज, जो महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज थे, जो भगवान राम के आचार्य कहलाते थे, इनके पिता कहलाते थे। तो मैं विशेष विवेचना मैं तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ, विचार-विनिमय क्या, वह संस्कार बने रहते हैं, इसीलिए मानव को, ममता में प्रवेश नही करना चाहिए।

544. चित्त के संस्कार

तो एक मानव आयु को ले जाता, कितनी दूरी चला जाता हैं। परन्तु चित्त में जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान होते हैं, वह उसे ऐसी आभा में ले जाते हैं कहीं ममता में ले जाते हैं, वह पुनः उसी आसन पर आ जाता हैं, जहाँ से उसका उत्थान हुआ था।
तो औषध विज्ञान है, मैं इसकी चर्चाएं कल मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ प्रश्न करेंगें, मैं उनके प्रश्नों का उत्तर जितना यथा शक्ति हैं, हो सकेगा तो इनके प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगें, प्रश्न करेंगें परन्तु आज का विचार-विनिमय क्या आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए परमात्मा के औषध विज्ञान को जानते हुए, हम आयु में ऊर्ध्वा को प्राप्त होना चाहते हैं, आयु से हम बलवती होना चाहते हैं, मानव चाहता क्या है संसार में? अन्धकार को नही चाहता, अन्धकार को जब नही चाहेगा, तो वह प्रकाश को चाहता है। प्रकाश में आयु बलवती होती हैं। १४.०७.१९८४

545. सृष्टि के प्रारम्भ से यज्ञोपवित

जब सृष्टि के प्रारम्भ में मेरे पिता ने, परमपिता परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया। तो हमारे यहाँ ये जो आर्य सज्जनों का मानव समाज है, यज्ञोपवीत को धारण करके, तीनों ऋणों से उऋण होने के लिए प्रयास करना है। इस पर्व की महत्ता आचार्यों ने स्वीकार की है कि तीनों गुणों के ऊपर जीवन को न्यौछावर कर देता है विचित्रता में। जैसे आज जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। वहाँ यागों का चलन। यागों की प्रतिभा का वर्णन प्रायः आ रहा था। परन्तु मैं सदैव यह कहा करता हूँ, हे याज्ञिक पुरूषो! तुम्हारा जीवन अखडता की ज्योति में परिणत रहे। हे यज्ञवेत्ताओ! तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रिय याग में परिणत होनी चाहिए। याग में परिणत होनी चाहिए। यागों से सम्पन्न होनी चाहिए। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि तेरे जीवन की प्रतिष्ठा, उस महान विचित्र चलन में स्वीकार की जाती है। क्योंकि हे यज्ञमान! तेरे जीवन की प्रतिभा सदैव मानवीयता में प्रदर्शन और महानता की ज्योति पर रमण करने वाली है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। ११.०८.१९८४

546. महर्षि लोमश जी

महर्षि लोमश मुनि ने कहा-कि एक समय मैं मगध राष्ट्र में पहुँचा, तो वहाँ कुछ ब्रह्मवेत्ता एकत्रित हुए। उन्होंने कहा-कि प्रभु। आप क्या ले रहे हो? तो उस समय में एक आसन ले रहा था। परन्तु जब उन्होंने आसन की चर्चाएँ की, तो आसन के अनेक पर्यायवाची शब्द आए और यह मेरा जो आसन है सर्पकेतनी एक औषधि होती है, मैं उस का आसन अपने द्वार पर प्रतीति करता रहता हूँ। जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता रहता था, तो सर्प केतनी औषधि का गुरु ने आसन दिया और उस आसन पर विद्यमान हो करके मैं अध्ययन करता रहता था। विचार क्या कि मैं एक समय सर्प केतनी औषधि का और इस के फलों और जड़वत दोनों को तपा करके अग्न्याधान भी करता था, याग भी करता था और इसे पान करने से मैं सर्प की प्रतिभा, सर्प की भाषा, सर्प के क्रिया-कलाप को अपने मस्तिष्क में सदैव अध्ययन करता रहा हूँ। गुरु अनुभव से वह दृष्टिपात आ गया था। मैं उसे जान गया था, पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन करा दिया था कि तुम सर्प केतनी औषधि का पान करो। सर्प केतनी औषधि का आसन बना करके इस पर विद्यमान होकर के तुम याग किया करो। १७.०८.१९८४

उस समय लोमश जी कहते हैं कि मैंने वेद का अध्ययन किया, तो मुझे यह विचार आ गया कि मैं सर्प केतनी औषधि का आसन बनाएं हुए विद्यमान हूँ और मैं इन्द्रियों के ऊपर अध्ययन कर रहा हूँ। इन्द्रियों को पिरोने का कौन-सा सूत्र है? मैं प्राण के क्षेत्र में चला गया। प्राण, अपान के क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्राण में तो परमाणु पिरोया हुआ है और व्यान में चित्त पिरोया हुआ है और अपान में यह गुरूत्व सृष्टि का क्षेत्र पिरोया हुआ है। जो यह जो समाज है, इस में जितना बाह्य जगत है, वह पिरोकर के इन्द्रियों का एक विषय बना हुआ है। इसी प्रकार सारा जो ब्रह्माण्ड है, वह रूप, रस, गन्ध इत्यादिओं में ओत-प्रोत रहने वाला है और यह पाँच मनके हैं जो प्राण सूत्र में पिरोएं जाते हैं। वहीं प्राण उदान बन रहा है। वही प्राण विभक्त होकर के व्यान बन रहा है। वही प्राण समान बन रहा है, वही प्राण अपान बन रहा है। पाँचों प्रकार की प्रकृति की जो गतियाँ हैं वह इसी में ओत-प्रोत होकर के सर्वत्र भौतिक विज्ञान इस के आश्रित रहने वाला है। १७.०८.१९८४

महर्षि लोमश मुनि महाराज अपना यह वक्तव्य देने लगे कि मैं तो केवल इन्द्रियों के साकल्य का याग कर रहा हूँ। यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह आज्ञा दी कि तुम याग करो। मैं विचारता रहा कि कौन-सा याग करूँ? तो उन्होंने कह-कि विष्णुमयी याग करो। यह विष्णु नाम परमात्मा का है और हम परमात्मा से, विष्णु से उस काल में मिलान कर सकते हैं, जब याग करेंगे। वह कौन-सा याग है? प्रत्येक इन्द्रियों के साकल्य को, प्रत्येक मनकों को एकत्रित करके प्राण रूपी सूत्र में पिरो करके उस को ज्ञान रूपी अग्नि में जब हवि प्रदान करते हैं, तो विवेक की धाराओं की जागरूकता हो जाती है, और विवेक उत्पन्न होते ही संसार खिलवाड़ बन जाता है और एकोकी विष्णु के गर्भ में प्रवेश कर जाते है।

547. महर्षि लोमश और भगवान राम

जब महर्षि लोमश ने यह वर्णन कराया, तो राम शान्त, मुद्रित हो गये। उन्होंने कहा-धन्य है प्रभु! आप ने हमें यौगिक क्षेत्र में पहुँचा दिया है, हमें योग के ब्रह्माण्ड में, आपने परिणत करा दिया है। हम केवल कल्पना मात्र, काल्पनिक वाक्यों में इस का संशोधन करते रहे हैं। महर्षि लोमश मुनि यह उच्चारण करके मौन हो गये। जब मौन हो गएं, तो कागभुषुण्डी जी ने महर्षि वशिष्ठ मुनि से कहा-भगवन्! आप इस विष्णु के सम्बन्ध में कोई उपदेश दीजिए। वेद मन्त्रों में जैसे यज्ञोमयी विष्णु आता है, यह यज्ञोमयी विष्णु कैसे माना गया है? महर्षि लोमश ने तो आत्मिक याग की कल्पना की है। यहाँ आत्मिक याग में आत्मा ही विष्णु बन गया है। यज्ञोमयी विष्णु याग का अधिपति कहलाता है। आप भी अपने विचार को व्यक्त कीजिए। १७.०८.१९८४

548. गुरुदेव को परिचय

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय कराया था। बहुत पुरातन काल हुआ जब मैंने यह परिचय कराया था कि जिस काल में हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर यह आकाशवाणी जा रही है, मेरा अन्तर्हृदय तो सदैव प्रसन्न रहता है और यज्ञमान के साथ रहता है। मैं यज्ञमान को अपनी शुभकामना प्रकट करता रहता हूँ और हम यह कहा करते हैं, हे यज्ञमान! जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, जिस गृह में द्रव्य को देवताओं को प्रदान किया है, जिस गृह में द्रव्य का महान ऊर्ध्वा में कर्म करता रहता है, वहाँ यज्ञमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, क्योंकि सौभाग्य की अखण्डता ही मानवीयता कहलाती है। ०१.१०.१९८४

549. विभिन्न यागों में महानन्द जी गुरुदेव के साथ

मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के साथ बहुत से यागों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, राजाओं के यहाँ। मुझे वह काल स्मरण है जब महाराजा रघु के यहाँ एक याग हुआ था। वह भी काल स्मरण है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग हुआ था। परन्तु उन यागों में मुझे एक महत्ता का दर्शन होता रहा, परन्तु महाभारत काल के पश्चात जो हिंसा का चलन हुआ, वाममार्ग का चलन हुआ, उन्होंने पशुओं की बलि देना प्रारम्भ कर दिया। जब पशुओं की बलि देने लगे, बलि को समाज ने जाना नहीं, बलि को कोई भी समाज नहीं जान रहा है। १४.१०.१९८४

550. महर्षि लोमश जी द्वारा रावण के यहाँ अश्वमेध याग

एक समय मुझे स्मरण आता रहता है मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि महर्षि लोमश और काग-भुषुण्ड जी महाराज रावण के यहाँ अश्वमेध याग करा रहे हैं। चलो, उस याग में गमन करेंगे। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और मैं, हम दोनों उस याग में पहुँचे। तो काग-भुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज याग कर रहे थे। याग प्रारम्भ हो रहा था। उस अश्वमेध याग का अभिप्रायः था, कि अश्व नाम राजा का और मेध नाम प्रजा का, जिसमें दोनों में सुख और शान्ति की महत्ता की स्थापना का दिग्दर्शन होता रहे। तो दोनों का एक ही अभिप्राय था। उस याग को हमने दृष्टिपात किया। १४.१०.१९८४

551. गुरुदेव का वनों से याग के लिए आगमन

बहुत पुरातन काल हुआ मेरे पूज्यपाद को भयंकर वनों से लाया जाता था। राजा ला रहे हैं याग के लिए। याग प्रारम्भ किया, तो वृष्टि हो रही है। वह तपस्वियों के द्वारा ही याग होना चाहिए। तपो ब्रह्म वाचः तपो हिरण्यम रथः तप ही अपने रथ को लेकर के द्यौ-मण्डल में त्याग देता है। तो आज मैं विशेष विचार न देता हुआ केवल यह एक ही मेरी प्रार्थना रहती है, हे प्रभु! तू आधुनिक काल के राष्ट्रवेत्ताओं को सुबुद्धि प्रदान कर, जिससे उनकी सुबुद्धि में यह आ जाए, कि याग करना हमारा कर्त्तव्य है। रूढ़ियों को नष्ट करना है, यह भिन्न-भिन्न प्रकार की जो रूढ़ियाँ हैं। १४.१०.१९८४

552. महानन्द जी की वेदना

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव!मेरे भद्र ऋषिमण्डल!मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, अभी-अभी यागों का चयन करा रहे थे, और हम अपने में यह अनुभव कर रहे थे, कि जैसे हम, यज्ञशाला में विद्यमान हों, ऐसा अपने में अनुभव कर रहे थे, जैसे हम अथर्वा के आश्रम में विद्यमान हों, ऐसा अनुभव कर रहे थे, जैसे साधक अपनी साधना में रत्त हो जाता हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो सदैव ब्रह्माण्ड की नाना वार्त्ताओं में रत्त हो जाते हैं, परन्तु जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही हैं, वहाँ भी यज्ञशाला ही प्रतीत हो रही हैं। यज्ञं भवितां मयोवर्णनं मेरा सदैव यह भाव रहता हैं, जिस स्थली पर यह आकाशवाणी जा रही हैं वहाँ एक याग का चयन हुआ, मेरा हृदय, सदैव यज्ञमान के साथ रहता हैं। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, सौभाग्य का अभिप्रायः यह है कि कि गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, देव की पूजा होती रहे, क्योंकि ऋषि-मुनियों का रचाया हुआ जो पवित्र कर्म हैं, क्रियाकलाप है, जो पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी प्रगट करा रहे थे, यह प्रायः इसी प्रकार चला रहे। मेरे हृदय की यह वेदना रहती हैं। १४.११.१९८४

553. गुरुदेव द्वारा अजामेध याग

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो बहुत मुझे वर्णन कराया था किसी काल में जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते थे, तो वह अजामेध याग करते थे और अजामेध याग का अभिप्रायः यह होता था कि वह जो पशु वहाँ, पशु किसे कहते हैं इन्द्रियों को पशु कहा जाता हैं। वहाँ बकरी को कोई समन्वय नही होता, तो मानव ने स्वार्थी प्राणियों ने महाभारत काल के पश्चात अजामेध में बकरी की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। अभिप्रायः तो यह था कि हम अपनी इन्द्रियों का शोधन करें। परन्तु, आधुनिक काल में या महाभारत काल का अभिप्रायः अब भी पर्वतीय क्षेत्रों में प्रायः ऐसा होता रहता हैं, तो मैं पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करा रहा था, परिचय दिला रहा था कि क्या आधुनिक यागां भविते देवाः राजा के यहाँ जो घटनाएं होती हैं। उसके मूल में उसका आत्मबल उसके मूल में उसकी आत्मीय जो ऊर्ज्वा हैं, वह इतनी बलवती नही कि उसको ब्रह्मज्ञान होना चाहिए। आत्म प्रकाश उसे देना चाहिए, तो उसे निर्भयता हो जाएं, राष्ट्रीयता में अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सके। प्रजा को महान बनाना, प्रजा को ऊर्ध्वा में ले जाना हैं। १४.११.१९८४

554. महानन्द जी की प्रेरणा

मैं एक प्रेरणा बाह्य जगत से ले करके, जब पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ प्रेरणा देता रहता हूँ। तो मेरे पूज्यपाद मेरी उन प्रेरणाओं को उन तरंगों को अपने से दूरी नही करते क्योंकि जितना भी ज्ञान हृदय स्थली में पूज्यपाद गुरुदेव के हृदय में निहित रहता है वह अद्वितीय कहलाता है। उसकी मैंने अब तक कोई सीमा में, उसको मैं नही ला सका हूँ, वह न सीमा में आने लायक, क्योंकि-प्रभु का विज्ञान महान है, और जितने तपे हुए प्राणियों के द्वारा वह ज्ञान विज्ञान होता है, उतनी महानता की उपलब्धि होती है तो इसीलिए आज मैं आयुर्वेद के ऊपर तो केवल इतना ही कि आधुनिक काल का जो मानव है वह आयुर्वेद के ऊपर वह आयु में, वह सूक्ष्म बनता चला जा रहा है, उसके मूल मे यह है, क्या जो औषध विज्ञान है। १७.१२.१९८४

अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृतमयी वृष्टि कर रहे थे। क्योंकि उनके जो अमृतमयी शब्द है वो हमारे जीवन का निर्माण करते रहते हैं। मानो देखो, जिस विषय में वो रत्त होते हैं वो विषय हमारे लिए वरदान बन करके रहता है। वो हमारे लिए एक आशीर्वाद बनकर के रहता है। ०४.०१.१९८५

555. गुरुदेव के विचार

मेरे पूज्यपाद ने तो कई काल में, नाना ऋषि मुनियों के अपने विचार व्यक्त किए और, उनके ऊपर उन्होंने बहुत-सी टिप्पणियाँ, बहुत से विचार दिए और यह कहा कि यह संसार तो अंधकार में परिणत हो रहा है। ये अपने कर्तव्य की विहीनता में रत्त हो गया है। जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मुझे यह प्रगट कराते हैं तो मेरा जीवन आश्चर्य में रत्त हो जाता है। मैं आश्चर्य चकित हो जाता हूँ हे पूज्यपाद गुरुदेव यागों की बड़ी विशेषताओं में, उसकी गम्भीरता में ले जाते हैं और परमपिता परमात्मा का एक रचनामयी, एक याग बन जाता है। ०४.०१.१९८५

556. गुरुदेव से याग निर्णय

मैं आधुनिक काल में अग्निष्टोम याग, या वाजेपयी यागों की चर्चा करता हूँ, और पूज्यपाद गुरुदेव से उसका निर्णय भी कराता रहता हूँ। ०४.०१.१९८५

557. याग में परिणत

अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रश्न किया था कि भगवन्! ये जो याग है यह अन्तरिक्ष में भी हो रहा है अथवा नहीं तो ऋषियों ने निर्णय करते हुए कहा अपनी

वाणी का उद्घोष करते हुए कहा है कि मेरे जो शब्दार्थ है, वह अपनी कृत्तियों में रत्त हो जाएँ। इससे जीवन की धारा एक अनुपम बन करके रह जाए। तो जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन किया तो वर्णन आता रहता है। मैंने कई काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा था कि यह संसार को ऊँचा बनाने वाले प्राणियों! अपने संसार को ऊँचा बनाने का प्रयास करो। परन्तु संसार क्या है? इस संसार के सम्बन्ध में बहुत-सी विचार धारा हमने प्रकट की है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे इन वाक्यों का अनुभव कराया, अपने में रत्त रहने का प्रयास किया। तो विचार आता रहता है। हमारे यहाँ कि ये जो नाना प्रकार के याग हो रहे हैं। इन यागों में मानव को परिणत रहना चाहिए। याग एक अपनी स्थलियों में विचित्र बनकर के, ये देवपुरी में मानव को ले जाता है। ०४.०१.१९८५

558. शोभनी राजा के यहाँ गुरुदेव व महानन्द जी

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और हम कजली वनों से भ्रमण करते हुए शोभनी राजा के समीप पहुँच गए थे। तो शोभनी राजा प्रभु का चिन्तन कर रहे थे। तो शोभनी राजा एक मानव तत्त्वों में रत्त रहने वाले थे। तो शोभनी राजा जब अन्न का पान कर रहे थे, तो राजा हमारे लिए जब जल पात्रों में, वह जल लाए तो वे पात्र स्वर्ण के थे, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा हे राजन! हम तुम्हारा यह भोजपान नहीं करना चाहते हैं। हम तुम्हारा यह जल अमृत नहीं पान करेंगे। उन्होंने कहा-क्यो? क्योंकि जल तो अमृत है। परन्तु तुम्हारे राष्ट्र में ये जो क्रियाकलाप हो रहा है। अन्नाद को तुम पान कराना चाहते हो, यह हमारे लिए शोभानीय नहीं है। राजा के राष्ट्र में जो अन्नाद होता है, वो रक्त से सना हुआ होता है। इसको पान नहीं करेंगे, हमारी बुद्धि का क्षय, वह अशुद्ध हो जाएगी।

जब पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा तो शोभनी राजा आश्चर्य चकित हो करके बोले कि प्रभु! अन्न को मैंने अपने कृषिका उद्गम करके प्राप्त करता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो वाक् स्मरण है अथवा नहीं, परन्तु मुझे स्मरण है, जब यह कहा गया कि मैं स्वयं अपने में कला कौशल में रत्त रहता हूँ, मैं कृषि का उद्गम करता हूँ और मैं उस अन्न को महापुरुषों को, ऋषि मुनियों को प्रदान करता हूँ। उस अन्न को पा करके ही ऋषि मुनि अपने में, सचेत चैतन्य की धाराओं में रत्त हो जाते हैं। इसी प्रकार का जब अन्न होता है तो जो पान करता है, वो देवपुरी और देवतव को प्राप्त होता है। आज जब मैं यह विचारता हूँ कि अन्नाद में सूक्ष्मता बन गई है। जब अन्नाद में सूक्ष्मता, अन्नाद उस प्रकार का पान नहीं कराया जाता, तो अपने में अनुवृत्तियों में एक गढेले में परिणत हो जाता है। ०४.०१.१९८५

559. गुरुदेव के अनुष्ठान

पूज्यपाद गुरुदेव ने १२ वर्ष का यह अनुष्ठान किया था कि जितने दुग्ध देने वाले पशु हैं, इनके दुग्ध में धातुओं को जाना जाए। कौन-कौन-सा धातु इसमें विद्यमान है और वह धातु मानव के शरीर में, पशु के शरीरों में प्रवेश हो करके क्या-क्या पुष्टि करता है? विचार आया कि गौ नाम का जो पशु है उसके दुग्ध का पान करने से मानव की सात्विक प्रवृत्ति बन जाती है, इसी का दूध दुग्धपान करने से तमोगुण प्रवृत्ति बन जाती है, स्वाति का दुग्ध पान करने से उसकी रजोगुणी प्रवृत्ति बन जाती है। तो उसके गुणों में बारह वर्षों तक हमारे पूज्यपाद रमण कर गए। हम यह चाहते हैं कि हम सब वार्त्ता अभी उच्चारण कर जाएँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने बारह वर्षों तक यह अनुष्ठान किया, मौन रहे, वेद का अध्ययन करते रहे, प्रभु के गुणों को उसमें प्रतिपादित करते रहे। तो विचित्रता प्रतीत होने लगी। ०३.०२.१९८५

560. गुरुदेव को परिचय

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देने के लिए आया हूँ जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ मैं एक याग का दिग्दर्शन कर रहा था। ०५.०२.१९८५

561. गुरुदेव आश्रम कजली वनों में महाराजा अश्वपति

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक स्थली पर विद्यमान थे कजली वनों में। एक समय महाराजा अश्वपति का आगमन हुआ और महाराजा अश्वपति ने ये कहा कि महाराज! यह जो हम याग करते हैं इन यागों में क्या महानता है? तो पूज्यपाद ने कहा-कि महानता है यदि यागों की महानता की तुम गणना करते हो, यागों के द्वारा जो महानता होती है, उसकी कोई गणना नहीं होती, क्योंकि उसका अनन्य, अनन्तमयी आभा इस वायुमण्डल में प्रवेश कर जाती है। जब यह उत्तर प्राप्त हो गया तो महाराजा अश्वपति मौन हो गये। ०५.०२.१९८५

562. गन्धर्व राष्ट्र में भ्रमण

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब कई समय राष्ट्र में पहुँचा, मैं एक समय महाराजा अश्वपति गन्धर्व के राष्ट्र में पहुँचा, पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा तो जब वहाँ यह वाक् आया, कि महाराजा! आए हैं तो भगवन! मेरे आसन को पवित्र कीजिए, कुछ पान कीजिए जिससे मेरा गृह पवित्र बन जाए।

तो पूज्यपाद गुरुदेव, मैं और एक बटुक ऋषि से जब उन्होंने कहा तो उत्तर दिया राजन्! तेरे राष्ट्र का अन्न गृहण नहीं करेंगें, क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है वह दूषित होता है, हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी है। परन्तु जब इस प्रकार यह कहा तो राजा और उनकी पत्नी ने ऋषि के चरणों को ओत प्रोत हो करके यह कहा कि प्रभु! आओ भगवन! हम स्वयं कला, कौशल करते हैं हम स्वयं कृषि उद्यम करते है। उस के बदले जो वसुन्धरा में जो अन्न देती है, उसको पान करते हैं और राष्ट्र का हम क्रियाकलाप करते हैं। मुझे ऐसा स्मरण है कि आज भी हम उस राष्ट्र सभा में विद्यमान हो, तो पूज्यपाद गुरुदेव त्यागियों ने, ऋषि-मुनियों ने स्थान ग्रहण किया और ग्रहण करके वह प्रसन्नता को प्राप्त हो गए। आधुनिक काल का जो ऋषि मण्डल बना हुआ है, उसकी मैं आचार संहिता ही जगत में ले जाँऊगा। २७.०२.१९८५

563. १०१ वर्ष तक गुरुदेव का अश्वपति के यहाँ अध्ययन

मुझे एक सौ एक वर्षो तक महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन का मानो सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैंने ब्रह्मचारियों को दृष्टिपात किया। ब्रह्मचारी विद्यालय से जा रहा है, उसके पीछे-पीछे आगे प्रकाश जा रहा है, आ रहा है, ब्रह्मचारी, ब्रह्मवेत्ता आ रहा है। जिस प्रकार की ध्वनियाँ होती रहती हैं, वो राष्ट्र व समाज वह ब्रह्मचारी राष्ट्र की सम्पदा बन करके राष्ट्र समाज को ऊँचा बना करके रहता है। २८.०२.१९८५

महाराजा हनुमान के जीवन का मैंने दृष्टिपात किया कि उनका जीवन बड़ा विचित्र रहा। ०१.०३.१९८५

564. लोमश जी का अनुष्ठान

जब अनुष्ठान लोमश मुनि जी करते थे तो कागभुषुण्ड जी कृतिका को जानते थे और जब कागभुषुण्ड जी अनुष्ठान करते तो लोमश मुनि, इंगला, पिंगला दोनों का एक दूसरे में समावेश मानव वृत्तियों में रमण करा करके उसमें वेद विप्रतियों में परिणत कराते रहते थे। तो विचार-विनिमय क्या? कागभुषुण्ड जी ने कहा हे हनुमान! कि तुम योग के द्वारा यदि उस महान सूर्य को अपने में सिंचन करना चाहते हो, तो जानो कि दस प्राण कहलाते हैं-प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान और नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृकल। इन नाग को देवदत्त में, देवदत्त को कृकल में, कृकल को स्वाति में और एक दूसरे के प्राणों को प्राण की समावेशता दृष्टिपात आती रहती है। ०१.०३.१९८५

565. कजली वनो से गुरुदेव को याग में आगमन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अनादि काल से, अपने संस्कारों की प्रतिभा को लेकर के और समय-समय पर उन्होंने यागों की रचनाएँ की। वह काल जब स्मरण आता रहता है, जिस काल में दण्डक वनों से, कहीं कजली वनों से इनको लाया जाता और यज्ञशाला में, जैसे यज्ञशाला जैसे शरीर में यह प्राण प्रतिष्ठा है। ०३.०३.१९८५

566. गुरुदेव की यज्ञ में प्राण

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो वह समय था मुझे स्मरण है, कि कजली वनों से लाया जाता और वे यज्ञ में प्राण प्रतिष्ठा की स्थापना होती, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का एक तो वह भव्यकाल था। इनके बिना याग की रचना अथवा याग का कर्मकाण्ड हो नहीं पाता था। परन्तु एक स्थान वह मानव अपने भोगों के वशीभूत हो करके कहाँ चला जाता है परन्तु वह कहाँ चला जाता है? ०३.०३.१९८५

567. लोमश जी

कागभुषुण्ड जी जहाँ लोमश के चरणों में अथवा लोमश दोनों अपने में अध्ययन करते रहते थे। ०३.०३.१९८५

568. गुरुदेव द्वारा महानन्द जी को योगाभ्यास

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे जब मैं योगाभ्यास में रमण करता था, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इसी प्रकार मनकों को पिराते रहते थे। हम सूत्र में सूत्र को अपने को सीमित बनाते रहते थे। तो इसी प्रकार यह जगत बना हुआ है। ०३.०३.१९८५

569. गुरुदेव आश्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि

तुम्हें यह प्रतीत होगा कि जब मैं बाल्यकाल में पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा इनके चरणों में विद्यमान हो करके, अध्ययन करता रहा हूँ। तो एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज पधारे थे, वह गाथा मुझे अब तक स्मरण है, तो इन्होंने ब्रह्मचारियों को एक उपदेश दिया था, और ब्रह्मचारियों से यह कहा था कि जब मानव मुक्ति के क्षेत्र के लिए गमन करता है, या परमात्मा के मिलन के लिए गमन करता है, तो इस आत्मा के तीन प्रकार के शरीर होते हैं, एक शरीर स्थूल कहलाता है, सूक्ष्म है और एक कारण कहलाता है। तो स्थूल शरीर यह तो त्यागा ही जाता है, और जब तक इसके द्वारा चित्त का मण्डल बना रहता है, आत्मा के संग तब तक सूक्ष्म शरीर में वह चित्त के मण्डल की प्रतिभा निहित रहती है, वह शरीरों को प्राप्त होता रहता है, वही संसार में आवागमन की प्रतिभा में निहित रहता है। परन्तु जब तक यह सूक्ष्म ब्रह्मा, जब तक हम अपनी तपस्या के बल से सूक्ष्म शरीर को न जान लें, क्या यह सूक्ष्म शरीर क्या है? इसमें प्रकृति की पंच तन्मात्रा कहलाती हैं दसों प्राण होते हैं, और मन और बुद्धि होता है। ये सत्रह आभा वाला तरंगो वाला, सूक्ष्म शरीर कहो या इसको यह चित्त के मण्डल की प्रतिभा कह सकते है वह चित्त ज्यों का त्यों वह चित्त में संस्कार निहित रहते हैं।

मुझे स्मरण है तो महर्षि याज्ञवल्क्य ने ऋषि का उदधृत देते हुए, उन्होंने सरल वृत्तिका एक ऋषि हुए हैं, जो उनके उद्दालक गोत्र में हुए हैं, उन्होंने एक सौ पिचासी वर्ष तक इतना कठोर तप किया था, चित्त के मण्डल को जानने के लिए, क्या चित्त में कौन-कौन से संस्कार, कितने जन्मों के विद्यमान हैं। तो उन्होंने लगभग अठारह सौ जन्मों के संस्कारों को साक्षातकार किया और वह चित्त के मण्डल में निहित होते हैं। यह जो चित्त का मण्डल है, उसे हमें सूक्ष्म बनाना है, और वह कैसे बनाएगे और वह जब बनेंगें जब हम साधना करेंगे, हम मन की प्रतिभा को, पंच तन्मात्राओं के रूप में मन बुद्धि को दृष्टिपात करेंगे, और मन बुद्धि प्राण सूत्र में पिरो देंगे और प्राण सूत्र को, चेतना में जो प्रभु है जो सर्वत्र जगत का नियन्ता है, निर्माण करने वाला है, उसमें जब तक हम दृष्टिपात नहीं करेंगे, तब तक हम उसको अपने में दृष्टिपात नही कर सकेंगे। हम जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को सूक्ष्म नहीं बना सकेंगे, वह जब सूक्ष्म बन जाते हैं, तो तपस्या पुनः की जाती है। तपस्या के बल से उसके पश्चात कारण शरीर में प्रवेश हो जाते हैं। जब कारण में चले जाते हैं, तो कारण क्या है? कारण वह है जो चित्त के मण्डल की प्रतिभा सूक्ष्म बन जाती है। और सूक्ष्म शरीर चित्त में प्रवेश हो जाता है चित्त में ही वह रत्त रह जाता है जैसे स्थूल को वह सूक्ष्म में निकस करके जाता है ऐसे ही यह जो परम ब्रह्मा यह जो वृत्तियां है यह जो चित्त का मण्डल है अथवा सूक्ष्म शरीर से जब कारण शरीर निकसता है, तो चित्त का मण्डल, निचले भाग में रह जाता है, जब निचले भाग में रह जाता है, तो वही चित्त का मण्डल चित्त में प्रवेश हो गया। वह परमात्मा के चित्त मे चिन्तन चला गया, और वह कारण शरीर केवल्य रह जाता है। कारण शरीर में, ऐसा ऋषि कहते हैं वेद की प्रतिभा कहती है, क्या उस समय ज्ञान और प्रयत्न दोनो प्रकार की धारा रह जाती है, दोनो प्रकार की धाराएं जब तक एकोकीकरण नहीं हो जाती, तब तक जीवात्मा मोक्ष के प्रति द्वार पर नही जा सकता। दोनो का समन्वय होता है, ज्ञान और प्रयत्न का, दोनो का समन्वय जब होता है, तो केवल्य आत्मा निष्क्रियता में परमपिता परमात्मा के ब्रह्माण्ड में, जिसका आयतन माना गया है आत्मा जिसका आयतन माना गया है जिसमें रत्त हो जाते हैं।

तो यह वाक् एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, मेरे पूज्य आश्रम में जब बाल्यकाल में, आचार्य के यहाँ अध्ययन करते थे, तो यज्ञ के उपलक्ष्य में यह वाक् उन्होंने कहा था। तो, वह मुझे अब तक स्मरण है, तो भगवान राम ने, जब इस राष्ट्रीय सभा में, अपने वाक् जब ऋषि के वाक्यों को उदधृत किया तो सब राज

सभा मौन हो गई। महाराज शिव ने कहा वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है, तो हनुमान जी का प्रवेश हुआ। महाराज हनुमान ने कहा-प्रभु! आप तो आत्मा की चर्चा सदैव ही करते रहते हैं, आत्म ज्ञान की चर्चा, उन दोनो की विचारधारा में अविरत्त रहती है, सांयकाल का समय हो गया था, रात्रि का काल अपने-अपने कक्षो में निमन्त्रित किए, विशेष कक्षो में उन्हें निहित किया गया। प्रातः रात्रि समय भोज इत्यादि के पश्चात रात्रि के समय अयोध्या में एक यज्ञशाला थी यज्ञशाला में एक भवन था, उस भवन में विद्यमान हो करके, विचारको का पुनः विचार-विनिमय होने लगा। तो भगवान राम को, यह कहा गया कि-भगवन! आपके बाल्यकाल की स्मरण शक्ति, आपके समीप है आप हमे कुछ ओर उपदेश दीजिए, भगवान बोले कि-भगवन! यह कैसी वार्त्ता प्रगट कर रहे हो? भगवन! तुम कोई वाक् शिव से प्रार्थना की गई, क्या महाराज! कोई रात्रि काल में तुम्हारी कोई उपदेश मंजरी हो जाएं।

भगवान शिव ने यह कहा, कि मैं कैलाश में आनन्द में रहता हूँ। विचार मेरे तत्पर रहते हैं विज्ञान के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार की विज्ञान की धाराओं में रत्त रहते हैं, उसमें हम सदैव चित्त के मण्डल पर, अनेको अनेको समय विचार-विनिमय करते रहते हैं। , एक समय जब हम तपस्या में परिणत हुए, कि हमारे चित्त के मण्डल में केवल इतनी गति हुई है कि हम चित्त के मण्डल में जब तक मन का मण्डल रहता है, जब तक मन बुद्धि रहती है मन और चित्त का अन्तःकरण का चित्त का मण्डल रहता है जब तक चित्त मण्डल बना ही रहता है और जब यह चित्त के मण्डल का समन्वय जब आन्तरिक चित्त और बाह्य चित्त दोनो चित्तों का जब समन्वय मानव के शरीर में जन्म जन्मान्तरों के स्मरण शक्ति आ जाएगी, वह चित्त का मण्डल उसमें निहित रहता है, क्योंकि जब तक मन रहता है, प्रकृति का क्षेत्र तन्मात्राओं के रूप में रहता है, तब तक यह चित्त का मण्डल बना रहता है, यह चित्त का मण्डल बना रहता है। परन्तु चित्त के मण्डल को जब हम अपनी आभा में ले जाते हैं, तो यह बाह्य जगत बाह्य चित्त में ले जाते हैं। बाह्य चित्त में यह सूक्ष्मवाद का यह जगत है, इसमें भी मानव के संस्कार विद्यमान होते हैं जहाँ मानव के शब्द रहते हैं, शब्दों के साथ मे चित्र रहते हैं, और वह चित्रण होता रहता है, तो उसे बाह्य जगत में चित्त का मण्डल कहते हैं, चित्त के मण्डल का समन्वय प्रभु के ब्रह्माण्ड से होता हुआ, वह प्रभु का जो ब्रह्माण्ड है, वह एक अनूठा चित्त कहलाया गया है। वह चित्त का मण्डल जिससे इस मण्डल का मिलान हो जाता है। तो बाह्य जगत क्या उसका क्षुद्र बन जाता है। तो यह वाक् जब उन्होंने प्रगट किया, तो यह वाक् सूक्ष्म विचार थे, परन्तु विचार बड़े गम्भीर मार्मिक थे परन्तु इसके उपलक्ष्य में उन्होंने कहा कि मेरे यहाँ कैलाश पर्वत पर एक श्वेत्ता भ्राति ऋषि महाराज तपस्या करते थे। जो भारद्वाज गोत्रीय कहलाते थे। जब वह एक समय अनुसन्धान करते रहे, अनुसन्धान करते-करते उन्होंने चित्त के मण्डल को जानने की दिशा में अपने को ले गएं, तो ऐसा मुझे प्रतीत है उनके कथनानुसार क्या अपने बाईस जन्मों के चित्त के मण्डल को अपना साक्षात्कार किया, और साक्षात्कार करके उसके ऊपर तपस्या में परिणत हो गएं तो इसी प्रकार मानव के जन्म जन्मान्तरों के संस्कार, संस्कारों की निधि, मानव के समीप रहती है। ०४.०३.१९८५

जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में विद्यमान होते, तो यह प्रायः हमें इस प्रकार के अनुष्ठान कराते रहे हैं, अब उन अनुष्ठानों में मानव की बुद्धि का जो मूल है, जो नृतिका हो रही है, उसको वह स्पष्टीकरण हो जाता है, उसका स्पष्टीकरण जहाँ हुआ, बुद्धि के तन्तु में सूक्ष्मवाद में प्रवेश कर जाता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी बहुत ऊर्ध्वा में वार्ता प्रगट कर रहे थे, परन्तु जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहाँ यह मैं अपने दृष्टिपात कर रहा था, एक याग का आयोजन याग को सम्पन्न किया गया, यह भी अनुष्ठान है, यह भी सुगन्ध के लिए अनुष्ठान है। १२.०३.१९८५

570. कजली वनों से गुरुदेव का आगमन

एक समय था जब पूज्यपाद गुरुदेव जैसे महापुरूषों को कजली वनों से लाया जाता, और कजली वनों से ला करके यज्ञशाला में प्रवेश कराया जाता, परन्तु वह समय दूरी चला गया, आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में तो कोई वाक् उच्चारण करने वाला नही, परन्तु यह कि हे यज्ञमान! तेरे गृह का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरे गृह में सदैव द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, जहाँ द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह माता है, वह माता बन करके मानव के समीप आती है, परन्तु वह शरीर बन करके समीप आती है, इसीलिए याग हमारे यहाँ एक अनुष्ठान ही नही है, यह नाना रूपों में इसका चलन, वैदिक साहित्य में रहा है। हमारे लिए क्रियात्मक रहा है, परन्तु मध्यकालीन कुछ ऐसा काल हुआ, जिस काल में यागों को अभ्रष्टता हो गई, यागों को यह जान करके ही यह समाज नाना प्रकार की रूढ़ियों में परिणत हो गया, नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बन गई। १२.०३.१९८५

571. श्रृङ्गी, शिव, व इन्द्र की उपाधि

उपाधियों के संग हमारे यहाँ जो याग करने वाले पुरुष होते हैं, जैसे हमारे यहाँ पुत्रेष्टि याग और वृष्टियाग और वाजेपयी याग, अग्निष्टोम याग जो चार याग कराने वाला हो उसको श्रृङ्गी की उपाधि प्राप्त होती है। जो गृतियों में रमण कराने वाला, जो राजा हिमालय के तुल्य जिसके ऊर्ध्वा में विचार रहते हो, ज्ञान और विज्ञान में पारायण रहते हैं और जो स्वतः अपना कला कौशल करके, अपने उदर की पूर्ति करते है और राष्ट्र का क्रियाकलाप करते हैं। जैसे हिमालय, शिव ऊर्ध्वा में रहता है। ऐसा जो राजा होता है, उसको शिव कहा जाता है। जो इन्द्र एक सौ एक मानो अश्वमेध याग कर लेता है। एक सौ एक अश्वमेध याग करने वाले को हमारे यहाँ इन्द्र की उपाधि प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार यह उपाधियाँ मानी गई हैं इन उपाधियों का जो स्रोत है, मानव के और समाज के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। १३.०३.१९८५

572. गुरुदेव के आचार्य

एक समय मेरे आचार्य सौमभानु ऋषिवर जब अध्ययन कराते थे बाल्यकाल में। तो एक समय वह बोले-चलो, आज मैं तुम्हें कुछ योगियों के दर्शन कराने जा रहा हूँ। तो भ्रमण करते हुए कजली वनों में जा पहुँचे। कजली वनों से भी जब ऊर्ध्वा वनों में पहुँचे, तो एक व्रेतकेतु ऋषि महाराज वहाँ विद्यमान थे। व्रेतकेतु ऋषि महाराज शाण्डिल्य गोत्रीय कहलाते थे। व्रेतकेतु शाण्डिल्य के जब हम द्वार पर पहुँचे तो वह अपने में खेचरी मुद्रा का और शीतली प्राणायाम का अभ्यास कर रहे थे। अहिंसा परमोधर्मः की पुट लगा रहे थे। तो वहाँ पाँच सिंहराज विराजमान है। वे सिंहराज को उपदेश दे रहे थे कि तुम भी किसी काल में प्राणी थे। यह

उपदेश दे रहे थे कि तुम भी प्राणी हो। परमात्मा के राष्ट्र में विद्यमान हो। तुम भी आत्मा हो। तुम भी प्रभु के अमृतमयी पुत्र हो।

तो वह उपदेश दे रहे थे, हम उन उपदेशो को श्रवण का रहे थे। तो सिंहराज शान्त मुद्रा में उन उपदेशों को अपने में ग्रहण कर रहे थे। जब ग्रहण कर रहे थे, तो जब वे सिंहराज हमारे लिए गमन करने लगे। तो ऋषि ने कहा यह अतिथि है। उन्होंने अतिथि कहते ही तो सिंहराजों ने हमारे चरणों की भी वन्दना की और वन्दना करके, हम उस आसन पर विद्यमान हो गये। विद्यमान हो करके ऋषि से कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते है, कि यह जो चन्द्रमा भास रहा है, चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश ले करके अमृत को देता है। तो यह अमृत हमें कैसे प्राप्त होता है? इस अमृत को हम कैसे पान कर सकते है। ०८.०४.१९८५

573. ब्रह्म वेत्ता

राजा जनक विदेह कौन है? जो निर्मोही रहने वाला है, जो कर्त्तव्यवाद का पालन करता है। राजा जनक के, जब राष्ट्र को हमने किसी काल में दृष्टिपात किया, तो वह स्वयं राष्ट्र में, उस अन्न को ग्रहण करते थे, जिस अन्न का कोई अधिकारी न हो कहीं पर। स्वयं कला कौशल करके द्रव्य को पान करते थे। वह राजा परमपिता परमात्मा का चिन्तन करते थे, पंच-याग करते थे। संगतिकरण में, यागों में परिणित हो करके, प्रजा का पालन करना और अपने को ऊँचा बनाना, सुसज्जित उनका क्रियाकलाप था। उनके विश्राम की एक सूक्ष्म सी स्थली रहती, राष्ट्र का क्रियाकलाप करते रहते थे। राष्ट्र से उन्हें अवकाश प्राप्त होता तो प्रभु का चिन्तन, ऋषि-मुनियों के सत्संग, ऋषि-मुनियों की सभाएं होती रहतीं। ब्रह्म-चिन्तन होता रहता। प्रश्न होता रहता, कौन ब्रह्मवेत्ता है? कौन ब्रह्म की उड़ान ऊंची उड़ रहा है? कहीं याज्ञवल्क्य को ऊंचा कहा, कहीं अष्टाचक्र को ऊँचा कहा है कि मेरे पूज्य गुरु रहे हैं, कहीं अर्द्धभाग को, कहीं महात्मा दिग्ध को, नाना कहीं अश्वल को अपना पुरोहित कर करके राष्ट्र करे, ब्रह्म-विद्या में परिणत करा दिया।

574. राजा जनक विदेह

जिस भी काल में राजा के यहाँ कोई भी ध्वनि आई, तो ब्रह्म की आ रही है, ब्रह्म-ज्ञान की आ रही है, तरंगवाद की आ रही है, उसका राष्ट्र एक भव्य पवित्र रहा है। अकाल पड़ता तो राजा स्वयं कृषिका उद्गम करते, तो समय पर वृष्टि हो जाती थी। तो राजा जनक विदेह कहलाते थे। १३.०३.१९८५

575. लोमश ऋषि

एक समय कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज प्रातःकाल की पवित्र बेला में विष्णु के ऊपर विचार-विनिमय प्रारम्भ करने लगे। महर्षि लोमश मुनि बोले हे ऋषिवर! यह विष्णु कैसा है? तो कागभुषुन्ड जी कहते हैं-हे ऋषिवर! यह जो विष्णु है यह पालन करने वाला हमारे अन्तर्हृदयों में विद्यमान हो करके, हमें विशुद्ध प्रेरणा प्रदान करता रहता है। उसी प्रेरणा को हम पान करते हुए, अपने में नम्र बन करके, हम योगाभ्यास करते हैं। हम प्राण और अपान को मिलान में लाते रहते हैं। प्राण और अपान में हम याग करते रहते हैं और अपने अन्तर्हृदय में विष्णु का दर्शन करते रहते हैं। ३१.०७.१९८५

576. ब्रह्मा पूज्यपाद गुरुदेव के गुरु

यहाँ मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि चलो! आज तो मगध राष्ट्र में भ्रमण करके आते हैं, भ्रमण करते मगध राष्ट्र में जब कवन्धि व्रेतकेतु ऋषि के द्वार पर पंहुचे तो उन्होंने स्वागत किया और आसन दे करके वन्दना की। विराजामन हो कर पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रश्न किया कि हे ब्रह्मे! कवन्धि क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि-प्रभु! मैं देव याग के लिए चिन्तन कर रहा हूँ, देव याग करना चाहता हूँ, पूज्यपाद ने कहा कि कि देव याग तुम्हें नही आता। उन्होंने कहा कि मैं देवयाग जानता तो हूँ, उसके ऊपर कुछ अनुष्ठान करना चाहता हूँ, प्रभु! यह जो मैं देवयाग करने जा रहा हूँ, इसका देवता कौन है? पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि जिस देवयाग को आप करना चाहते हैं, उसका देवता अग्नि है। उन्होंने कहा कि भगवन! एक समय कात्यायन के गृह में मेरा वास हुआ था। कात्यायन से मैंने यह प्रश्न किया, तो उन्होंने देवता सूर्य वर्णन किया था, आप अग्नि का वर्णन कर रहे हैं, तो प्रभु! मैं कौन से देवता को स्वीकार करूं? गुरुदेव बोले कि हे कवन्धि! सूर्य और अग्नि दोनों एक ही तुलना में स्वीकार किए जाते हैं, क्योंकि अग्नि की सूक्ष्म धारा से द्यौ का जन्म होता है और सूर्य से प्रकाश ले करके प्रकाशित है, वह भास रहा है।

कवन्धि ने कहा कि धन्य है प्रभु मेरी शंका का निवारण हो गया है, परन्तु भगवन! मैं एक वाक् और जानना चाहता हूँ कि हे प्रभु! यह जो मैं याग करने जा रहा हूँ, उसका उद्गाता कौन है? तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यह जो तुम याग करने जा रहे हो, इसका उद्गाता वायु है, वायु ही उद्गीत गाती है, मानव के हृदय में जब प्राण और मन दोनों का समन्वय होता है, तो उसके पश्चात उद्गीत गाया जाता है तो वह उद्गाता बनता है, उन्होंने कहा कि-प्रभु! आपका वाक्य यथार्थ है, परन्तु एक समय मैं रेणकेतु राष्ट्र में पंहुचा था तो उनके यहाँ श्वेत्तानामक एक ऋषि का वास करते थे, मैंने यह वाक् जब श्वेत्ता ऋषि से कहा तो उन्होंने वर्णन करते हुए यह कहा था कि इसका उद्गाता तो वाणी है, आपने वायु, प्राण और मन को कहा है मैं यह कैसे स्वीकार करूं?

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे कवन्धि! क्या तुम नही जानते हो? अब मैं तुम्हें वर्णन करना चाहता हूँ कि वायु गति है। वायु प्राण का प्रतिनिधत्व करने वाला है। प्राण का मन से, जड़वत से जब सन्निधान हुआ, तो चित्त का मण्डल बना और चित्त के मण्डल बनते ही उसका समन्वय आत्मा से होता है, आत्मा में जा करके संस्कारों की उपलब्धियां होती हैं, संस्कार जब जागरूक होते हैं, तो उसकी उपलब्धि हो करके, उससे वही चित्त मण्डल बना, मन और प्राण दोनों का समन्वय होते ही, वाणी में प्रारम्भ हो जाती है। इसीलिए जो उन्होंने कहा है वह भी यथार्थ है, जो हमने उच्चारण किय है, वह विस्तार से है तो इसीलिए वाणी, मन और प्राण देनों को ऊर्ध्वा में ले करके उद्गीत गाती रहती है, यज्ञशाला में देव याग, में उद्गाता उद्गीत गाता है और जब उससे प्रश्न करते हैं कि तुम उद्गीत क्यों गा रहे हो, उद्गाता क्यों बन गएं हो, तो वह कहता है कि मैं यज्ञमान की वाणी को पवित्र बनाना चाहता हूँ तो वह वायु वह मनस्तव, प्राणतव और चित्त के मण्डल को ले करके, वह आभा में नियुक्त हो करके अभ्युदय हो करके, वाणी से उसका मिलान होता है। जैसे उद्गाता की वाणी पवित्र है, ऐसे ही स्वाहा देने वाले यज्ञमान की वाणी पवित्र हो जाती है।

जब यह वाक् उन्होंने पान किया, तो वह प्रसन्न हो गये। कवन्धि ने कहा कि-प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि इस यज्ञशाला में यह जो अध्वर्यु बना हुआ है, यह कौन है? उन्होंने कहा कि यह अध्वर्यु आपो है, यह आपो कहलाता है, आपोमयी सर्वत्रता का अध्वर्यु यह जो सोम है, यह जो आपो है, यह आपो ही अध्वर्यु बना हुआ है, यही आपो है, जो यज्ञमान के वाणी ब्रहः उसके भी अपने में सींचता रहता है, किसी काल में साकल्य को ले करके अग्नि जो दूषित रूपों में रत्त रहने लगती है, उसको भी यह शोधन करता है, तो यह अध्वर्यु कहलाता है, यह कौन है, तो उन्होंने भगवन! अध्वर्यु जल को नही, उन्होंने पृथ्वी को अध्वर्यु कहा है। प्रभु!मैं आपके वाक्य स्वीकार करूं या शाकल्य मुनि के वाक्यों को स्वीकार करूं। भगवन्! मुझे यथार्थ उच्चारण कीजिए।

577. अध्वर्यु

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि याज्ञिक थे, यज्ञ के मर्म को जानते थे, मैं सर्वांग तो नही जानता परन्तु जितना जानता हूँ, उतना उच्चारण करूंगा। अध्वर्यु का अभिप्रायः यह है कि अध्वर्यु द्रव्य का स्वामी कहलाता है। जितना द्रव्य है, जितना साकल्य है, इसका पिण्ड बनाने वाला जल है। जितना भी पिण्ड आकार बनता है, वह पिण्ड बनाने वाला जल है इसीलिए जल हमारे यहाँ अध्वर्यु कहलाता है वैदिक साहित्य में अध्वर्यु जल को कहते हैं और जब पृथ्वी जल के समीप आती है, तो पृथ्वी के परमाणुओं का ही पिण्ड बनता है, जब तक वह आपो की प्राण सत्ता पृथ्वी के परमाणुओं में परिणत नही होती तब तक किसी वस्तु का पिण्ड नही बनता। माता के गर्भस्थल में भी जो मानव का पिण्ड बनता है, वह भी इसी रूप में बनता है बाह्य जगत में पिण्ड बनता है तो वह भी इसी रूप में बनता है पिण्ड द्रव्य बन करके साकल्य बन जाता है साकल्य बन करके वह जो अध्वर्यु है वह होताओं को साकल्य प्रदान करता है और वही साकल्य अग्नि में प्रवेश करता है अग्नि उसकी पुनरुक्तियां देखो, उसे सूक्ष्म बना देती है परन्तु पिण्ड का जो मौलिक रूप है, आपो का जो मौलिक रूप है उसको अग्नि शान्त नही कर सकती। वह परमाणुओं के रूप में तरंगों के रूप में प्रत्येक काल में बना रहेगा।

ऋषि ने कहा कि-प्रभु! यह मैंने स्वीकार कर लिया, परन्तु जो पृथ्वी के लिए कहा है, गुरुदेव बोले कि मैं उसका उत्तर दे रहा हूँ, पृथ्वी के परमाणु गुरूतव का आपो के बिना पिण्ड नही बनेगा। बिना आपो के यह पृथ्वी व्यंजनों वाली नही बन सकती, यह आपो ही तो वरुण कहलाता है, यही तो अन्न का भण्डार है। जितना भी संसार का अन्नाद है, प्राणी मात्र है उस सबका अध्वर्यु वरुण माना गया है, वह आपो माना गया है, वह आपो ही प्राण के रूप में परिणत रहता है। कृषक जब पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना कर देता है, तो वह आपोमयी ही बीज को पवित्र करके अन्न उत्पन्न करता है। एक को मानव पान करता है एक को पशु पान करता है, उसी को पान करके पशु दुग्ध देता है और मानव ओज की और तेज की उत्पति करता है। वह जो वरुण है, वही आपो हैं, वही आपो मानव के आसन के रूप में और ओढ़न के रूप में भी रहता है। इसीलिए यह अध्वर्यु कहलाता है यह संसार का अध्वर्यु है जो याग का अध्वर्यु है वही संसार का अध्वर्यु है।

कवन्धि ने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों की वन्दना की और कहा कि धन्य है प्रभु! आपने मुझे जो निर्णय कराय है, मेरा हृदय स्वच्छ बन गया है, क्योंकि वेद का ऋषि कहीं वेदमन्त्रों में यह कहता है कि जब तक मानव को याग नही करना चाहिए। जब तक शंकाओं से दूरी न हो जाएं। किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नही रहना चाहिए। शंका नही रहनी चाहिए। मानव शंका रहित हो करके ब्रह्मवेत्ता बने, शंका रहित ही याज्ञिक बनता है तो इसीलिए आज मेरा हृदय प्रसन्न हो गया है बहुत समय से मैं याग नही कर रहा था बाल्य काल में करता था मुझे शंकाएं बनीं, मैंने याग समाप्त करदिया कि जब तक शंका रहित नही होऊंगा तब तक याग नही करूंगा। मेरी शंका भगवन! आपने निवारण की है तो प्रभु! यह मैंने स्वीकार कर लिया है कि आपो ही अध्वर्यु माना गया है।

578. देव्याग में यज्ञमान का स्थान

ऋषि यह वाक् कह करके शान्त हो गये। वेद के आचार्य कवन्धि ने यह कहा कि-प्रभु! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस देवयाग में यज्ञमान का क्या स्थान है? यज्ञमान क्यों विशेषता में परिणत रहता है, कि उसकी वाणी को पवित्र बनाया जाता है, यह वाक् श्रवण करके पूज्यपाद गुरुदेव मग्न होने लगे और कहा कि कवन्धि! तुम इतना भी नही जानते? उन्होंने कहा कि-प्रभु! मैं कुछ जानता हूँ कुछ मेरे हृदय में शंका बनी रहती है, गुरुदेव ने कहा कि यह जो यज्ञमान है वह त्रिपति कहलाता है, यह आत्मस्वरूप है क्योंकि यज्ञमान के साथ आत्मा का सम्बन्ध आता है, जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है, तो सृष्टि के प्रारम्भ में तीन ही तो पदार्थ होते है। जड़वत चेतनवत और महाचेतनवत। जब सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है, तो वह जो परमपिता परमात्मा है, वह ब्रह्मा बन करके ज्ञान की धाराओं का रूपान्तर करते रहते हैं। आत्मा उस काल में यज्ञमान बनता है और परमात्मा के सन्निधान मात्र से जड़वत प्रकृति के परमाणु अपने-अपने स्वभावों में जागरूक हो जाते है। रचना करने वाला रचना में रत्त हो जाता हैं। जब इस प्रकार की प्रतिभा अग्रणीय बन जाती है, तो यह आत्मा यज्ञमान के स्वरूप में रत्त रहता है। आत्मा के द्वार कोई भी संस्कार नही जाना चाहिए, इसीलिए साकल्यों को द्रव्यों को ले करे यज्ञमान की वाणी को पवित्र बनाया जाता है। ०२.०८.१९८५

579. महर्षि लोमश मुनि

महर्षि लोमश मुनि ने कहा कि मैं जब माता के आँगन में, क्रीड़ा करता था, तो माता मुझे ब्रह्म ज्ञान की, आभा में परिणत कराती रहती, मैंने ऐसा श्रवण किया है, कि जब माता की लोरियां, तो मुझे स्मरण नही हैं, परन्तु, उसके पश्चात काल में माता अपने आँगन में प्रवेश कराती है, भोज्य कराती रहती है, तन्दुलों का भोज्य करा करके, गौ घृत के द्वारा प्रायः मुझे जब अन्नाद का प्रदान किया, तो कहती थी कि यह जो प्रथम ग्रास हैं, हे बाल्य! वह तेरे ब्रह्म ज्ञान का है, तू ब्रह्म ज्ञानी बनना। परन्तु द्वितीय जो ग्रास प्रदान किया वह प्राण कि लिए किया है। तू प्राण को जानने वाला बन, तृतीय जो उन्होंने ग्रास का प्रदान कराया, तो यह कहा कि तेरा जो मन है, वह पवित्र हो जाए। तो माता तीन ग्रास दे करके यह कहती है कि बालक, तू ब्रह्मवेत्ता बन, प्राण की प्रतिक्रिया को जान और यह जो मन है, इसकी आभा को ऊर्ध्वा में ला। तो यह विचार आया, कि माता ने बाल्य को अपने आँगन में ही, उसे क्या बनाना चाहती है, वह मेरी प्यारी मां, तो वह माता भी है, पितर भी है।

पितर, क्या चाहता है, कि मेरे द्वार से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन जाएं, प्राणों का निदान करने लगे, और यह जो मन प्रकृति का तन्तु हैं, जो मन इन

तीनों रूपों में यह जो मन है, यह अन्न के रूप में विद्यमान हैं, ऋषि-मुनियों ने ऐसा माना हैं। महर्षि लोमश मुनि का यह कथन रहा हैं, कि यह जो मन है, यह अन्नाद में निहित रहता हैं, इसीलिए विचारा कि मानव समाज को ऊँचा बनाने के लिए, हमें पितर यागी बनने के लिए, हमें अन्न को पवित्र बनाना है, अन्न कैसे पवित्र होगा? माता की भावना से अन्न पवित्र होगा और उस अन्न को पान किया जाता है, तो वह जब पान किया जाता है, तो उससे मन में जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, उन तरंगों का जन्म होता है, और वही क्योंकि मन तरंगें, मन से गुथी हुई होती हैं और वह मन से गुथी होने से वही तरंगों से, मानव के जीवन की धारा का प्रारम्भ होता हैं। ०४.०८.१९८५

580. गुरुदेव के साथ भ्रमण

बहुत पुरातन काल में एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुव बोले कि हे ब्रह्मचारी! आओ, आज भ्रमण कर आएं मैं और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भ्रमण करते-करते कुक्कुट मुनि महाराज के द्वार पर पंहुचे, तो उन्होंने नाना प्रकार के कन्द मूल ले करके स्वागत किया। महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज अपने में याज्ञिक बने हुए थे। गुरुदेव ने कहा कि-प्रभु! आप क्रियाकलाप करते हैं? वेद के आचार्य कुक्कुट मुनि ने कहा कि-प्रभु! मैं इस समय देव याग कर रहा हूँ, मैं देवताओं का आह्वान करता रहता हूँ, गुरुदेव ने कहा कि-प्रभु! आप देवताओं का गान गाईए। वेदमन्त्रों से देवताओं का जब जटा पाठ में गान गाने लगे, तो अपनी-अपनी गुफाओं को त्याग करके कुछ महात्मा, महान ऋषि उनके समीप आ गये। परन्तु जब उन्होंने और उज्ज्वलता में देवतव का गान गाया और वह याग करने लगे, सुगन्धि करने लगे, अग्नि के साकल्य प्रदान करने लगे तो इतने में मृगराज, सिंहराज भी उनके समीप विद्यमान हो गये। सर्पराज, सिंहराज भी उस सुगन्धि को ग्रहण करते हैं, क्योंकि परमात्मा हिंसक नही हैं, इसीलिए देवता हिंसक नही हैं, इसीलिए मानव को अपनी हीनता को त्याग करके देवताओं के गुणों को अपने में धारण करना है। ०३.०८.१९८५

581. महर्षि लोमश मुनि जी का माता का वात्सल्य

महर्षि लोमश मुनि ने यह कहा कि मैं जब माता के आँगन में, जब क्रीड़ा करता था, तो माता मुझे ब्रह्म ज्ञान की, आभा में परिणत कराती रहती, मैंने ऐसा श्रवण किया है, कि जब माता की लोरियां, तो मुझे स्मरण नही हैं, परन्तु उसके पश्चात काल में माता अपने आँगन में प्रवेश कराती है, भोज्य कराती रहती है, तन्दुलों का भोज्य करा करके, गौ घृत के द्वारा प्रायः मुझे जब अन्नाद का प्रदान किया तो कहती थी कि यह जो प्रथम जो ग्रास हैं, हे बाल्य! वह तेरे ब्रह्म ज्ञान का है तू ब्रह्म ज्ञानी बनना। परन्तु द्वितीय जो ग्रास प्रदान किया वह प्राण कि लिए किया है। तू प्राण को जानने वाला बन, तृतीय जो उन्होंने ग्रास का प्रदान कराया, तो यह कहा कि तेरा जो मन है, वह पवित्र हो जाए, तो माता तीन ग्रास दे करके यह कहती है कि बालक तू ब्रह्मवेत्ता बन, प्राण की प्रतिक्रिया को जान और यह जो मन है इसकी आभा को ऊर्ध्वा में ला। तो मुनिवरों! देखो, यह विचार आया, कि माता ने देखो, बाल्य को अपने आँगन में ही, उसे क्या बनाना चाहती है, वह मेरी प्यारी मां, तो, वह माता भी है, पितर भी क्या चाहता है कि मेरे द्वार से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन जाएं, प्राणों का निदान करने लगे, और यह जो मन प्रकृति का तन्तु हैं, जो मन इन तीनों रूपों में यह जो मन है, यह अन्न के रूप में विद्यमान हैं, ऋषि-मुनियों ने ऐसा माना हैं। महर्षि लोमश मुनि का यह कथन रहा हैं, कि यह जो मन है, यह अन्नाद में निहित रहता हैं, इसीलिए विचारा कि मानव समाज को ऊँचा बनाने के लिए, हमें पितर यागी बनने के लिए, हमें अन्न को पवित्र बनाना है, अन्न कैसे पवित्र होगा, माता की भावना से अन्न पवित्र होगा और उस अन्न को पान किया जाता है, तो वह जब पान किया जाता है, तो उससे मन में जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, उन तरंगों का जन्म होता है, और वही क्योंकि मन तरंगें, मन से गुथी हुई होती हैं और वह मन से गुथी होने से वही तरंगों से, मानव के जीवन की धारा का प्रारम्भ होता हैं। ०४.०८.१९८५

582. गुरुदेव के साथ तुयंगत ऋषि

एक समय पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा ब्रह्म विद्या को पान कर रहा था, तो ब्रह्म विद्या को पान करके व्रेतकेतु ऋषि महाराज मेरे ब्रह्म के, पितर कहलाते थे, वह एक समय बोले कि हे ब्रह्मचारी! चलो, आज भ्रमण करते हुए ऋषि-मुनियों के दर्शन करेंगें, तो पूज्यपाद गुरुदेव हमें भ्रमण करते हुए कहीं दण्डक वनों में पंहुचे दण्डक वनों में एक ऋषि रहते थे, जिन ऋषि का नाम तुयंगत ऋषि महाराज था। तो तुयंगत ऋषि महाराज अपने में साधना प्रभु के द्वार पर जाना चाहते थे, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा हे तुयंगेत्वर ऋषि महाराज! यह तुम क्या कर रहे हो? क्यों विराजमान हो? तो उन्होंने कहा-प्रभु! मैं मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता हूँ, मैं ग्रहण करने से पूर्व यह विचार रहा हूँ क्या कौन-सी धारा को मैं अपनाऊं? कहीं तो वेद का मन्त्र अग्नि को ब्रह्माग्नि कहता है, कहीं वायु के वेग को प्राणों की धारा कहता है, और प्राण कहीं परमात्मा से सम्बन्धित है। तो मैं इस चिन्तन में लगा हुआ हूँ, कि कौन-सी धारा को अपनाऊं। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि कि हे तुयंगेत्वर ऋषि महाराज! तुमने कौन-सी धारा को अपनाया है? उन्होंने कहा मैंने अग्नि की धारओं को अपनाने का प्रयास किया है। यह अग्नि, वाणी के रसों में प्रवेश कर जाती है। तो शीतल बन जाती है, मैं इसको शीतल बनाने के लिए, अब मैं याग कर्म कर रहा हूँ। वह अपने में याग करने लगे, जब पितर यागों में लग गएं, तो उन्होंने पुनः कहा कि भगवन्! यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा मैं पितर याग कर रहा हूँ। मैं पितरों की पूजा करना चाहता हूँ जिससे मेरा वायुमण्डल पवित्र बन करके, मेरा अन्तर्हृदय पवित्र हो जाएं। तो अग्नि का चयन कर रहे हैं, वह अग्नि का चयन कैसे करते थे? अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उससे समीप विद्यमान हैं, उसे नमस्कार करके कहते हैं, हे अग्नि! तू प्रकाश का द्यौतक है, प्रकाश देने वाली है, हे अग्नि! तू जिस रूप में मुझे दृष्टिपात कर रही है, रूप तेरा जब विच्छेद हो जाता है, तो तू वाणी के रूप में प्रवेश कर जाती है, जब वाणी का रूप ही तेरा विच्छेद हो जाता है, तो तू वायु की प्रतिभा को ले करके तू प्राण के साथ मेरे अन्तर्हृदय में रमण करती है, जब उससे भी ऊर्ध्वा में गति करती है, तो मन को सहकारिता बना करके, प्रभु की पगडण्डी से मिलन की पगडण्डी को ग्रहण करती है, इस अग्नि के ऊपर, वह चयन करने लगे जब चयन करने लगे, तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा-हे ऋषिवर! हे पुत्रों! यह अग्नि का चयन कर रहा है, यह अग्नि को पितर जान करके इसका चयन कर रहा है चलो, आज हम भी पितर याग करेंगें। अग्नि का चयन करेंगें। ऋषि ने कहा कि हम दोनों भयंकर वनों में, दूरी जा करके पूज्यपाद गुरुदेव के संरक्षण में भयंकर वनों में अग्नि का चयन करने लगे, वह अग्नि जो हमारे अन्तर्हृदयों में प्रदीप्त हो रही थी, हम दोनों उसका

चयन करने लगे, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते थे, कि यह जो अग्नि का चयन मैं कर रहा हूँ, यही तो अग्नि का चयन जब मैं वैज्ञानिको के द्वार पर जाते हैं, तो अग्नि तरंगें बन करके वह यन्त्रों का निर्माणित करने लगती है, यन्त्रवादी बन करके, वैज्ञानिक ऊँचा बनता है, वह पूजा कर रहा है।

आओ, हम भी आज वाणी की पूजा करें, यह वाणी अग्नि बन करके रहती है। उस अग्नि का पूजन करने लगे, वह विचित्र अग्नि, जो वाणी के रूप में रहती हैं, विचित्र अग्नि है, जो त्रिगुणात्मक रूपों में रहती है। वही अग्नि है जो भृकुटी में ध्यानावस्थित हो करके, उसमें वायु की पुट लगी रहती है, वही अग्नि जब ब्रह्मरन्ध्र में योगी प्रवेश करता है तो वहाँ नाना प्रकार के अनहाद, स्वर ध्वनियां होती रहती हैं, प्राणों की स्वर ध्वनियां भी इसको ले करके होती हैं, उन्हीं स्वरों को, अपने में ग्रहण करता हुआ, बुद्धिमान व्याकरण की रचना कर देता है, व्याकरण की रचना का जो प्रादुर्भाव हुआ है, वह मानव के मस्तिष्क में, जो मेरे प्यारे प्रभु ने नाड़ियों का जो आपस में तारतम्य लगा हुआ है, नाड़ियों का जो ग्रीच लगा हुआ है वहाँ जब अग्नि का वेग जाता है। वायु को ले करके, तो भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियां होने लगती हैं। तो बाह्य ध्वनि नही आती है, वही ध्वनि व्याकरण की उत्पति का मूल बनती है।

तो वेद के ऋषि ने कहा तो यह पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कहा है कि यदि तुम पितरों की सेवा करना चाहते हो, तो पितरों की आज्ञा का पालन करना चाहते हो, तो तुम अग्नि को अपना पितर बना करके चलो, और तुम अपनी वाणी में पुट लगा करके वायु की पुट उसमें लग करके, ब्रह्मरन्ध्र से ले करके, मूलाधार से ले करके ब्रह्मरन्ध्रों तक जो भी ध्वनि का पिपाद आए उसको ग्रहण करने का नाम अग्नि की पूजा है, और वह अग्नि हमारा पितर बन करके रहती है। वही तो अग्नि पितर कहलाती है। ०६.०८.१९८५

583. महानन्द जी की प्रेरणा

आज का हमारा वेद का मन्त्र नाना प्रकार की चर्चाएँ कर रहा था और नाना प्रकार से हमें प्रेरित कर रहा था। परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी की प्रेरणा एक भिन्न रहती है। उस प्रेरणा के आधार पर मानो कोई वाक् तो उच्चारण नहीं किया जा सकता क्योंकि वेदमन्त्र कुछ कह रहा है। ०९.०८.१९८५

584. महर्षि लोमश मुनि

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहे है। आज मैं महर्षि लोमश मुनि का जीवन जैसे इससे पूर्व काल में प्रसारित किया जा रहा था। जैसे कागभुषुण्डी का जीवन है। उनके जीवन चरित्र को यदि हम आधुनिक जगत में उस काल को साधारण काल के प्राणी, उस साहित्य की रचना को अपनी प्रतिभा में लाएँगे तो उसमें अन्तर्द्वन्द्व आ जाएगा। क्योंकि वह उस प्रकार का नहीं रहता, जो उस काल में था। एक माता का जीवन है, परन्तु वह उस काल, रूप में बद्ध में नहीं रह पाता था, जिस काल, रूप में वह उस काल में था। लाखों वर्षो के पश्चात या कई हजार वर्षों के पश्चात उस प्रकार का वह जीवन नहीं रह पाता, जिस जीवन की हम वास्तव में कल्पना कर सकते है। ०९.०८.१९८५

585. याग का आयोजन

पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व के काल में भी यागों का चयन कराया और जिस स्थली पर हमारी यह प्रायः आकाशवाणी जा रही है, वहाँ भी एक याग का आयोजन मैं दृष्टिपात कर रहा था। मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न तो रहता ही है, और प्रायः यज्ञमान के साथ रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि मानव का हृदय से समन्वय होता है। परन्तु जब यज्ञमान याग क्रियाओं में परिणत होता है तो उसकी अन्तरात्मा में घृणात्मक विचार न रह करके विशुद्ध विचार रहने चाहिए। जिससे देवताओं को विशुद्ध रूप से आहुति प्रदान की जाएं क्योंकि हमें हूत तो करना ही है। १३.०९.१९८५

586. महानन्द जी गुरुदेव के साथ यागों में

बहुत समय हुआ पूज्यपाद गुरूदेव के द्वारा, मैं बहुत से विशाल यागों में भी जाता रहा हूँ और मुझे राजा महाराजाओं के उन यागों को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। वृष्टि यागों में भी, पुत्रेष्टि यागों में भी, वाजपेयी और अग्निष्टोम यागों में भी, अश्वमेध यागों में भी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। १३.०९.१९८५

587. महाराज अश्वपति के राष्ट्र में

एक समय मुझे स्मरण है महाराज अश्वपति के राष्ट्र में कुछ ऋषिवर गाड़ीवान रेवक मुनि के द्वार पर पहुंचे। गाड़ीवान रेवक मुनि से यह प्रश्न किया गया कि महाराज! मानव अपने को मृत्युञ्जय बनाना चाहता है, वह दार्शनिक बने। दर्शनों की प्रतिभा को जानने वाला बने। दर्शन क्या है? अपनी मानवीयता का दर्शन करना चाहिए, कि तुझे केसा बनना है? तू कौन है? वह विचार मानव के समीप आते हैं। जब संसार में तू इस परमात्मा के जगत में आया, तो क्यों आया और जाएगा तो क्यों जाएगा? दो ही प्रश्न मानव के समीप आते रहते हैं, तो गाड़ीवान रेवक मुनि ने कहा, ये दोनों प्रश्न ऐसे हैं, जिनको गम्भीरता से विचारना है। उनके आश्रम में नित्य-प्रति अध्ययन होता रहता था, अध्ययन आध्यात्मिकवाद का और मृत्युंजय पर होता रहता था। गाड़ीवान रेवक मुनि ने तो यह कहा है कि मृत्यु अपने में कोई रहस्यतम नहीं है। क्योंकि मृत्यु अपने में कोई वाक्य की रचना नहीं कर सकती। मृत्यु मानव का अज्ञानतामयी एक शब्दार्थ है। ज्ञान और वेद में तुम पहुंचोगे अथवा विज्ञान के स्तर पर पहुंचोगे, तो वैज्ञानिक रहस्यतमों में भी मृत्यु का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। आध्यात्मिक विज्ञान-वेत्ता भी अपने को यह स्वीकार करते हैं कि वास्तव में कोई मृत्यु नहीं है। जो साधक जन हैं, जो आत्मा और परमात्मा की आभा में ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ते रहते हैं और मोक्ष की पगडण्डी को पान करना चाहते हैं। तो वहाँ भी मृत्यु का कोई अवृत नहीं बन पाता। जैसे एक मानव कहीं आक्रमण करता है, तो वहाँ के प्राणीमात्र को यह ज्ञान हो जाता है कि तेरे पर आक्रमण हो रहा है। चाहे परोक्ष में प्राणी हो चाहे अपरोक्ष में हो।

एक समय ऋषि के आश्रम में वेद गान हो रहा था। तो वेदों की ध्वनि को पान करने के लिए कहीं से सर्पराज आ गया और उस ध्वनि को श्रवण करने लगा। एक ब्रह्मचारी के हृदय में धृष्टता आई कि मैं इसको मृत्यु को पहुंचाना चाहता हूँ, जिससे इसका शरीर और आत्मा दोनों भिन्न हो जाएँ, ऐसा क्रिया-कलाप मुझे बनाना है। क्योंकि यह हिंसक प्राणी है, यह इस उद्घोष को पान करने नहीं आया। यह हमें नष्ट करने के लिए आया है। सर्पराज उस मानव की तरंगों को जान गया। जब

उसके हृदय से तरंगों का उद्घोष हुआ अथवा उद्गीत हुआ, तो उसको जान गया। जानने का प्रयास यह हुआ कि सर्पराज वहाँ से धीमी-धीमी गति करने लगा। जब गति करने लगा, तो उसके विचार आते ही उसकी तरंगें सर्पराज के हृदय को स्पर्श कर गयीं और सर्पराज वहाँ से गमन करता है। जहाँ पृथ्वी में उसकी बिल बने हुए थे, उसमें वह अपने को प्रविष्ट कर गया।

तो विचार-विनिमय क्या? मानव को इतनी सूक्ष्म धारा बना लेनी चाहिए, कि उसके विचारों का आदान-प्रदान होता रहता है। विचारों में इतनी सूक्ष्मता होती है, कि दूसरा प्राणी भी उन विचारों को अपने में पान करता रहता है। साधारण प्राणी भी अपने में विचारता रहता है, कि मेरे पर कोई आक्रमण कर रहा है। तो विचार-विनिमय क्या कि गाड़ीवान रेवक के आश्रम में साधक अपनी साधना में परिणत होते रहे।

588. ब्रह्मचारी कवन्धि की माता जी की तरंगे

एक समय ऐसा मुझे स्मरण है, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के द्वारा ब्रह्मचारी कवन्धि कुछ अनुसन्धान कर रहे थे। आध्यात्मिक विज्ञान के ऊपर अन्वेषण कर रहे थे कि मैं विज्ञान के आँगन में तो पहुंच गया हूँ, परन्तु मैं आध्यात्मिक अपने को बनाना चाहता हूँ। आध्यात्मिक विज्ञान में कितना बल है। कितनी शक्ति है, मैं उसे जानना चाहता हूँ। तो ब्रह्मचारी कवन्धि साधना करता हुआ, प्रत्येक वेदमन्त्र के ऊपर अन्वेषण भी करता रहता था। तो विचार क्या, एक समय जब वह साधना कर रहे थे, मनस्तत्व और प्राणस्तत्व दोनों को मिलान कर रहे थे, वायु-मण्डल में प्रवेश करना चाहते थे, वायु जिन तरंगों को अग्नि की धाराओं में से अपने में धारण कर लेती है और वही वायु उसको अन्तरिक्ष में प्रवेश करा देती है। इसके ऊपर ब्रह्मचारी कवन्धि कुछ अनुसन्धान कर रहे थे, कि मैं इन तरंगों को जानना चाहता हूँ। ब्रह्मचारी कवन्धि सोम वृत्तिका ऋषि के पुत्र थे, एक समय उनकी माता रुग्ण हो गयी। जब रुग्ण हो गई क्योंकि माता ने बालक को शिक्षा दे करके उसे ब्रह्मावर्चोसि का पालन कराते हुए, वह ब्रह्मचारी ही बन गए थे। ऋषि के आश्रम में माता अपने हृदय से पुकार करने लगी और अपने अन्तर्हृदय में प्रवेश करने लगी, उद्घोष होने लगा, कि मेरा पुत्र जो ब्रह्मचारी है, उसका मेरे से मिलन होना चाहिए। मेरा अन्तरात्मा उसे पुकार रहा है। हे प्रभु! तू मेरे पुत्र को मेरे से मिलान करा। माता की वह जो पुकार थी, हृदय में वह जो विडम्बनामयी विचारधारा थी, वह विचार वायु-मण्डल में प्रवेश करने लगे। वही तरंगें घोषित होती हुई दण्डक वनों में ब्रह्मचारी कवन्धि के हृदय को स्पर्श करने लगी। माता कहीं है पुत्र कहीं है, जो उद्घोषमयी वाणी है, तरंगें हैं, वह ब्रह्मचारी के अन्तर्हृदय में प्रवेश होने लगीं। मन को अन्तरात्मा में कवन्धि लगा रहा है, परन्तु लग नहीं पा रहा है। वह प्राण के साथ मिलान करना चाहता है, परन्तु उसको वह ममतामयी लगने नहीं दे रही। ब्रह्मचारी बड़ा आश्चर्य-चकित हो करके गाड़ीवान रेवक से बोले कि हे प्रभु! मेरा अन्तरात्मा इतना कुशल है। मैं बहुत समय से साधना कर रहा हूँ अन्तरात्मा में मैं साधक बन करके साधना के क्षेत्र में प्रवेश हो गया हूँ। परन्तु मेरा अन्तरात्मा भी विचित्र है। आज मेरा मनस्तत्व साधना में क्यों नहीं परिणत हो रहा है? जब ब्रह्मचारी कवन्धि ने यह कहा तो याग समाधि में वह समाधिष्ट हो गए, मन और प्राण दोनों को एकाग्र करते हुए, वह अपने बाह्य और आन्तरिक ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर गए। जब आन्तरिक ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया, तो ब्रह्मचारी को कोई ममतामयी तरंगें स्पर्श कर रही हैं। ब्रह्मचारी को गाड़ीवान रेवक ने कहा कि मैंने अपने साधना में अपने मस्तिष्क में मैं ब्रह्माण्ड के कुल में प्रवेश कर गया था, कोई ममतामयी तरंगें तुम्हें स्पर्श कर रही हैं, तो ब्रह्मचारी कवन्धि ने अपने में चिन्तन करना प्रारम्भ किया। जब गम्भीर मुद्रा में प्रवेश हो गए, तो यह प्रतीत हुआ और वेद का मन्त्र स्मरण आया और वेदमन्त्र यह कह रहा था यदि तुम ममता में प्रवेश हो गए हो और ममतामयी विचार तुम्हारे अन्तर्हृदय को स्पर्श कर रहे हैं। तो कोई न कोई ममता वाला जिसको तुमने सन्तुष्ट नहीं किया है वह तेरे समीप तरंगों का उद्घोष कर रहा है। वह तरंगें तेरे समीप आ रही हैं। १८.०९.१९८५

589. महाराजा अश्वपति का राष्ट्र

महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं आता था जो किसी का संग्रह किया हुआ हो या किसी के श्रंगार को हनन करके द्रव्य आया हो, या किसी की अन्तरात्मा को दुःखित करके। राजा स्वयं शासनवादी बन जाता है, इन्द्रियों पर तो प्रजा उससे पहले बन जाती है, और जब प्रजा और राजा दोनों अनुशासन में लग जाते हैं तो शान्ति की स्थापना हो जाती है। यह याज्ञिक बन जाते हैं। वह सबसे प्रिय याग कहलाता है। वेद का आचार्य यह कहता है कि वह राजा अपने में पवित्र है और प्रजा को ऊँचा बनाने मे लगा हुआ है। अपनी अन्तरात्मा को हूत कर रहा है, समर्पित कर रहा है ओर उस धारा में रत्त हो गया है जिसमें जाने के पश्चात एक आनन्द की स्थापना हो जाती है। राजा का तो एक ही नृत्य रह जाता है कि आतताईयों को ज्ञान के द्वारा शिक्षा दे या उसे अस्त्रों से दंडित करे, यही राजा का कर्त्तव्य है। इससे प्रजा की रक्षा होती है। प्रजा की रक्षा उस काल में होती है जबकि राजा स्वयं अपने जीवन में महान बन जाता है। महाराजा अश्वपति ने अपने विचारों में भिन्न-भिन्न प्रकार का उद्घोष किया है। मैं परमात्मा को अपने में लाना चाहता हूँ। परमपिता परमात्मा का जो रचा हुआ अनुपम जगत है, इसके ऊपर वह अनुसन्धान करता है, अन्वेषण करता हुआ उसको विचारतारहता है, कि मैं वास्तव में परमात्मा के अमूल्य जगत को जानना चाहता हूँ। उसमें लगा हुआ है। वह साधक बन करके साधना करता रहा है। प्रत्येक अणु और परमाणु में प्रभु को दृष्टिपात कर रहा है। लोक-लोकान्तरों को उसमें पिराया हुआ स्वीकार करता है। वह माला बन जाती है और वह माला का सूत्र बन जाता है। तो वह मृत्युञ्जय बन जाता है, जो इस धारा में लगा हुआ है। १८.०९.१९८५

590. महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालयों की सभा

मुझे वह काल स्मरण है, एक समय महाराजा अश्वपति ने एक सभा की। जितने भी राष्ट्र में विद्यालय थे, उन विद्यालयों के राष्ट्रीय कृतियों में बृह्मा, आचार्यों को नि़मित किया और आचार्यों की एक सभा हुई और महाराज अश्वपति ने सभा में अपना यह उद्घोष किया कि हे आचार्यजनो! तुम अपने जीवन की आचार संहिता बनाते रहते हो। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि राष्ट्र में विद्या का जो घोष है, जिस विद्या को तुमने निगला है, वह विद्या तुम ब्रह्मचारियों को प्रदान करते हो, विद्यार्थियों को प्रदान करते रहते हो। उससे तुम क्षत्रिय और वैश्य, शूद्र इनमें इनकी बुद्धि को एक अंकित करते हुए, तुम चुनौती प्रदान करते हो। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह राष्ट्रीयता की जो विद्या है, यह और कैसे ऊँची बन सकती है? उसका कोई हमें उद्घोष कीजिए। आचार्यजनों ने कहा कि हे राजन्! यदि

तुम हमारे वाक् को स्वीकार करते हो, तो हमारे जीवन में यह आता है, कि यदि वह ब्रह्मचारी विद्यालय में अध्ययन कर रहा है, जो ब्रह्मचारी माता की लोरियों का पान कर रहा है, गृह आश्रम में जिस ब्रह्मचारी का निर्माण हो रहा है, वह स्वतः अपने में सुगन्धित हो जाए। जब वह विचारों की सुगन्धि से सुगन्धित होगा, तो बाह्य-जगत की जो अमूल्य सुगन्धि है, उसको वह जान करके राष्ट्रीयता में परिणत करता रहेगा।

राजा ने कहा-हे आचार्यो! मैं तुम्हारे उद्देश्य को जान नहीं पाया हूँ। उन्होंने कहा, प्रभु एक समय हमारा विद्यार्थियों का एक मानव समूह द्वितीय राष्ट्र में पहुंचा। परन्तु वह जब श्वेतकेतु राष्ट्र में पहुंचा, तो माधुरी माधुर्य एक राजा थे। जब उसके समीप पहुंचा, तो विद्यालयों का ब्रह्मचारियों ने निरीक्षण किया और ब्रह्मचारियों ने जब निरीक्षण किया, तो उन्होंने दृष्टिपात किया, प्रत्येक ब्रह्मचारी विद्यालय में अपने-अपने आसनों पर विद्यमान हो करके याग की प्रतिक्रिया को रचा रहा है, याग की प्रतिभा में रत्त हो रहा है। जैसे महाराजा वशिष्ठ मुनि के आश्रम में नाना ब्रह्मचारी प्रातःकालीन याग में परिणत हो करके वह अपने में उद्घोष आचार्यों से ब्रह्म-विद्या को पान करते थे। परन्तु कोई भी मानव हो, इस संसार में राजा हो, चाहे प्रजा हो, प्रजा में भी विद्यार्थी वर्ग हो, चाहे वह आचार्यजन जब तक उसमें याग की, याग का कर्मकाण्ड नहीं आ सकेगा, सत का आचरण नहीं करेगा, राष्ट्र को राष्ट्रवादी नहीं मानेगा और अपने में, अपने जीवन के राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकेगा, तब तक यह जगत ऊँचा नहीं बनेगा, आचार्यों ने जब ऐसा कहा तो राजा ने कहा-तुम्हारे आशय को नहीं जाना हूँ अब भी। परन्तु आचार्यों ने कहा प्रभु! जब तक मानव अपने स्वतः आचार संहिता नहीं बनाता है और उसकी जो आचार संहिता है, वही उसको महान बनाती है। राजा आने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, तो राजा को स्वतःअपनी आचार संहिता महान बनानी होगी और जब उसकी आचार संहिता पवित्र बनती है तो प्रजा की बनती रहेगी और जब प्रजा की बनेगी, तो यह संसार की बनेगी। इस प्रकार का विचार उन्होंने व्यक्त किया आचार्यों ने।

राजा ने कहा तो आज से तुम्हें एक नियमावली देते हैं कि तुम्हारे विद्यालयों में प्रायः प्रातःकालीन गऊओं का पालन होना चाहिए, गौ की सेवा होनी चाहिए। गौ कौन है? गौ दूध देने वाले पशु को भी गौ कहा जाता है, परन्तु गौ नाम इन्द्रियों को भी कहा गया है। मानव की ब्रह्मचारियों की इन्द्रियों पर संयम होना चाहिए, जब इन्द्रियों पर संयम हो जाता है, तो वह जो दुग्ध देने वाला पशु है उसको मन्थन किया जाता है और मन्थन करके उसमें श्रद्धामयी घृत का जन्म होता है। जैसे योगीजन अध्ययन करता रहता है, दर्शनों का अध्ययन करता रहता है, दर्शनों का अध्ययन करते-करते, उसे ज्ञान हो जाता है और ज्ञान के पश्चात उसे विवेक हो जाता है, तो विवेक क्या है? इसी प्रकार जैसे गौ का दुग्ध है उसको मन्थन किया जाता है और मन्थन करके श्रद्धामयी घृत का जन्म होता है।

तो इसी प्रकार घृत के तुल्य श्रद्धामय एक विवेक का जन्म होता है और वह जो विवेकी पुरुष है, वह जो विवेक में अपने को ले जाता है, वह जो विवेकी है, वही तो राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाता है। अपनी आचार संहिता उसकी बन गई है, क्योंकि उसने संसार के स्थूल जगत को त्याग दिया है। अपने विचार आकृतियों में रत्त हो करके विवेक को अपना लिया है।

591. विवेक

विवेक किसे कहते हैं? किसी भी वस्तु में उसकी आसक्ति नहीं रहती। किसी भी वस्तु में वह आसक्त नहीं होता, वह केवल जो भी क्रिया-कलाप हो रहा है, वह भी प्रभु के आश्रित कर देता है और प्रभु का जगत यह स्वीकार करता है और प्रभु का यह राष्ट्र स्वीकार करके वह संसार में अपने जीवन का, जीवन का अवरोध करने लगता है, तो वह विवेकी पुरुष अपने में महान बन करके संसार को, राष्ट्र को ऊँचा बना रहा है। राजा से यह घोषणा कराई कि ब्रह्म तुम्हारे यहाँ गऊओं का पालन होना चाहिए।

गऊ किसे कहते हैं? एक तो विवेकी पुरुष गौ के दुग्ध का मन्थन कर रहा है। वह कौन-सा दुग्ध है? जैसे मानव की पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और पांच ज्ञानेन्द्रियों का वह विषय एकत्रित करता है। उसके दुग्ध, उसके विषय रूपी दुग्ध को एकत्रित करता है। जैसे मैंने साकल्य की कल्पना की है, वह उसे एकत्रित करता है। नेत्रों से वह रूप को लेता है, घ्राण से वह सुगन्धि को लेता है, मन्द सुगन्ध को लेता है और वह श्रोत्रों से शब्द को लेता है, त्वचा से स्पर्श लेता है, प्रीति लेता है और रसना से रसों को लेता है। परन्तु इनका वह एक विषय वह इन्द्रियों को उसके दुग्ध को निकाल लेता है। वह इन्द्रियों का दुग्ध कहलाता है और उसका जब मन्थन करता है, जब उन विषयों का मन्थन करता है, उसका चिन्तन करता है, विशाल चिन्तन करता है तो नवीन ब्रह्माण्ड उसके समीप आ जाता है। २१-9-१९८५

592. गुरुदेव महानन्द जी याग में

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया था। एक समय हम दोनों एक राजा के याग में पहुंचे थे। उसके यहाँ जितना कृषक समाज था, वह निठल्ला बन गया और कृषक समाज ने क्रिया करना प्रायः समाप्त कर दिया था, शून्य बन गए। तो राजा ने उन्हें उल्लासता में परिणत कराया और हमें भी राष्ट्र में ले गए। तो वहाँ एक उल्लास की धारा का जन्म हुआ, तो कृषक अपनी बलि देना प्रारम्भ करने लगा पुरुषार्थ करने लगा, अपने को समर्पित कर दिया। तो पुरुषार्थ में उसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ बलि दी, तो उल्लास बन गया। राजा का राष्ट्र पुनः से सम्पन्न बन गया। गृह-गृह में पुष्पांजलियाँ छा गईं। तो परिणाम यह हुआ, उनका कि उनके राष्ट्र में एक महानता का जन्म होने लगा, जो एक बृहा वाचक बनने लगा। पृथ्वी अपने स्वरूप में उद्गीत गाने लगी। तो विचार क्या? इस प्रकार का जो वृताम बलि का अभिप्राय है कि प्रत्येक मानव जैसे अपनी युवावस्था से ले करके वृद्धकाल तक क्रिया-कलाप करता रहता है, और गृह को अपने को समर्पित करता है, अपने पुत्रों में, पौत्रों में, पत्नी में अपने को समर्पित करता है, तो वह समर्पित करना गृह के लिए उसे बलिदान हो जाना है। यह बलि कहलाई जाती है। यह बलि का अभिप्राय है। २१.०९.१९८५

593. महर्षि कागभुषुण्ड जी और लोमश मुनि

एक समय मुझे ऐसा स्मरण है महर्षि कागभुषुण्ड जी और लोमश मुनि महाराज दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान थे, कहीं से भ्रमण करते हुए, उनके द्वारा सुधनवृचसम्भूति मुनि महाराज उनके समीप आ पहुँचे। १७.१०.१९८५

594. गुरुदेव के द्वार

पुरातनकाल में जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वार पर जाते थे, तो गुरु के द्वार पर जा करके शिक्षा अध्ययन करते, अध्ययन करते-करते जब कोई शिक्षा उनके आंगन में नहीं आती, उनसे बारम्बार प्रश्न करते रहते थे। जब प्रश्न किया तो वे उसका उत्तर देते थे। भली भांति उसका उत्तर देते रहे थे और देते-देते उस आभा में प्रायः परिणत हो गए। उन्होंने कुछ औषधियों का पान भी कराते रहते थे, जिससे मानव के प्रज्ञा चक्षुओं में एक शक्ति प्रायः आती चली जाए। तो इस प्रकार हमारे यहाँ परम्परगतों से ही प्रायः ऐसा होता रहा है। १८.१०.१९८५

595. गुरुदेव के द्वारा चिन्तन

जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा चिन्तन और मनन करते थे, क्रियात्मक क्रिया-कलाप करते थे, तो उस समय वह विद्याएं हमारे समीप आती रहती थीं। १८.१०.१९८५

596. गुरुदेव को महानन्द जी द्वारा वर्तमान का परिचय

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत-सा निर्णय कराते रहते हैं। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को भी आधुनिक काल का परिचय देता रहता हूँ। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा-कि ये जो समाज इतना तिरस्कृत हो रहा है ये स्वार्थ में परिणत हो रहा है। ३०.१०.१९८५

597. गुरुदेव की महान स्मरण शक्ति

पूज्यपाद के हृदय में इतने ज्ञान की धाराओं की उपलब्धियाँ होती रहती हैं, कितनी महान स्मरण शक्ति है, जिस स्मरण शक्ति के द्वारा यह अपने उद्गीत गाते रहते हैं और ऐसे अथाह समुद्र में चले जाते हैं वहाँ से नाना रत्नों को ले करके आते हैं। अब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव याग की कितनी महान विवेचना कर रहे थे, कितना इनका विवेचनामयी हृदय अगम्यमयी ज्योति वाला जो उद्देश्य है वह हमारे हृदयों को स्पर्श करता रहता है। परन्तु आज पूज्यपाद गुरुदेव को मैं तो कुछ परिचय देने चला आता हूँ, मैं कुछ उद्गीत गाने के लिए चला आता हूँ ओर वह क्या है कि जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है जहाँ हमारी यह प्रेरणादायक शब्द जा रहे हैं, उस स्थली पर एक याग का समापन हुआ है। ०४.११.१९८५

598. अश्वपति का राष्ट्र

मुझे वह काल मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में रहा हूँ, मैंने उस काल को भी दृष्टिपात किया है। उस काल में सर्वमेध याग करने वाले राजा अपने राष्ट्र में यह घोषणा करते रहते थे, कि यहाँ प्रत्येक प्राणी को याज्ञिक बनना चाहिए, प्रत्येक गृह में से वेद की ध्वनि होनी चाहिए, चाहे वह किसी का गृह हो, परन्तु वेद की ध्वनि होगी, तो यहाँ ऋण से उऋण होने वाला समाज बन जाएगा। राजाओं के यहाँ पूर्वातीत के काल में यह घोषणा होती रही है। महाराजा अश्वपति ने तो अपने राष्ट्र में यह घोषणा कराई थी कि मेरे राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी याज्ञिक होना चाहिए। याज्ञिक होना याग में केवल अग्नि में ही आहुति देना नहीं है। याग का अभिप्राय यह है कि यज्ञ में आहुति होनी चाहिए। परन्तु सदाचार भी वेदी वाला जो राष्ट्र होता है, जो अपने राष्ट्र में वेद के प्रकाश को पनपाता रहता है, परन्तु ऐसा जो विचित्र राष्ट्र है वही तो समाज को महान बना सकता है। जो राजा स्वतः याग में परिणत होने वाला हो, अपने गृह को सुगन्धित बनाने वाला हो, वही तो महान बनेगा। ०४.११.१९८५

599. प्रेरणाएं

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जहाँ ये हमारी आकाशवाणी जा रही है आपको यह कैसे प्रतीत हुआ कि यह अमुख उड़ान, आपको मैंने एक प्रेरणा दी, परन्तु उसी के साथ आपने एक वाक् प्रारम्भ किया। तो भगवन्! जहाँ यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक कुलेभ्यो नमः की, जो आपने चर्चा की, कुलों का परिवर्तन होना, कन्या का वास, युवा पति कुलेभ्योः ब्रहां पितरलोकां भवितेब्रहा मेरे पूज्यपाद! ये बड़ा सौभाग्य है। आज यहाँ याग का आयोजन, जो स्वाति ब्रह्मा कुछ मन्त्रों के द्वारा याग का प्रारम्भ हुआ। ०१.१२.१९८५

पूज्यपाद गुरुदेव को, जब मैं यह परिचय देता रहता हूँ तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे नाना प्रकार की कुछ प्रेरणामयी वाक्यों को प्रकट करते रहते हैं। २५.०२.१९८६

600. तपस्वी माताओं की स्मृति

मुझे स्मरण आता रहता है जब मैं त्रेता के काल में क्या, द्वापर के काल में जब मैं प्रवेश करता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है, नाना माताओं का जीवन स्मरण आने लगता है। जब मैं पूर्व काल में जाता हूँ, तो माता कौशल्या और उससे पूर्व काल में जाता हूँ, तो माता मल्दालसा का जीवन मुझे स्मरण आने लगता है। इससे पूर्व काल में और भी नाना माताएं इस प्रकार की, ऐसी हुई हैं जिन्होंने अपने जीवन काल में तप किया है। १०.०३.१९८६

601. महाराजा अश्वपति

महाराजा अश्वपति के यहाँ ऋषि-मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ और ऋषि-मुनियों ने यह निर्णय किया कि ऊर्ध्वा में पठन-पाठन का जो क्रम बनाया। एक आचार्य पठन-पाठन के आश्रम में प्रवेश हुआ जिनका नवीन संस्कार हुआ, जब संस्कार हुआ, तो उसको एक पठन-पाठन का वृत था, जो वह तो दीक्षा ले करके, जो वानप्रस्थी थे, उनका संसार के नाना वासनाओं से हृदय तृप्त हो गया था, उनका मानसिक जो चलन था, वह बड़ा विचित्र रहा।

तो मुझे ऐसा स्मरण है जब ऋषि-मुनियों का एक समूह एकत्रित हुआ। इन ऋषिओं में महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेणुवृत्तिका, ये सब उसमें विद्यमान थे और भी नाना ऋषि थे। तो रेणुवृत्तिका एक वैज्ञानिक उनके यहाँ थे। उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जिस यन्त्र में ये विशेषता थी, कि मानव शब्दों का उच्चारण कर रहा है और वह शब्दों का चित्र बन करके चित्रावली में दृष्टिपात आ रहा है। उसका जो चयन है, जो शब्द है, जो क्रियाएं हैं, जो ब्रह्मचारियों को उद्गीत गाया जा रहा था वह चित्र बन-बन करके उन यन्त्रों में दृष्टिपात हो रहे थे।

जब यन्त्रों में दृष्टिपात कराया, तो महाराजा अश्वपति से कहा ऋषि-मुनियों ने कि महाराज! जिनका संस्कार युवापन में हुआ हो, तो वह आचार्य विद्यालय में नहीं होने चाहिए। उन्होंने इसका जब विरोध किया, तो महाराजा अश्वपति ने कहा, कि इसका प्रमाण यह है कि आचार्यकुल में जब आचार्य युवक होगा अथवा नवीन संस्कारवादी होगा, नवीन पत्निवादी होगा, तो उसकी तरंगें ब्रह्मचारियों को स्पर्श किए बिना रह नहीं सकती। ये वाक्य उन्होंने प्रकट किया। जब यह वाक् उन्होंने प्रगट किया तो मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता रहा है, मुझे भी सौभाग्य प्राप्त होता रहा है, अध्यापन का। तो महाराजा अश्वपति ने जब मानो इस विरोध को स्वीकार किया और इस विरोध को जाना, तो जानने के पश्चात उन्होंने ऋषि-मुनियों का एक समाज एकत्रित किया। और उन्होंने यन्त्रों में, उनकी वाणी को भरण कराया, तो यन्त्रों में शब्दों का विभाजन कर रहा था। जब शब्दों का विभाजन चल रहा था तो नवीन संस्कारवादी आचार्यों का चित्र, जब उसमें दृष्टिपात आने लगा, तो उसकी तरंगें ब्रह्मचारियों को स्पर्श कर रही थी, ब्रह्मचारियों का अन्तर्हृदय था, उस आचरण में प्रवेश नहीं कर सका, जो वास्तव में होना चाहिए था। यही कारणादि ब्रह्मादि जब इस प्रकार के आचार्य विद्यालयों में प्रवेशं ब्रह्मा, शिक्षा देते हैं, तो ब्रह्मचारी जब विद्यालय से अवकाश पाता है, तो वह ब्रह्मचारी जिस भूमिका में वह पनपा है, जिस भूमिका में रहा है, वह भूमिका विद्यालय से बाह्य जा करके वह भूमिका भ्रष्ट हो जाती है। जब वह भ्रष्ट हो जाती है तो वह बाल्यकाल में आचार्य के यहाँ भय से और अणुवृत्तियों से उसी वस्त्रों में रहना, वहीं चरण-वन्दना करना, वह केवल चरण वन्दना स्थायी नहीं रहती। वह स्थायी उस काल में रहती है जबकि मानो निष्पक्ष होने वाले, वानप्रस्थी, पति-पत्नी जब दीक्षा ले करके वह शिक्षा प्रदान करते हैं, तो वह ब्रह्मचारियों के हृदय को पवित्र बना देते है। उनकी जो भूमिका है, अथवा वेश है, भूषा है, वह स्थायी बन जाती है। चरण-वन्दना उनकी स्थायी हो जाती है। तो उस समय विद्यालय सफलता को प्राप्त होते हैं। १०.०३.१९८६

602. गुरुदेव का अध्ययन काल

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता रहा हूँ, वह काल मुझे स्मरण है और लाखों-करोड़ों वर्ष व्यतीत हो गए जब ऋषि-मुनि यौगिकवाद में प्रवेश करते थे। ११.०३.१९८६

603. महाराजा अश्वपति पितर चर्चा

मुझे एक समय मेरे पुत्र महानन्द जी ने यह प्रकट कराया, कि यह जो आधुनिक काल व्यतीत हो रहा है, इसमें मानव समाज ने देवपूजा का अभिप्राय यह स्वीकार कर लिया है कि हमें देवताओं का पूजन करना है और यहीं तक वेद की विद्या का सद्गम्य हो जाता है। मैं यह कहता हूँ नहीं ऐसा नहीं है। मुझे महाराजा अश्वपति के यहाँ प्रायः बहुत समय तक वेदों के पठन-पाठन कराने का प्रायः सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा है, अपना विचार देते हुए कहा है आचार्य कहता है तुम देवपूजा करो, देवपूजा किसे कहते हैं? देवपूजा के सम्बन्ध में हमने बहुत-सा अपना विचार दिया। परन्तु आज की देवपूजा है उसे कहते हैं जहाँ चैतन्य और जड़ दोनों की पूजा का हमारे समीप एक वाक्य आता है। वह चैतन्य देवता तो आचार्यजन हैं, पितरजन हैं। पितरों की व्याख्या तो बड़ी विचित्र है। हमारे यहाँ पितर उसे कहा जाता है, जो हमें देता है, जो हमे स्नेह करता है।

तो केवल पितर वही नहीं है। हमारे यहाँ चैतन्य भी पितर कहलाते हैं और जड़वत भी पितर कहलाते हैं। यह पृथ्वी हमारी माता और पितर कहलाती है। यह आपो हमारा पितर और देवता कहलाता है। अग्नि हमारी माता और पितर कहलाती है। ये हमारे देवता हैं। ये हमारे देवत्त्व में रत्त रहने वाले हैं। जब हम आपो पर विचार करते हैं, या हम पृथ्वी पर विचार-विनिमय करते हैं, तो यह पृथ्वी हमारी माता है। और यह में जीवन प्रदान करने वाली है। इसके गर्भस्थल में वैज्ञानिक प्रवेश करता है तो विज्ञानवेत्ता बन जाता है। जब उसके गर्भ में, मैं प्रवेश होता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि माता के गर्भस्थल में क्या-क्या वस्तु विद्यमान हैं?

604. गुरुदेव को स्मृति

मुझे स्मरण आता रहता है द्वापर के काल का वाक्य भी आता है, त्रेता का काल भी मुझे स्मरण आता है जब माता कौशल्या जी तप करती थी, तो वह तप करती हुई यह पृथ्वी से कहती थी कि हे हे पृथ्वी! तू ब्रह्मा के तुल्य है। हे पृथ्वी! तेरे गर्भस्थल में नाना प्रकार का परमाणुवाद गति कर रहा है और वही परमाणुवाद हमारे प्राण के द्वारा, हमारे में प्रवेश करके हमें वह जन-जीवन दे रहा है। हमें वह महानता प्रदान कर रहा है। १२.०३.१९८६

605. वायुमण्डल में आत्माएं और सृष्टि

मेरे जीवन में पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे याग के माध्यम से इस भौतिक याग से ले करके आगे आध्यात्मिकवाद में ले गएं और आध्यात्मिक वाद में उस परमाणुवाद में ले गये, जहाँ मानव अपने परमाणुओं को जान करके जैसे माता के गर्भस्थल में परमाणुओं से शिशु का निर्माण होता है, ऐसे ही योगीजन जो जीवन मुक्त होते हैं, जो चित्त के मण्डल से प्रवृत्तियों में उपराम हो जाते है। उनका जीवन एक अभ्योदय होता रहता है। मैंने इससे पूर्वकाल में वर्णन किया था, मैं इन वाक्यों को जानने लगा था। इससे पूर्व यह वाक् मैंने प्रगट किया पूज्यपाद गुरुदेव ने भी इसकी टिप्पणियां की है। जैसे मानव समाज है, मानव समाज का सृष्टि के प्रारम्भ में जो जन्म हुआ है वह यौगिक आभाओं से हुआ है, जीवन मुक्तवादी प्राणियों ने परमाणुओं से किया है, वह परमाणु से अपने स्थूल शरीर को भी प्राप्त हो जाते हैं, सूक्ष्म शरीर को भी प्राप्त हो जाते हैं और कारण इनमें जा करके मोक्ष की पगडंडी उसे प्राप्त होती है। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि सूक्ष्म कारण और स्थूल शरीरों की प्रतिक्रिया जान करके, मैं उसे स्थूल ही बना लेता हूँ और इसे सूक्ष्म भी बना लिया जाता है और कारण में जा करके प्रभु के, चित्त के दर्शन में मैं परिणत हो जाता हूँ। ऐसी अनन्य आत्माएं इस वायुमण्डल में भ्रमण करती रहती हैं। आज मैं इस आभा में भी जाना नहीं चाहता हूँ। मानव समाज का जीवन तो ऐसे हुआ, जैसे मानो यह जो सिंहराज है और जो नाना प्रकार की जो योनियां हैं इनका जन्म कैसे होता है, ये बड़ा एक विचारीणय प्रसंग है। इस संसार में मैं इस विचार को पुनः से देता रहता हूँ, क्योंकि योगीजन जो होते हैं यह अपनी-अपनी भूमिका में सब योनियों को प्राप्त हो जाते है। वह योनियां प्रभु के नियम के आधार पर उन कणों को के करके, कोई सिंहराज बनता है, कोई मृगराज बनता है, और कोई किसी प्रकार के गौ आदि योनियों को प्राप्त हो करके

अपने-अपने सृष्टि के कर्म का प्रारम्भ हो जाता है। सृष्टि का कर्म इसी प्रकार प्रारम्भ होता है, क्योंकि मैंने बहुत पुरातनकाल में पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न किया था, वह जो स्थावर सृष्टि है वह एक दूसरे के सहयोग से वायुमण्डल, प्रकृति के, ब्रह्म के सहयोग से स्थावर सृष्टि का जन्म होता है सबसे पूर्व। इसी प्रकार कोई आत्मा अंडज में प्रवेश कर गयी, कोई अंडज सृष्टि की प्रकृति में से परमाणु ले करके कोई जंगम बन गयी, कोई स्थावर बन गई और यह सृष्टि का कर्म प्रारम्भ हो गया। १६.०३.१९८६

606. महाराजा अश्वपति और सन्यासियों का कर्तव्य

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय में महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में पहुंचे भ्रमण करते हुए और राजा ने अपना आश्चर्य स्वीकार किया कि ऋषि का आगमन कैसे हुआ। उन्होंने कहा प्रभु! आइये आप कुछ पान कीजिए। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि मैं इस अन्न को पान नहीं करूंगा। राष्ट्र का अन्न दूषित अन्न होता है, राष्ट्र का अन्न दूषित होता है, मैं इसको पान नहीं करूंगा। परन्तु आधुनिक काल का संन्यासी का कोई द्रव्यपति, विशेष द्रव्यपति राष्ट्र से जिसका सम्बन्ध हो गया है, वह शिष्य बन जाए, तो वह अपने में यह स्वीकार करता है कि मेरे द्वारा तो राजा महाराजा शिष्य बने हुए है। उन्हीं का आहार करके अपनी आत्मा का हनन कर रहे है। उस अन्न को पान करके वह अपना हनन कर रहे है। इसीलिए महापुरुषों का एक तिरस्कार हो रहा है। महर्षियों का तिरस्कार हो रहा है। अरे, सन्यास का ह्रास हो रहा है। उच्चारण करना तो प्रियता है, परन्तु मौन रह करके राजा को या समाज को ऊँचा बनाना, यह ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य रहा है, यह परम्परागतों से रहा है। १६.०३.१९८६

607. वाणी के प्रकार

मार्कण्डेय जी के विचारों में यह माना गया है, कि यह जो साधारण वाणी होती है यह भू: लोक में रहती है और जो उससे विशिष्ट होती है वह राष्ट्रीय विचारधारा में या मन्त्रियों में जो रत्त रहने वाली वाणी है, वह भुवः में और जो दर्शनों से गुथी हुई है सत्य से गुथी हुई है, जो शब्दार्थ है वह स्वः लोक में ओत-प्रोत हो जाती है। जो द्यौ लोक में प्रवेश हो करके, द्यौ से सूर्य प्रकाश लेता है, द्यौ से ही सूर्य ऊर्ज्वा लेता है, उसी ऊर्ज्वा में वह मानव के जो शब्द है, शब्द के साथ में जो चित्र है, उस ऊर्ज्वा में द्यौ के, दोनों के समन्वय में वह भ्रमण करते रहते हैं।

वेद क्या कहता है, वेद ऊँची-ऊँची उड़ाने उड़ रहा है, विचार दे रहा है। आगे वेद के आचार्य ने वर्णन करते हुए कहा, क्या यह अग्नि ही भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत रहने वाली है, यह अग्नि कहां ओत-प्रोत रहती है? १९.०९.१९८६

608. पवित्रता के लिए गुरुदेव की वाणी

जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उद्गीत अथवा यह उच्चारण करने लगता हूँ जिससे जन जीवन एक महान और पवित्र बना रहता है। आज मैं राष्ट्र और समाज के सम्बन्ध में अपना कोई विचार देना नहीं चाहता हूँ। विचार यह देता रहता हूँ, जिस गृह में, हमारी यह आकाशवाणी जा रही है यहाँ नाना प्रकार के विचारों में भिन्नता का मुझे दर्शन होता रहता है। मैं यह कहता रहता हूँ, कि हे माता! तू अपने गृह, अपनी वाणी अपनी चरी धारा को तू ऊँची बना। जिससे तेरा मानवीय दर्शन ऊँचा बन जाए और गृह में किसी प्रकार का अग्नि मत्र में, गृह ना बना रहे। जब विचारों में भिन्नता रहती है, तो गृह अग्निमय प्रवेश कर जाता है। और वे जो अग्नियाँ हैं, परन्तु वही अग्नि कृति बना करती है, जो मानव, जन्म जन्मांतरों से अपने संस्कारों की उदबुद्ध करते हुए अपने में अहिंसा परमोधर्म की धाराओं में रत्त रहे हैं। १७.१२.१९८६

609. काण्व ऋषि और उनका आश्रम

मुझे कुछ ऐसा स्मरण जब पूज्यपाद गुरुदेव के विद्यालय में अध्ययन करते थे, तो पूज्यपाद गुरुदेव यह वर्णन कराते रहते थे, कि जब राजा या ऋषि कोई भी वाजपेयी याग करता है या अग्निष्टोम याग करता है, तो वहां गऊ के बछड़े का पूजन किया जाता है। गऊ के बछड़े का याग करना और गऊ के बछड़ों का पूजन करने का अभिप्राय: यह, क्योंकि वह पृथ्वी के आभा में पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना करने वाले हों, वह गो कहलाते हैं, गो बछड़े हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे वर्णन कराते रहे हैं कि काण्व ऋषि ओर राजा भरत के काल में भी एक समय भयंकर अकाल हुआ था। तो भयंकर अकाल होने के कारण यहां अग्निष्टोम याग यहां वृष्टि याग भी होते रहे हैं। यह स्थली बहुत दूरी तक ऋषि-मुनियों की रही है, यही स्थली यहां काण्व ऋषि का जो भवन स्थली रही है, वह चार-चार योजन के अन्तर्गत उनका भ्रमण होता रहता था, यहां ओर भी ऋषि-मुनियों की विचारधाराएं आगमन यहां परिणत होती रहती थी। यहां महाराजा भरत ने, इस स्थली को अपनी जन्म भूमि स्वीकार करते हुए इन्होंने इनका बड़ा आस्वाश्र किया था, क्योंकि महात्मा काण्व को, महर्षि काण्व को बहुत समय हो गया है, आज कोई नवीनता नही हैं इसमें, मैं तो उन वाक्यों को उच्चारण करके भी नवीनता देना चाहता हूँ। क्योंकि महर्षि काण्व ऋषि महाराज को लगभग नौ या दस लाख से भी विशेष हो गया है जब उनकी यहां स्थली रही है। ११.०१.१९८७

610. महानन्द जी व गुरुदेव भारद्वाज मुनि के यहाँ

एक समय मैं और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भारद्वाज मुनि के यहाँ पंहुचे, तो भारद्वाज मुनि के यहाँ प्रातःकाल का समय था, आचार्य ने कहा आओ, ऋषिवर! हम विराजमान हो गएं, तो पूज्यपाद से कहा कि हमारे यहाँ नियम हैं, कि तुम याग करो, जब हमने याग प्रारम्भ किया, तो यन्त्रों में उनके हमारे चित्र आहुति देते हुए दृष्टिपात आ रहे थे, और वही आहुतियों में वह अन्तरिक्ष में शब्द अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके गमन हो रहे थे, तो यह विज्ञान जब तक राजा के राष्ट्र में या समाज में जागरूक नही होगा कि हम यन्त्रों में यागों को दृष्टिपात करें, याग क्रियाकलाप आते रहें, उन्ही यन्त्रों में समाज का कल्याण होता हैं, समाज अपने में महान बनने लगता हैं, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यज्ञशाला में अपने पूज्यपाद गुरुदेव का वर्णन अपने में अभ्योदय हो रहा था। ०८.०३.१९८६

611. गुरुदेव का याग अध्ययन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जन्म जन्मान्तरों का इस याग के ऊपर बड़ा अध्ययन रहा है, इनके जो अध्ययन की शैली रही है, वह बड़ी विचित्रतम रही है। राष्ट्र क्या समाज क्या, उन सभी में उनका सर्वोपरि एक स्थान रहा है। मुझे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं आपका कुछ परिचय कराने के लिए आया हूँ, और वह परिचय क्या है कि जिस स्थली पर यह हमारी आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर यह वाणी का प्रसार हो रहा है, वहाँ एक याग का सम्पन्न, याग का सम्पन्नता को प्राप्त हुआ है और आप मुझे तो जानते हो, मेरा जो अन्तरात्मा है, वह यज्ञमान के साथ रहता है, हे यज्ञमान! मेरा अन्तरात्मा यह पुकारता रहता है कि यह जो काल चल रहा है, यह काल को मैं वार्म मार्ग काल कहा करता हूँ। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में कहा, यह जो वर्तमान का काल चल रहा है। १७.०३.१९८६
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कैसे अगाध समुद्रों में, क्या राजा अपने राष्ट्र में अग्निष्टोम, वाजपेयी याग कराते हैं। ०३.०५.१९८६

612. महानन्द जी की प्रेरणा

आज मुझे महानन्द जी के द्वारा प्रेरणा भी प्राप्त हो रही है, उसी प्रेरणा के आधार पर, आज हम अपने वाक्यों को प्रारम्भ करने जा रहे हैं, मेरे महानन्द जी की एक प्रेरणा आ रही है कि जब संसार में हमारा आगमन होता है, तो आगमन होने के पश्चात मानव आनन्दवत और महानता की एक प्रतिभा का जन्म होता है। द्वितीय हृदयों में ऐसा एक उल्लास उत्पन्न होता है, क्योंकि संसार में मिलन और विच्छेद का यह एक जगत माना गया है। ०८.०५.१९८६

613. महर्षि लोमश मुनि

मुझे एक विचार स्मरण आ रहा है, एक समय महर्षि कागभुषुण्ड जी ने महर्षि लोमश मुनि के द्वार पर पंहुचे, महर्षि लोमश मुनि महाराज से कहा कि प्रभु! मेरी ऐसी इच्छा है, कि मैं बारह वर्ष का एक अनुष्ठान करना चाहता हूँ, मैं अपने में यह चाहता हूँ कि मैं प्रभु के राष्ट्र में चला जाऊं, और प्रभु के राष्ट्र के लिए अनुष्ठान करना है, तो मैं बारह वर्ष का अनुष्ठान करना चाहता हूँ, उन्होंने कहा-बहुत प्रिय, अनुष्ठान में उन्होंने कहा अनुष्ठान का अभिप्रायः है, याग तो नित्यप्रति याग में परिणत हो गएं। जब याग करने लगे भयंकर वन है, तो एक समय वह याग कर रहे थे, तो याग में उनका इतना अनुभव हो गया, कि जैसे वह स्वाहाः उच्चारण करते थे, स्वाहाः के साथ में जो साकल्य तरंगों में तरंगित हो रहा था, उनमें जितना भी यज्ञमान होताजन विद्यमान थे, उनके चित्र वायुमण्डल में दुष्टिपात होने लगे, वह द्यौ लोक में प्रवेश होते हुए दृष्टिपात होने लगे, उनके ध्यानावस्था के कारण वह ध्यानावस्थित रहते थे। तो जब उन्होंने यह वाक् यह जो क्रियाएं हैं, उन्हें दृष्टिपात आने लगी, महर्षि लोमश मुनि के समीप पंहुचे, कि महाराज! मुझे ऐसी क्रियाएं दृष्टिपात हुई हैं, बहुत प्रियतम। १९.०५.१९८६

पूज्य महानन्द जी और राम

पूज्यपाद गुरुदेव के समीप, किसी-किसी समय राम के समीप मुझे जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, राम प्रातःकालीन वनों में चले जाते, आ करके अपना ध्यानं ब्रह्मे याग करते, याग के पश्चात अपने विचारवेत्ताओं के समीप विद्यमान हो जाते। २०.०५.१९८६

614. महर्षि लोमश मुनि

हमारे यहाँ ऐसा है कि व्रत्यं ब्रह्मा एक श्रङ्गी उपाधि मानी गई है। श्रङ्गी उपाधि उसे प्रदान की जाती है आचार्यों का, ऋषि-मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ जो अग्निष्टोम याग, वाजपेयी याग और पुत्रेष्टि याग, जो तीनों यागों में मानो वशिष्ठ हो जिसका तीनों याग में अधिपथ्य हो, उसको श्रङ्गी उपाधि प्रदान की जाती है।

615. स्मृति, वाजपेयी याग

मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है। वेद के मन्त्रों के आश्रय को ले करके, वेद के मन्त्र हम उद्गीत गाते रहते है। वाजपेयी याग उसे कहते है जिस राजा के राष्ट्र में यदि अकाल आ जाए, अकाल आ जाए, पण-अकाल, तो उसके पश्चात वाजपेयी याग करते है। उसका साकल्य भिन्न होता है, गो-घृत होता है उसके द्वारा आत्मवेत्ता जो याग करते है उसे वाजपेयी याग कहते है। अग्निष्टोम याग उसे कहते है, जो तेजोमयी वह शरद का काल है, शरद के काल में वह काल अनावृष्टि रूप बन गया है, अनावृष्टि हो गई है तो उसके पश्चात उसी प्रकार का साकल्य, समिधा एकत्रित करके जो याग तुम्हें संलग्न हो जाता है उसको अग्निष्टोम याग कहते है। अग्नि को साक्षी करके, उसी प्रकार की समिधाओं को-जिसमें अग्नि तत्त्व प्रधान विशेष होता है। ०३.०८.१९८७

616. स्मृति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में हमारे यहां विद्यालयों में, ब्रह्मचारी जन, आचार्यजनों के संरक्षण में विद्यमान हो करके और वह साधना के क्षेत्र में प्रवेश होते रहे है। तो वह साधना बाह्य जगत और जो स्थूल जगत है उसमें वह सूक्ष्म रूप में, प्रवेश जब कर जाता है, तो उसी का नाम साधना मानी गई है। मैंने तुम्हें कई कालों में यह प्रगट करते हुए कहा, अपने विचार देते हुआ कहा था कि यह जो स्थूल जगत है, यह जो परमपिता परमात्मा का अनूठा जगत, प्रायः हमें दृष्टिपात आता है, इसमें साधक अपने में कुछ अभ्यास करता है, और अभ्यास करता हुआ, वह अपने को स्थूल जगत से, वह बहुत सूक्ष्म जगत में ले जाता है। जहां सूक्ष्मतम तरंगों से ही मानव तरंगित रहता है, और उसी से वह तृप्त रहता है, तो वह साधना की अमूल्यता को जान लेता है। तो विचार क्या, प्रत्येक मानव, साधना में प्रवेश होता हुआ, अपने में, बाह्य जगत को आंतरिक जगत में, जो प्रवेश कराना जानता है, अथवा प्रवेश कर जाता है, वही तो अमूल्य साधना है। २५.०९.१९८७

617. महाराज अश्वपति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब यहां महाराज अश्वपति के यहां, इस प्रकार के साधक विद्यालयों में विद्यमान होते थे। ब्रह्मचारी अपने में ब्रह्मचर्य का, अपने में ब्रह्मवर्चोसि बन करके अपने में ब्रह्माग्नि को जागरूक करना, यह साधकों का और प्राण की प्रतिभा को जानने वाले ही इस वाक् को जानते है। २५.०९.१९८७

618. महाराज अश्वपति

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब यहां महाराज अश्वपति के यहां, इस प्रकार के साधक विद्यालयों में विद्यमान होते थे। ब्रह्मचारी अपने में ब्रह्मचर्य का, अपने में ब्रह्मवर्चोसि बन करके अपने में ब्रह्माग्नि को जागरूक करना, यह साधकों का और प्राण की प्रतिभा को जानने वाले ही इस वाक् को जानते है। २५.०९.१९८७

619. गुरुदेव से प्रश्न

मुझे वह काल स्मरण है जिस काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न करता रहा हूं। १८.०९.१९८७

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे संसार की बहुत-सी वार्त्ताएं प्रगट करते हुए वर्णन किया। १८.०९.१९८७

मुझे जब वह साहित्य स्मरण आने लगता है, तो मेरा हृदय गद्-गद् हो जाता है कि कितना विज्ञान मानवीय समाज में रहा है और विज्ञान की कितनी विचित्र धाराएं रही है। ०९.११.१९८७

620. गुरुदेव की चर्चाएँ

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां की एक चर्चा प्रगट की थी। इन्होंने कहा था, जब महर्षि भारद्वाज से यह प्रश्न किया कि महाराज! इस विज्ञान का क्या बनेगा? तो ऋषि ने एक ही उत्तर दिया कि जिस काल में विज्ञान का दुरूपयोग होता है, उस काल में ब्रह्मचर्यतव चरित्र का ह्रास हो जाता है। विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी उद्दालक गोत्र की चर्चा कर रहे थे, और उद्दालक गोत्र में नाना ऋषि हुए, परन्तु उनका कितना उंचा विज्ञान रहा है उनकी शब्द विज्ञान कितना विशुद्ध, रूपों में रहा है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से, महाराजा सगर के अश्वमेध याग की चर्चा कर रहे थे, अश्वमेध याग कितना अहिंसक होता है, कितना अहिंसक होता है, जिसमें हिंसा की प्रतिभा समाप्त हो जाती है और अहिंसा में परिणत हो करके ही राष्ट्र और प्रजा दोनों सम्मिलित हो करके ऊर्ध्वा में गति करते है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कागभुषुण्ड जी का वर्णन किया, कागभुषुण्ड जी उद्गाता बने, जो वेदों के मर्म को जानते थे। १०.११.१९८७

621. स्मृति

मुझे वह कैसा स्मरण आ रहा है, जैसे हम आज उस परमपिता परमात्मा की यज्ञशाला में विद्यमान हैं, और वह अपने में ऊर्ध्वा में गति करता रहता है हमारे नाना प्रकार के क्रियाकलाप भी प्रारम्भ रहते हैं, जिन क्रियाकलापों में परिणत होते हुए, अपनी मानवीयता की प्रतिभा में सदैव रत्त रहना चाहिए। १४.११.१९८७

622. महर्षि लोमश मुनि महाराज

महर्षि लोमश मुनि महाराज उपस्थित हुए और उन्होंने कहा हे ब्रह्मचरिष्यामि!, ऐसा सम्बोधित करके उन्होंने कहा क्या हे भगवन! जो महर्षि कागभुषुण्ड जी ने वाक् प्रगट किए है, वह बड़े अद्वितीय कहलाते है। परन्तु मैं तो इतना उच्चारण करने वाला, कि मानव का राष्ट्र के साथ भी समन्वय रहना चाहिए, और राष्ट्र का, योग के साथ समन्वय रहना चाहिए, और योग का आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों का समन्वय हो करके अन्तरात्मा का उत्थान करना चाहिए, जब तक मानव भौतिकवाद से पार नहीं होता, उपराम नहीं होता, तब तक वह आध्यात्मिकवाद में प्रवेश नहीं कर सकता, इसीलिए आध्यात्मिक भौतिक विज्ञान को ले करके आध्यात्मिक विज्ञान में उन्नत हो जाओ। यही हमारा सब का कर्तव्य है, इसी से राष्ट्र और समाज और चरित्र और मानवता की रक्षा होती है, और मानवीय दर्शन लगता है, और जब मानव दर्शन आ जाता है, तो यहां राष्ट्र की एक दूसरे में शासन की प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती है। शासन की प्रवृत्ति जब तक रहती है, जब तक अज्ञान बना रहता है, जब तक विवेक नहीं हो पाता, और चरित्र में का अभाव रहता है। उस समय तक राष्ट्र की प्रणाली की भी आवश्यकता रहती है। परन्तु राष्ट्रीय प्रणाली जब यदि प्रत्येक मानव के हृदय में प्रवेश हो जाए और वैज्ञानिक दृष्टि से, दोनों प्रकार के विज्ञान का हम समन्वय कर ले, तो भौतिक विज्ञान का दुरूपयोग न हो, और आध्यात्मिक विज्ञान का उसमें पुट लग करके, दोनों इसमें सार्थक बन जाए, और सार्थक बन करके ये विद्यालय हमारे महान बन करके बुद्धिजीवी प्राणी, दर्शनवादी विज्ञानवेत्ता लोक लोकातंरो की उड़ान उड़ने वाले हो, तो राजा का राष्ट्र और समाज दोनों पवित्र बन जाए। २२.११.१९८७

623. गुरुदेव का गम्भीर अध्ययन

पूज्यपाद गुरुदेव का इतना गम्भीर अध्ययन है, मन्त्र के ऊपर उनका सदैव अधिपथ्य रहा है। परम्परागतों से ही, भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारधाराओं में सदैव उनका नृत्त होता रहा है। विद्यालयों में क्या, ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मनिष्ठों में क्या, और भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों में संलग्न होते हैं। २९.११.१९८७

624. गुरुदेव का अध्ययन काल, और साधना

एक समय जब मैं अपने पूज्यपाद गुरूओं के द्वारा, अध्ययन कर रहा था, तो एक समय मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझे ले करके मगध राष्ट्र में पहुंचे, और मगध राष्ट्र में महर्षि रेणकेतु भारद्वाज अपने में याग कर रहे थे, और वह अनुष्ठान में विराजमान थे, उनका अध्ययन याग के अनुष्ठान के सम्बन्ध में रहा, कि वह मानव के विचारों को, क्या यज्ञ की तरंगों में दृष्टिपात कर लेते थे।

मुझे ऐसा स्मरण है, जब कागभुषुण्ड जी ने कहा कि जब मैं आचार्यो के समीप ऋषि के द्वार पर पहुंचा, तो वह याग कर रहे थे, मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अवृत्तियों में विद्यमान हो करके उनके आश्रम में गएं, जैसे वह याग कर रहे थे, प्रातः कालीन एक वृत्तिनाम के ऋषि विराजमान हो गएं। अपना साकल्य प्रदान करने लगें, जब साकल्य प्रदान किया, तो वह ऋषि ने अपना याग समाप्त कर दिया, भारद्वाज बोले कि हे ऋषिवर! मैं याग कर रहा हूँ, अपने कल्याण के लिए और वायुमण्डल को बनाना चाहता हूँ, क्या जब कोई साधक अपनी साधना में विद्यमान है, उस साधना के आसन को पवित्र बनाता है, वायुमण्डल को पवित्र बनाता है, उसके पश्चात उसका जो नृत्त प्रहा, वह उसकी साधना को बल प्राप्त होता है। मैं अपनी साधना के लिए वायुमण्डल को पवित्र बनाना चाहता हूँ, और तुमने यह जो

साकल्य प्रदान किया अग्नि में, तुम्हारा मन अशुद्ध हो गया, अशुद्ध था और अशुद्ध तरंगे वायु मण्डल में तरंगित हो रही थी। १४.१२.१९८७

625. राजा अश्वपति के यहाँ याग

वह काल स्मरण आता रहता है, राजा अश्वपति के यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन होता रहा है और उन भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों के चयन मे मानव सदैव रत्त रहा है और राजा अपनी आभा में सदैव निहित हो करके अपनी प्रतिभा का प्रायः प्रदर्शन करता रहा है। आज मैं तुम्हें राजा अश्वपति के यहाँ ले जाना चाहता हूँ, जहाँ, एक समय एक याग हुआ और उस याग में बड़ी विचित्रता रही। उससे पूर्व मैं एक भूमिका बनाना चाहता हूँ। याग में नाना पात्र होते हैं, उन पात्रों का निर्वाचन होता है और जब निर्वाचन हो जाता है तो याग का प्रारम्भ हो जाता है। १०.०१.१९८८

626. गुरुदेव को प्रेरणा

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को एक प्रेरणा दे रहा था और वह प्रेरणा का स्रोत, केवल याग के सम्बन्ध में अपना प्रायः विचार-विनिमय हो रहा था। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी याग को कहीं हृदय से समन्वय करा रहे थे, कहीं सूर्य से और द्यौ से उसका समन्वय हो रहा था, कहीं वेद-मन्त्रों की ध्वनियों में ध्वनित होता हुआ वह दृष्टिपात आ रहा है। आज, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी अपना गम्भीर विचार प्रकट किया। मैं तो कोई विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ, केवल मेरा तो एक ही उद्देश्य रहता है कि हमारा जो वाक्य है हमारी जो वाणी है, वह मृतमण्ड में एक आकाशवाणी जा रही है, इससें मैं एक याग का अपने में ध्यान और अपने में याग को दृष्टिपात कर रहा था। मेरा अन्तरात्मा याग को दृष्टिपात करके बड़ा प्रसन्न होता रहता है, क्योंकि अपने में जो आयु को महान और वृद्ध बनाना चाहते हैं और वह याग में परिणत हो जाते हैं। १०.०१.१९८८

627. स्मृति

पुरातन काल में, मुझे बहुत-सा काल स्मरण है, मैंने अपने प्यारे महानन्द जी को यह प्रकट भी कराया था कि यह समाज व राजा व प्रजा, दोनो मिल करके जब याग में परिणत हो जाते हैं, अश्वमेध-याग में, जब लग्नता हो जाती है, अग्निष्टोम-याग में संलग्नता आ जाती है, तो राजा में पवित्रता आ जाती है, समाज उसी के अनुसार बरतने लगता है। समाज और प्रजा में एक महानता की ज्योति जागरूक हो करके, वही महानता की ज्योति कहलाती है। १०.०१.१९८८

628. वाममार्ग का काल

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, आज हमारी यह जो वाणी है, हमारा यह जो उदगार है यह ऐसी स्थली पर जा रहा है, जहां एक याग का आयोजन हुआ। और मेंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा है कि यह जो काल चल रहा है, इस काल को मैं वाममार्ग का काल कहता रहता हूँ। १५.०१.१९८८

पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में वर्णन कराया, कि यह जो वर्तमान का काल है, यह ऐसा विचित्र काल है, जिसे मैं वाममार्ग का काल कहता हूँ। एक मानव ईश्वरवादी है, वह याग का खण्डन कर रहा है। एक मानव सम्प्रदायवादी बन रहा है, और अपने को ईश्वरवादी भी कहता है। परन्तु एक दूसरे के रक्त का पिपासी बन रहा है। जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ, तो पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय देता रहता हूँ। प्रभु! यह समाज, यह वायुमण्डल इस प्रकार का है। परन्तु एक मानव, एक राष्ट्र जहाँ उसे रक्षा करनी है वहाँ वह भक्षक हो रहा है। जब मैं यह विचारता हूँ कि यह नाना प्रकार के विचार ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी, यह समाज कैसे ऊँचा बन सकता है। २२.०१.१९८८

629. भगवन राम कि यज्ञशाला की स्मृति

मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है, जैसे हम राम की उस यज्ञशाला में विद्यमान हैं। ऐसा मुझे अनुभव हो रहा है। २८.०१.१९८८

630. महाराजा अश्वपति के यहाँ उसकी नियमावली

महाराजा अश्वपति के यहाँ उसकी नियमावली बड़ी विचित्र थी, राजा स्वयं अपने में कृषक का उद्गम करते थे, और उसके बदले जो अन्न होता, उसको वह पान करते और उनका सपरिवार जितना था, वह सब और अतिथि सेवा भी उसी से करते थे। वह राजा अपने में महान और राष्ट्र के लिए जैसा स्वयं राजा बन जाता है, उसी के अनुसार यह प्रजा बन जाती है। यदि राजा अपनी कृषि में उद्गम कर रहा है, तो प्रजा भी कर रही है। यदि उसी के अन्न को वह सात्विक अन्न को, वह ग्रहण करता है, तो सात्विक बुद्धि का निर्माण होता है, सात्विक मनस्तव बन जाता है। तो वही राजा वास्तव में अपने राष्ट्र में आचार संहिता को निर्धारित कर सकता है। जिस राजा के राष्ट्र में आचार्य जन, बुद्धिजीवी प्राणी विद्यालयों में चरित्र का और मानवता का निर्माण होता रहता है।

631. महाराजा! अश्वपति के यहाँ, विद्यालयों में ब्रह्मवेत्ता

मुझे बहुत-सा काल स्मरण है, महाराजा! अश्वपति के यहाँ, विद्यालयों में ब्रह्मवेत्ता का निर्माण होता रहता। ब्रह्मचरिष्यामि, चार प्रकार के नियमावली अर्थात निर्माणशाला होती है विद्यालयों में चार प्रकार की निर्माणशाला है और वह निर्माणशाला सबसे प्रथम ब्रह्मतव, क्षत्रियतव और वैश्यतव। जिसको हम वाणिजतव कहते हैं, और एक अरे, सेवा-तव होता है। एक दूसरे में पिरोएं हुए, ये समाज के चार मनके होते हैं। चार मनके एक सूत्र में पिरोएं हुए हैं। जो ब्राह्मण हैं, वही सेवक हैं। जो क्षत्रिय हैं, वही सेवक हैं और रक्षक है। जो वित्त और जो वैश्यं ब्रहा जो धन को, द्रव्य को वितरण प्रणाली में परिणत कर देता है, वह सेवक भी है और वह वित्त को ऊर्ध्वा में गति कराने वाला है। १८.०२.१९८८

632. मगध राष्ट्र में गुरुदेव

पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे एक समय वर्णन कराया था, एक यज्ञमान के सम्बन्ध में, जो मगध राष्ट्र में एक याग हुआ था, उस राष्ट्र में यह कहा था कि वह यज्ञमान धर्म प्रजा, हे देवी! तू अपनी त्रुटियों को त्यागने का प्रयास कर, जैसे परमपिता परमात्मा जैसे यज्ञमयी जो साकल्य तुम यज्ञशाला में अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणत करते हो, जानों की अपने हृदय की वह आहुति और हृदय से उसका समन्वय करना चाहते हो, उसके साथ हृदय में दूसरों के प्रति दूरिता और क्रोधाग्नि जो जागरूक

होती है, उस क्रोधाग्नि को शान्त करने का प्रयास करना चाहिए।

633. मगध राष्ट्र में पुत्रेष्टि याग

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह मगध राष्ट्र में पुत्रेष्टि याग क्या वाजपेयी याग हुआ था, और उस पुत्रेष्टि याग में उन्होंने यह कहा कि अग्नि नही रहनी चाहिए। या तो बाह्य जगत की अग्नि रहेगी या आन्तरिक जगत की अग्नि रहेगी। दोनों का जो अग्नियों का समन्वय रहा है वह दोनों प्रकार की अग्नियों को चेताते हुए हम अपनी अन्तरात्मा को अन्तर चेतना को, जो हमें दूरिता में दृष्टिपात आते हैं उसको जानना हमारा कर्तव्य कहा गया है। तो यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल में यह वाक् कहा था, आज मैं उन वाक्यों कि पुनरुक्ति इसीलिए दे रहा हूँ, कि मेरे देव अन्तर्हृदयों में जो अग्नि सदैव प्रदीप्त रहती है। वह वह द्वेषाग्नि जो जागरूक होती है, सबसे प्रथम उस द्वेष अग्नि को अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणत कर देना है, द्वेष अग्नि नही होनी चाहिए। यदि घृणा भी है, तो उसका क्रोध नही रहना चाहिए। और यदि घृणा रहेगी, तो उस अन्तरात्मा का विनाश होता है। २८.०२.१९८८

634. गुरुदेव को परिचय

जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपने से यह वर्णन करता हूँ, पूज्यपाद! मैं आपको परिचय देने के लिए आया हूँ। १६.०३.१९८८

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब महर्षि लोमश और महर्षि कागभुषुण्ड दोनो अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके, विचार-विनिमय करते रहते थे। महर्षि कागभुषुण्ड जी ने बारह-बारह वर्ष के बारह अनुष्ठान किये, और वह मृत्यु को जानने के लिए, परन्तु महर्षि लोमश अपने में बड़े अद्वितीय और दार्शनिक और यौगिक रहस्यों में गमन करने वाले, उनकी धारा बड़ी विचित्र रही है, तो दोनों का परस्पर विचार-विनिमय होता रहा है, और दोनो के विचार में एक ही वाक् आता रहा। १८.०३.१९८८

635. गुरुदेव की आनन्दता

मेरे पूज्यपाद अभी-अभी मन-मग्न हो रहे थे। अपने में, यह अनुभव कर रहे थे कि मैं राम की यज्ञशाला में विद्यमान हूँ। २४.०३.१९८८

636. गुरुदेव को परिचय

मैं कई काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय कराने के लिए आता रहता हूँ। , और मैं परिचय केवल इतना ही देता रहता हूँ। कि आधुनिक काल में यदि विद्यालयों में मैं प्रवेश करता हूँ। , तो विद्यालय में गुरु और शिष्य दोनों, एक-दूसरे के रक्त के पिपासी बन रहे है। प्रजा और राजा एक-दूसरे के रक्त के पिपासी हैं। अरे, इसके मूल में क्या है? अनुशासन की हीनता कहलाती है। जब अनुशासन की हीनता हो जाती है, पुत्र पिता को नहीं चाहता, पिता पुत्र को नहीं चाहता, माता पुत्री को नहीं चाहती, इस प्रकार की जो तत्परता है इसमें अज्ञान निहित रहता है। २४.०३.१९८८

637. ऋषियों द्वारा अनुसन्धान

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषि मुनि अपनी स्थलियों पर विद्यमान होकर के अनुसन्धान करते रहे है और विचारते रहे है। एक-एक खनिज को जानकर के अपने में अपनेपन का दर्शन करते रहे हैं। २८.०३.१९८८

माता कौशल्या जी की यज्ञ दक्षिणा

मैंने यह प्रतिज्ञा की, मैंने जब महर्षि श्रृङ्गी के द्वारा मैंने यज्ञ कराया था, तो उस समय याग करते समय जब पूर्ण आहुति हुई, तो मैंने यह संकल्प किया था, क्या मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करूंगी। यह मैंने दक्षिणा में प्रदान कर दिया था, गुरुदेव को, तो हे प्रभु! यह मैं कदापि नहीं होने दूंगी। कि मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करूं भगवन! मेरी तो यह प्रतिज्ञा है। तो उन्होंने कहा मेरा संकल्प है तो ऋषि ने कहा-देवी! हमारी इच्छा पुत्री! यह है कि तुम अन्न को ग्रहण करने लगो, जिससे राजा प्रसन्न हो जाए, उन्होंने कहा प्रभु! एक स्थली पर तो राजा है, एक स्थली पर मेरा जीवन है, और एक स्थल पर ऋषि का और मेरा संकल्प है, प्रभु! कौन से को स्वीकार करूं। ऋषि ने कहा क्या तुम जो भी तुम्हारी इच्छा हो, माता कौशल्या ने कहा मैं तो गुरु की आज्ञा का पालन करूंगी। क्योंकि वह बड़े मर्म को जानने वाले थे, उसकी प्रतिज्ञा में, प्रतीज्ञा बद्ध हूँ। और मैं कोई भी राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करूंगी। २५.०४.१९८८

638. गुरुदेव को प्रेरणा

हमने यह प्रेरणा दी, कि याग के सम्बन्ध में अपना विचार प्रगट किया जाए, तो पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी अपने विचार व्यक्त किए। १५.०५.१९८८

639. गुरुदेव को स्मृति

मुझे तो स्मरण आता रहता है एक समय भ्रमण करते हुए बहुत समय हुआ, महर्षि वृत्ति मुनि के द्वार पर पंहुचें। तो वृत्ति मुनि परमात्मा का स्मरण करते रहते थे, सदैव उसी में रत्त रहते। तो वह वृत्तिका मुनि महाराज, अपनें में उन्होंने बड़ा अभ्यास किया और उन्होंने पिच्चासी वर्ष तक सत्य का अध्ययन किया और चित्त के मण्डल में संस्कारों को प्रत्यक्ष लाना चाहते थे। वह अपने में अपनेपन का दर्शन करते हुए पच्चासी वर्षों तक, एक करोड़ पिच्चासी लाख पचानवें हजार बावन जन्मों के संस्कारों को वह प्रत्यक्ष कर सके। तो यहां बड़ा अभ्यास अनुग्रहीत करना होता है, जिससे जीवन में एक महान प्रतिभा का जन्म हो जाए। क्योंकि मानव मोक्ष में जाना चाहता है, मृत्यु से जाना नही चाहता है। उसकी एक ही इच्छा रहती है, मृत्यु न आ करके मोक्ष में चला जाऊं, मोक्ष कहते हैं जब चित्त में कोई संस्कार इस संसार का नही रहेगा। संस्कारों में विहिन होना ही मोक्ष में जाना है। इन्हीं संस्कारों का अक्षय करते हुए तपस्या से, निष्काम कर्मता से, क्योंकि मन का, प्राण का समन्वय जब होता है शरीर में तो वह मन प्राण की गति के साथ-साथ जब गमन करता है, आत्मा के ज्ञान के साथ जब गमन करता है, तो बिना कर्म किए नही रह पाता। क्योंकि प्रकृति सदैव अपने क्रियाकलापां में रत्त रहती है। और सदैव यह क्रियाकलाप बना ही रहता है, कर्म फल उसी में रत्त रहता है। २४.०६.१९८८

640. अतिमानव, सहगल जी की आत्मा

एक मानव होता है, एक अतिमानव होता है, वह जो अतिमानव होता है वह अपने कुटुम्ब संसार को जो सम्बन्ध होता है, ऋणबन्धी संसार जिसे कहते हैं, जैसे हमारे पूज्यपाद गुरुदेव है ओर जैसे आत्मा शरीर कृतियों में रत्त हो गई है, ऐसी जो आत्माएं होती हैं, वह सदैव किसी न किसी अतिमानव की कोटि में प्रवेश करती हुई और वह अतिमानव वृत्तियों में रत्त हो जाती हैं, अति वृत्तियां उसे कहते हैं, जो मानव इस संसार की प्रतिभा से इन कार्यों को त्याग करके वह चला जाता है, उन्हीं कार्यों में पुनः रत्त हो जाता है। चाहे वह चित्त के मण्डल में हो प्रवेश कर जाएं, पर वह आभा उसकी बनी रहती है। वायुमण्डल में भी बनी रहती है, क्योंकि हमारे यहां यह विचार आया है, कि विज्ञानवेत्ताओं की कोटि में इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण प्रायः पुरातन काल के आचार्यों ने किया विज्ञानवेत्ताओं ने किया है। वायुमण्डल में जो विचार गमन करते रहते हैं, गृहों में विचार गमन करते रहते हैं, वह गृह के विचार यन्त्रों में दृष्टिपात आते रहते हैं, विज्ञान प्रायः हमारे यहां प्रायः आता रहा है।

मुझे स्मरण आता रहता है, जिस आत्मा का शरीर इस गृह से दूरी हो गया है, पुनः यह आत्मा किसी काल में एक योगी रहा है, किसी काल में यह विज्ञानवेत्ता बन करके रहा। एक घटोचित नाम के वैज्ञानिक थे, बहुत पुरातन काल की चर्चाएं हैं, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब उनके आश्रम में ले गए, तो घटोचित नाम के ऋषि ने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जिस यन्त्र का नाम विचारा स्वस्तिका यन्त्र कहा जाता था, उस यन्त्र में यह विशेषता रही, जैसे यह आत्मा जाने लगा, शरीर में, गृह को त्याग करके तो उस आत्मा का, उसकी तरंगों का, उस यन्त्र में प्रवेश कराया दूरी यन्त्रों का निर्माण किया, तो उसका साक्षात्कार स्थूल जगत उनके समीप आया और उसमें जो प्रतिभा, जिस क्रियाकलापों में, उसकी स्मरण शक्ति रही उन्हीं क्रियाकलापों को स्मरण शक्ति के साथ, उसमें उसका स्थूल जगत आया और यन्त्रों में दृष्टिपात किया गया। उन यन्त्रों में वही तरंगें स्थूल बन करके मानो जब दृष्टिपात आने लगी, तो वही क्रियाकलाप, वही विचार, वही चिन्तन वही अतिमानवता के रूप में प्रवेश करती रही। तो उस ऋषि ने उन तरंगों को, उस क्रियाकलापों को गति मानव के रूप में उसमें प्रवेश किया। इसी प्रकार आत्मा अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों में न प्रतीत क्या-क्या बन जाती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का यह जो जीवन है, यह बड़ा विचित्र रहा है परन्तु किसी काल में ऋषि-मुनियों की आभा और उनकी गोष्ठियां में विद्यमान होकर के आत्मा परमात्मा की चर्चाएं, किसी काल में यज्ञों के प्रति अनुसन्धान होता रहा। किसी काल में संस्कारों की प्रतिभा के ऊपर विचार-विनिमय होता रहा। किसी काल में गुरु और शिष्य की परम्परा में वह पारायण रचनाओं में वह सदैव तत्पर रहे हैं। इसी प्रकार मानव को यह प्रतीत नहीं, परन्तु जो आत्मा इस शरीर से चला गया, गृह से चला गया, माना किसी काल में वह योगी भी बने, परन्तु उसी प्रतिभा से वह इसी क्रियाकलापों में सदैव रत्त रह करके वेदों की प्रतिभा में वेद मन्त्रों के उद्गीत गाने वाले भी रहे। समय आने पर जहां संसार में अहिंसा परमोधर्म की प्रतिभा में रत्त रहे। जहां वायु के सेवन से भी प्राणी मात्र का ह्रास न हो, मृत्यु को प्राप्त न हो, परन्तु जिनका जीवन इस प्रकार बना वह हिंसक आभा में सदैव रत्त रहे, हिंसा को त्याग करके जब संस्कारों का उद्बुद्ध होता है, तो पुनः से यह अहिंसा में परिणत हो गए। अहिंसा में परिणत होने के पश्चत अपने में इतने विचारों को अन्तरिक्ष में प्रवेश कराते रहे। उन्हीं विचारों को वह मानव शरीर को त्याग करके पुनः से प्राप्त हो गए।

मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं देता हूँ। न देने आया हूँ पूज्यपाद गुरुदेव ने जो संस्कारों की अतिमानव की और मानवता के सम्बन्ध में जो अपनी चर्चाएं की हैं। वह बड़ी विचित्र है और बड़ी महता में सदैव तत्पर रही हैं, तो हमारा विचार यही है, कि मानव अपनी अन्तरात्मा में ली हो जाए। अन्तरात्मा में प्रभु का स्मरण करता रहे। और दूसरों के हित के लिए सदैव तत्पर रहे। क्योंकि मैं भी सदैव अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में प्रवेश करता रहा हूँ पूज्यपाद गुरुदेव ने आत्माओं को सदैव मानवता के रूप में और अतिमानवता के रूप में प्रवेश कराते रहे, उसी प्रकार पूज्यपाद गुरुदेव का इन शरीरों पर बड़ा सहयोग रहा है। इसीलिए मैं कोई विशेष चर्चा तो प्रगट नहीं करता हूँ, न करने ही आया हूँ, केवल विचार यह कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा है कि मृत्यु कोई शब्द नही हैं। प्रत्येक आभा ज्ञान और प्रयत्न के साथ में अपने-अपने संस्कारों को ले करके चला जाता है वह लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करता है, वायु में भी गमन करता है अतिमानवता को प्राप्त करके संसार में जितना मिलाप होता है, उसमें केवल मिलन ओर विच्छेद होने का ही केवल मात्र माना गया है। और मनों का जो स्वार्थ होता है, वही शोकातुर होता रहता है, कि वह दृष्टिपात आ रहा था, आज नही रहा है।

एक आत्मा चन्द्र मण्डल पर है, उसका सम्बन्ध आत्मा पृथ्वी मण्डल पर है, विचार आता रहता है कि आत्मा आत्मा शरीरों से कोई परिचय नही हो पाता, तो न उसका कष्ट होता है और न उसमें शोकातुर होता है। केवल शोकातुर वही होता है, जिसको एक वस्तु का मिलन हुआ है, फिर उसका विच्छेद हो गया है, संकल्प हुआ है, संकल्प का विच्छेद हो गया है। संकल्प से ही जगत का निर्माण होता रहता है। इसीलिए संकल्पों का विच्छेद होना ही एक शोकातुर होता है। तो इसीलिए मैं सदैव यह प्रार्थना करता रहता हूँ, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से ऐसा ज्ञान आत्मा में प्रवेश करा दीजिए, प्रभु की विवेचना करते रहते हैं प्रभु वेदमन्त्रों को जानते रहते हैं कि उसमें ऐसा ज्ञान और विज्ञान है जिनसे हमारा आत्मतव केवल आत्मतव बन करके इस संसार की प्रतिभा में इतना संलग्न न हो जाएं, जिससे हमें नारकिक तत्त्वों को प्राप्त होना हो नारकिकता को प्राप्त न हो। हम सदैव अन्धकार को त्याग करके प्रकाश में जाना चाहते हैं ऐसी सदैव हमारी कामना रहती है, हमारी इच्छा रहती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज बहुत पुरातन काल के पश्चात अपने मौलिक विचार प्रगट किए हैं और मौलिक विचारों में अतिमानव की चर्चाओं का विवेचन होता रहा और हमने भी अपने विचार व्यक्त किए कि जन्म-जन्मान्तरों से जो आत्मा योगी बनता रहा, संसार में आता रहा, संसार में आ करके पुनः पुनः उन संस्कारों को उद्बुद्ध करने के लिए सदैव तत्पर रही है गद्देलें में जा करके संस्कारों की उद्बुद्धता करता रहता है, ऐसा सुन्दर यह क्रियाकलाप ऐसा विचार आता रहता है, वैदिक साहित्य में और वेद के मन्त्रार्थों में, याग इत्यादि क्रियाओं में रत्त हो करके पुनः-पुनः संस्कारों को जागरूक करके प्रत्येक प्राणी को करना चाहिए जैसा अदभुत आत्मा

करती है। देवयान की आत्मा करती रहती है ऐसा हमारा सदैव क्रियाकलाप रहना चाहिए। २४.०६.१९८८

641. पुरोहित

आज का हमारा वेद मन्त्र हमें नाना प्रकार की प्रेरणा देता रहता है। क्योंकि ये जो मानवीय जगत है, यह प्रेरणा का स्रोत है। यहाँ प्रत्येक मानव प्रेरणा प्राप्त करता हुआ, अपने में ही अपने को दृष्टिपात करता रहता है और इस ब्रह्माण्ड को भी अपने में ही रत्त कर लेता है। तो आज का हमारा वेद मन्त्र, हमें प्रेरणा दे रहा है, प्रेरित कर रहा है कि हम उस परमपिता परमात्मा को अपने में धारण करके, अपने में ही उसका दिग्दर्शन करते रहे। जिससे अपने में ही मानवीयतव में सीमित न रह सके और विचारवेत्ता बन करके इस संसार सागर से पार हो जाए। वेद का मन्त्र यह कह रहा है, प्रेरित कर रहा है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र यहीं तक हमें सीमित नहीं कर रहा है, वेदमन्त्र कह रहा है, यज्ञं पुरौहितां ब्रह्मण्णा वृत्ति देवाः वेद की आख्यिका कह रही है कि वे परमपिता परमात्मा ब्राह्मण है। वे परमपिता परमात्मा पुरोहित है, वे पुरोहित पन करके हमारा कल्याण कर रहे हैं। जैसे पराविद्या को धारण करने वाला परोहित राष्ट्र, समाज और मानवीयतव को ऊँचा बनाता रहता है, इसी प्रकार वे परमपिता परमात्मा पुरोहित है, जो हमारा पालन कर रहा है। हमें नाना प्रकार की प्रेरणा दे करके, नाना प्रकार के ज्ञान में हमें रत्त करके नाना प्रकार की आभाओं में नृत्त करा रहा है। तो वे परमपिता परमात्मा हमारा पुरोहित है, पराविद्या को हमें प्रदान करने वाला है। हम उस परमपिता परमात्मा को पराविद्या के रूप में स्वीकार करते है वह पुरोहित हैं, वह कैसा पुरोहित है? जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान के समीप पुरोहित विद्यमान हो करके वह नाना पराविद्या को प्रेरित करता हुआ, वह अपने याग को ऊँचा बनाता है। इसी प्रकार वे परमपिता परमात्मा इस संसार रूपी यज्ञशाला को, इस संसार रूपी याग को ऊर्ध्वा में ले जाते है, वे रचनाकार है। और रचनाकार होने से ही वे पराविद्या में रत्त रहने वाले पुरोहित माने गएं है। २७.०८.१९८८

642. गुरुदेव के चरणों

बहुत पुरातन काल हुआ जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत रहते थे, तो हमें दीप मालिका के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चायें और दीप के सम्बन्ध में वे नाना प्रकार की विद्या का अध्ययन भी कराते रहे। २३.०९.१९८८

643. माता कौशल्या जी की दक्षिणा

मैं दक्षिणा प्रदान करन चाहती हूँ क्या तुम्हारी इच्छा है? तो ऋषि-मुनियों ने कहा-कि तुम दक्षिणा प्रदान करो, हमें संसार की कोई इच्छा नही हैं। हम केवल दक्षिणा चाहते हैं। जब यह कहा तो प्रभु! क्या दक्षिणा चाहते हो? तो ऋषि ने कहा कि हम उस दक्षिणा को चाहते हैं, जिससे मानव की मानवता का ह्रास न हो, वह दक्षिणा कहलाती है।

मुझे स्मरण है, जब कौशल्या जी ने दक्षिणा के लिए कहा, प्रार्थना की तो ऋषियों ने ये कहा हे दिव्या! तुम दक्षिणा प्रदान करो। उस समय जब दक्षिणा अर्पित करने लगी, तो उन्होंने कहा प्रभु! क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि हम यह चाहते हैं, कि यह जो राष्ट्र चल रहा है, इस राष्ट्र में कुछ हीनता प्रारम्भ हो गई हैं। हमारी इच्छा यह है कि तुम ऐसे सन्तान को जन्म दो, जिस सन्तान के जन्म होते ही प्रकाश आ जाएं।

मुझे स्मरण है, कौशल्या जी ने उस प्रतिज्ञाबद्ध हो करके, यह कहा कि मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही करूंगी। मैं ये प्रतिज्ञा करती हूं। तो, मुझे स्मरण आता रहता है, उन्होंने यह प्रतिज्ञा की और यह संकल्प में प्रदान कर दिया, कि मैं अपने बाल्य को अपने गर्भ से संस्कारित, पुत्र को जन्म देना चाहती हूँ। ०२.१०.१९८८

644. स्मृति

मुझे भी स्मरण आता रहता है, जब हम किसी काल में अपने बाल्य पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते रहते थे, तो गुरूजन एक समय जब भयंकर वनों में, गान गा रहे थे, तो सर्पराज, भृगराज उनके चरणों की वंदना कर रहे थे। चरणों को स्पर्श कर रहे थे, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा हे प्रभु! यह क्या कारण है जो हिंसक प्राणी भी, आपके चरणों की वंदना कर रहे है, और आप के स्वरों को ध्वनियों को श्रवण कर रहे है।

पूज्यपाद गुरुदेव ने, मुझे जो उत्तर दिया था, उस समय वह बड़ा प्रियतम है। उन्होंने कहा था क्या, यह जो मानव, जब वेद का गान गाता है, सामगान गाता है, वह हृदय से जब गाता है, श्रद्धामयी हो करके गाता है, तो ये सब जितने भी प्राणी मात्र है, वह सब उस परमपिता परमात्मा के पुत्र के तुल्य है, और जब वेदों का गान क्योंकि वेदो का गान, उस प्रभु की महती है, उसमें प्रभु का विज्ञान है और उसमें प्रभु की प्रसन्नता है, तो उन स्वरों को कौन पान करके कौन अपने, अपने में कौन नहीं प्रसन्न होगा? इसलिए सर्पराज हो, मृगराज हो ऋषि-मुनि तो उनसे खिलवाड़ करते रहे है, और खिलवाड़ करके उसको अपने कण्ठ से आलिंगन करते रहे है। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने जब यह उत्तर दिया तो हम मौन हो गएं। तो इन परमाणुओं की जो रक्षा करता है, वह प्राण को उद्गीत बना करके, जो इसकी रक्षा करता है, वह देवी जो वीरांगना बन जाती है, और मानव ब्रह्म चरिष्यामि बन जाता है। वह ब्रह्मचरिष्यामि कौन होता है? जो देववत कहलाता है। १९.१०.१९८८

645. महाराजा दिलीप जी

मुझे स्मरण आता रहता है, यदि राजा के अन्तर्हृदय में, किसी प्रकार की विकृतियां हो जाए, तो बुद्धिमान विवेकी पुरुष भयंकर वनों से आ करके, उन्हें सांत्वना देते है, शिक्षा देते हैं। हे राजन! तेरा राष्ट्र यहां विकृत हो गया है, इसको ऊंचा बना। तो ऋषि-मुनि उसको आश्वासन देते है, शिक्षा देते है, तो राजा पुनः से अपने विशुद्ध मार्ग पर आ जाता है। तो विचार आता रहता है, राजा के राष्ट्र में, पवित्रतव होने चाहिए। जैसा महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की, महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा-हे राम! तुम्हें प्रतीत है, तुम्हारे जो पूर्वज रहे है, जैसे महाराजा दिलीप जी रहे है, दिलीप जी के हृदय में एक समय शांत अपने आसन पर विद्यमान हो करके, एक विकृति उत्पन्न हुई और यह विकृति यह हुई, कि उनके कोई संतान नहीं हुई, जब कोई संतान नहीं हुई, तो महाराजा दिलीप के हृदय में अपनी देवी से बोले-हे देवी! हे मनु कृतिका देवी! आज हम अपने में बड़े अनुभव कर रहे है, कि हमारा जीवन अन्धकार में चला गया है। इसीलिए राष्ट्र में अन्धकार है, यह सर्वज्ञ अन्धकार दृष्टिपात आ रहा है, देवी ने कहा-हे प्रभु! ऐसा उच्चारण मत कीजिए, क्योंकि ऋषि-मुनि अभी वशिष्ठ जैसे महापुरूष महर्षि श्रृङ्गी जैसे पुरूष तुम्हारे राष्ट्र

में गान गाने वाले हैं। हे प्रभु! जो वेदों का अध्ययन करने वाले है, ऐसे महापुरूषों को ला करके, आप उनसे कुछ विचार-विनिमय कीजिए। महाराजा दिलीप के हृदय में यह विचार आया कि देवी यथार्थ कहती है, तो उन्होंने ऋषि-मुनियों को एकत्रित किया। जिसमें महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि वृत्तिका, और महर्षि वैशम्पायन और महर्षि शृङ्गी इत्यादि एकत्रित करने के पश्चात उन्होंने यह प्रार्थना की कि प्रभु! यह जो राजा सगर का, जो वंशलज है, यह समाप्त होने जा रहा है। हे प्रभु! कोई न कोई उक्ति उच्चारण कीजिए अन्यथा मैं प्रभु! से विमुख हो जाऊंगा। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले क्या हे राजन! तुम इतने अपने में ह्रासता को क्यों प्राप्त हो रहे हो? यह तो समय आता ही, जाता रहता है। परन्तु तुम नहीं रहोगे, राष्ट्र जब भी रहेगा, और, तुम नहीं थे, संसार में यह राष्ट्र उससे पूर्व भी रहा है। परन्तु रहा वंश की चर्चाएं, इसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। २५.११.१९८८

646. भगवान राम पुत्रेष्टि याग

जिस काल में बेटा! अयोध्या में एक पुत्रेष्टि याग हुआ था, वह याग मुझे स्मरण आता रहता है। जब वह याग हुआ, तो याग के पश्चात, वह याग इस प्रकार का था जो तपस्वियों के द्वारा, जो भयंकर वनों से लाए हुए, महापुरूषों के द्वारा वह पुत्रेष्टि याग हुआ था। उसमें अंगिरस गोत्र में जन्म लेने वाले श्वेतकेतु मुनि महाराज विद्यमान थे जिनकी वृत्तियों में शृङ्गी इत्यादि को वहाँ उनका पर्दापण होने के पश्चात याग का प्रारम्भ हुआ, जब वह याग का प्रारम्भ हुआ, तो याग में एक महानता अग्नि देव की उपासना करनी थी, क्योंकि अग्नि तेजोमयी कहलाता है, जो अग्नि काष्ठ में गमन करने वाली है, वाणी रूप बन करके वही अग्नि कहलाती है, वही अग्नि द्यौ में ऊर्ज्वा के साथ में सूर्य अपनी किरणों में, अपने में धारण करता रहता है, वही ऊर्ज्वा मानो देखो, अग्नि के स्वरूप को अपना करके ही, ऊर्ज्वा को प्राप्त करता है, तो अग्नि देव को जब प्रगट करने के पश्चात, चरू और भयंकर वनों से औषध को लाया गया, तो चरू के द्वारा, याग जब प्रारम्भ हुआ, नाना साकल्य अग्नि देवता को प्रसन्न करना बहुत अनिवार्य है, क्योंकि वही अखण्ड अग्नि, जो सूर्य द्यौ में प्रकाशित हो रही है, वही अखण्ड अग्नि माता के गर्भाशय में प्रदीप्त हो रही है, वही अग्नि है जो जिस अग्नि में शिशु पनप रहा है, शिशु तेजोमयी, उष्णता को प्राप्त कर रहा है, और वही उष्णता उसको महान बना रही है, उसी उष्णता के द्वारा माता के विचार आ रहे हैं, उनका प्रतिपदा वायसुतं अपनें में धारयामि बनाया जा रहा है। ०८.११.१९८८

647. गुरुदेव को प्रेरणा

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को, समय-समय पर कुछ प्रेरणा प्राप्त होती रहती है, पूज्यपाद गुरुदेव के मेरे समीप नियुक्त कर देते हैं। आज का हमारी यह जो आकाशवाणी हमारी जो वचनामृत है, वह मृतमण्डल में, उनका प्रसारण हो रहा है, मेरा तो अन्तरात्मा तो बड़ा ही प्रसन्न रहता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने नामकरणों और गर्भाशय की भी चर्चा की, और आज का वाक्, मैंने प्रेरणा के आधार पर, कुछ वाक् भी, मेरी प्रबल इच्छा रहती है, क्या उन वाक्यों में एक महानता की प्रतिभा होनी चाहिए। विचार केवल यह कि आज एक नामोकरण संस्कार को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, प्रभु! यह जो प्रतिक्रियाएं हैं, ये परम्परागतों से सृष्टि के प्रारम्भ से ऋषि-मुनियों का एक वेद के मन्त्र के आधार पर, वैदिकता को ले करके, इनको इन्होंने निर्माणित किया। ऋषि-मुनियों ने सबसे प्रथम नामोकरण की प्रथा यह सृष्टि के प्रारम्भ से ही है। जब मानव का जन्म हुआ अति मानव, यह जब उनका जन्म हुआ, तो उसके प्रारम्भ से ही इसकी आभा मानी गई है। यह ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों मे वैदिक आभा में और मन्त्रार्थ में जो निहित थी, जिसको ऋषि-मुनियों ने साकार रूप बनाने का तपस्या के द्वारा प्रयत्न किया। उन्होने उसका साकार रूप बनाया, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो बहुत से ऐसे क्रियाकलाप कराए हैं। आज मैं इस सम्बन्ध में तो कोई विवेचना नही, विचार केवल यह कि इसका ह्रास होता गया है। महाभारत काल के पश्चात, उनका ह्रास होना प्रारम्भ हुआ, वास्तव में तो महाभारत से पहले ही कुछ काल पूर्व ही इसका ह्रास होने लगा था। क्योंकि अज्ञान आने लगा, अज्ञान जब महाभारत काल का जब यह संग्राम हुआ था, उस काल में बुद्धिजीवी प्राणी, सब ह्रासता को प्राप्त हो गएं। उसके पश्चात यहाँ वाममार्ग का चलन आया, वाममार्ग में यह जो प्रथा थी, नामोकरण की, यह नाम ही नाम उच्चारण करने लगे, परन्तु प्रथा समाप्त होने लगी यह प्रथा मृत्यु के रूप जैसे मृतक प्राणी श्वास लेता-लेता रहता है, ऐसे यह संस्कार आज भी मृतक प्राणी के तुल्य यह श्वास ले रहा है। यह कही कही दृष्टिपात आता है, वह अपवाद के रूप में इसका चलन नही है, चलन क्यों नही रहा? क्योंकि सबसे प्रथम मेरी पुत्रियाँ, जब पुत्र पुत्रियों को जन्म देती थी, तो यह नामोकरण उच्चारण करने लगती थी, ये क्रियाओं से करती रहती, क्योंकि अध्ययन की परम्परा बड़ी विचित्र रही है, बड़ी विशुद्ध रूप में रही है। तुम्हें मेरे पूज्यपाद अभी-अभी उच्चारण कर रहे थे, राम के यहाँ भी जब सीता के यहाँ गर्भस्थल में पुत्र की स्थापना हो गई, जो त्रैत माह का गर्भाशय हुआ तो सीता को बाल्मीकि आश्रम में प्रवेश किया, संस्कार, माता के दिए हुए संस्कार ही, संसार से जाने तक वह क्रियाकलाप, उसके मस्तिष्क में चलते रहते हैं, वह क्रियाकलाप के रूप में बने रहते हैं। ०८.११.१९८८

648. गुरुदेव के विचार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज बड़े गम्भीर अपने विचार दिए हैं, जब यह विचार देते थे, बाल्यकाल में जब हम अध्ययन करते रहते थे, लाखों वर्षों पूर्व जब यह विचार देते थे, उन विचारों को पूर्व से उद्गीत रूप में गा रहे थे, बड़ा अध्ययन क्रियात्मक विचार इन्हें प्रगट किया। २७.११.१९८८

649. अश्वपतिकाल में शिक्षण

मैंने बहुत पुरातन काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालय में कुछ शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कन्याओं को शिक्षाएँ दी हैं, उनका जीवन बड़ा महानता में गमन करता रहा है। ०६.०१.१९८९

650. मगध राष्ट्र में गुरुदेव

एक समय तुम्हें प्रतीत होगा, जब मैं पूज्यपाद अध्ययन करता था, तो अध्ययन काल में, आचार्य ने एक समय मेरे पितर ने कहा-चलो, आज हम मगध राष्ट्र का भ्रमण करेंगे। तो उन्होंने इस वाक् को स्वीकार कर लिया, और वह भ्रमण करते हुए, मगध राष्ट्र में पंहुचे, और पूज्यपाद गुरुदेव के सहित और हम मगध राष्ट्र में

पंहुचे, तो हमने कात्यायन के गृह में वास किया और वास करने के पश्चात, गृह स्वामिनी ने यह कहा पूज्यपाद गुरुदेव से कि ये पितर कितने होते हैं? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा पितर, बहुत होते हैं। जो भी शिक्षा देते हैं, वह सर्वत्र पितर होते है, और जड़वत में भी, जितना भी यह जड़ जगत हैं, और जड़ जगत में जो क्रियाकलाप हो रहा है, वह सर्वत्र एक प्रकार का सर्वत्र एक पितर कहलाते हैं, वायु हमारा पितर कहलाता है, ये जगत सर्वत्र एक पितर के रूप माना गया है। हम जब इस प्रकार अपनी विचित्र कल्पना करते हैं, और विचित्रता में प्रवेश करते हैं, तो ये सर्वत्र एक पितर तुल्य एक जगत है। तो पितरों की विवेचना करते हुए, आचार्यों ने कहा, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि माता सबसे प्रथम पितर है, पिता भी पितर है। आचार्य भी पितर है। यह जो पंच महाभूत हैं, पृथ्वी है, अग्नि है, आपो है, और यह वायु हैं, अन्तरिक्ष है, सर्वत्र पितर कहलाते हैं। और इन्ही पितरों की विवेचना करते हुए, उन्होनें पितर भी ब्रह्मा आचार्यो ने यह विवेचना की, तो कात्यायन के गृह में गृहस्वामिनी ने कहा कि-प्रभु! यह पितर क्यों हैं? उन्होंने कहा पितरों की एक ही विवेचना है, कि जो हमें देते हैं, शिक्षा रूप में, या हमें अपने हृदय से हृदयग्राही बनाते हैं यह सब देवता जन और पितरजन कहलाते हैं। इस प्रकार पितरों की विवेचना करते हुए, ऋषि ने जब यह वर्णन किया, तो कात्यायन के गृह में, कात्यायन ने पुनः यह प्रश्न किया, क्या यह पितरों का पितर कौन है? तो उन्होंने कहा कि पितरों का पितर, एक चेतना है, जो संसार में, संसार को स्थिर किए रहती है, वह चेतना कहलाती है, वे परमपिता परमात्मा पितरों का पितर है। इसीलिए हम उसी को अपना पितर स्वीकार करके, अपने जीवन को ऊँचा बनाएं। १४.०१.१९८९

651. महर्षि लोमश मुनि का दीर्घ आयु

तो महर्षि लोमश मुनि महाराज ने कहा कि मेरे विचार में जो तुम उच्चारण कर रहे हो, तुमने जाना है, ये वेदामृत कहलाता है। ये वेद के मन्त्रों में विद्यमान है, ये विज्ञान। तो इसका हमने बहुत समय पूर्व अध्ययन किया था, उस समय, महर्षि लोमश मुनि महाराज का बड़ा आयु था, बड़ा विचित्र इनका आयु, बड़ा विशाल था, वे शिकामकेतु उद्दालक से भी १८५ वर्ष उनकी विशेष आयु थी। तो उनका जीवन बड़ा ब्रह्म में विचरण करता रहता था। ०९.०२.१९८९

652. गुरुदेव को वर्तमान का प्रवचन स्थिति में बोध नहीं

यह जो वर्तमान का काल है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो इस काल को जानते नहीं हैं। ०९.०२.१९८९

653. महर्षि लोमश मुनि, महर्षि शिकामकेतु के आश्रम में

मैं महर्षि लोमश मुनि कहते हैं, कि मैं, एक समय मैं महर्षि शिकामकेतु उद्दालक गोत्र में पंहुचा था और उद्दालक गोत्र में जो ऋषिवर थे, वह याग कर रहे थे, अनुष्ठान कर रहे थे, उनका एक सौ पांच वर्ष का अनुष्ठान प्रारम्भ हो रहा था, एक समय मैं जब उनके द्वार पर पंहुचा, तो महर्षि शिकामकेतु उद्दालक ने कहा आईए ऋषिवर! मैं उनके आश्रम में विद्यमान हो गया, वह प्रातःकालीन नाना प्रकार का साकल्य ले करके और वह कामधेनु गऊं इन्द्र के यहाँ से प्राप्त हुई थी। वह कामधेनु गऊ और घृत दुग्ध इत्यादि ले करके, वह याग कर रहे थे, वह अनुष्ठान करने लगे। ०९.०२.१९८९

654. वायुमण्डल प्रेरणा का आधार

मैंने बहुत पुरातन काल में, तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, और आज का हमारा वायुमण्डल भी यह प्रेरणा दे रहा है, तरंगें हमें प्रेरणा दे रही हैं, क्योंकि मानव प्रेरणा का स्रोत माना गया है, इसीलिए प्रेरणा आती रहती है, और मानव उनका परिवर्तन करता रहता हैं। १२.०३.१९८९

655. अश्वपति के यहाँ याग

मुझे स्मरण आता रहता है एक समय, हमारे यहाँ महाराज अश्वपति के यहाँ एक याग हुआ, उनके विद्यालय में एक याग हुआ था, जिसको वृष्टि याग के नाम से वर्णन किया गया। तो याग के जो ब्रह्मा थे, वह महर्षि वैशम्पायन थे और जो उद्गाता थे, जिसे हम उद्गीत गाने वाला कहते हैं, वह महर्षि विभाण्डक थे, विभाण्डक मुनि जब गान गाते थें। वेद मन्त्रों का जब उद्गीत गाते थे, आत्मा से जब गान गाते थे तो प्राणी मात्र मौन हो जाता था, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब याग में उद्गाता के रूप में होता गण, अपने उद्गीत गाते रहे हैं, तो महानता की प्रतिभा का जन्म होने लगता है। तो मुझे वह समय स्मरण आ रहा है, महाराज महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज जब गान गाने लगे, तो उनका गान इतना प्रिय अन्तरिक्ष में मेघ उमड़ने लगते थे, और मेघों से वृष्टि प्रारमभ होती है। तो ऐसा मुझे उस याग के सम्पन्न होने के पश्चात नाना ऋषि-मुनियों का एक समूह विद्यमान था, जिसमें, महर्षि वैशम्पायन थे महर्षि सोमकेतु मुनि ने यह श्रवण किया कि महाराज! वृष्टि याग किसे कहते हैं? उन्होंने कहा जहाँ आपो की वृष्टि हो जाए, और वह वृष्टि याग कहलाता है। जहाँ अपने में राष्ट्र को उन्नत बनाया जाए। ०२.०४.१९८९

656. वर्तमान का दु:खित जगत

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा क्या, इस समय वर्तमान में यह जो जगत चल रहा है यह इतना दु:खित हो गया है, क्या वायु मण्डल को इसने दु:खित करके यह वायु मण्डल दूषित हो गया है समय आ रहा है। ०२.०४.१९८९

657. याग में यज्ञमान का दायित्व

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब यागों में परिणत होते, तो उस समय यागों में यज्ञमान एक-एक वर्ष तक ब्रह्म का चिन्तन करना, ब्रह्मवर्चोसि का पालन करना, तो उनकी जो विचारधारा थी, वह वायु मण्डल का पवित्र बनाती रहती, आधुनिक जगत यह बन रहा है, क्या मैं एक कर्म कर रहा हूँ, परन्तु मन और क्रियाकलाप कहीं चला जाए, जब इस प्रकार के विचार होते हैं। ०२.०४.१९८९

658. याग से प्रसन्नता

जहाँ आज हमारी यह आकाशवाणी जा रही हैं, विचार जा रहे हैं, वहाँ एक याग का आयोजन हुआ और मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न रहता हैं। और मेरा हृदय

यज्ञमान के साथ रहता हैं, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, और द्रव्य का सदैव दुरूपयोग से दूरी हो करके और उसका सदुपयोग होता रहे, मेरा अन्तरात्मा सदैव यज्ञमान के साथ रहता हैं। १६.०४.१९८९

659. प्रेरणा

मुझे भी कहीं से कोई प्रेरणा प्राप्त हुई है, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को उन विचारों में ले जाने के लिए आया हूँ, जो विचार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव देते रहें हैं परन्तु यहाँ आत्मा का प्रसंग आता है आत्मा अपने में महान और पवित्र कहलाता है और वह आत्मा गणना में नहीं आ पाती है, क्योंकि यह अनन्तमयी जगत है, जिसका अन्नतमयी जगत होता है। वह गणना में आना असम्भव बन जाता है। जहाँ यह है, क्या हम प्राण सत्ता के द्वार पर जाने के पश्चात, जितना भी स्थूल जगत है, ज्ञान और प्रयत्न से शून्य जगत है, वह एक माला के रूप में दृष्टिपात आता रहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था, कि मानव को अपने जीवन की धारा में रत्त रहना है तो जहाँ आत्मा का प्रसंग है, इस प्रसंग को हम यहीं सान्त्वना देना चाहते हैं, क्योंकि यह विचार हम अपने स्थान में पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न उत्तर करेंगे इसके सम्बन्ध में हम कुछ और गम्भीर मुद्रा में हम परिणत हो करके हम मुद्रित हो जाएं। तो हमारा ऐसा मन्तव्य आज का हमारा वेदमत्र पूज्यपाद तो गागर में सागर की कल्पना करते रहते हैं, और यह उच्चारण करते रहते हैं, परन्तु मैं तो केवल उसी क्षेत्र में, अपने विचारों को ले जाना चाहता हूँ, जहाँ राष्ट्रवाद की चर्चाए होती रहती है, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था, कि आधुनिक काल में, मैं जब वैज्ञानिकों के कुल में प्रवेश करता हूँ, वैज्ञानिकों के क्षेत्र में जाता हूँ, परन्तु कहीं, समुद्र के तट पर विद्यमान हो जाता हूँ, जब मैं आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं के समीप जाने का हमारा प्रयास होता है, तो आत्मा का प्रसंग हमारे समीप केवल राष्ट्रवाद का प्रसंग हमारे समीप आ जाता है। यह जो राष्ट्रवाद की प्रणाली है इसका भी कोई निर्माणवेत्ता है इसको भी निर्माणित किया गया है, परन्तु जब इस जगत में निर्माणवेत्ता को विचार लिया जाता है, तो प्रत्येक वस्तु उसके लिए अध्ययनीय हो जाती है। ०२.०५.१९८९

660. सृष्टि के प्रारम्भ से अनुष्ठान

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, जितने भी अनुष्ठान होते रहे है, वे अनुष्ठान इसलिए किए जाते हैं, कि अनुष्ठानवेत्ता अपने में अपनेपन का दर्शन करता रहता है और वह अनुष्ठान इसलिए कि मैं अन्धकार में न जाऊँ, मेरा जीवन प्रकाश में चला जाए, तो प्रकाश के लिए, प्रत्येक मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है, अथवा विचारता रहा है, वैदिक साहित्य में, उसे अपने में धारण करता रहा है। ०४.०५.१९८९

661. आत्मा का गमन

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत-सी विद्याओं को पाया हैऔर जो नेत्रों से जाता है, वह अग्निमयी प्राणियों को प्राप्त होता रहता है, जो श्रोत्रों से जाता है, वह दिशा वृत्तियों को प्राप्त होता रहता है। इसी प्रकार मैं यह कहता रहता हूँ कि यह जो आत्मा, जहां हमारी आकाशवाणी जा रही है, इस गृह से इसका उत्थान हो गया है, वह ममता से रहित हो करके अपने शरीर को त्याग करके सूर्य लोक को प्राप्त हो गया है। सदगति अपने में वृत्त है, यू तों संसार में स्वार्थवाद मानव के स्मरण आता रहता है, मानव की प्रतिभा में रत्त होता रहता है, तो इसीलिए मैं अपने विचारों में जो मुझे स्मरण आ रहे हैं मुझे भान हो रहा है वे उद्गीत रूप में गा रहा हूँ। ११.०५.१९८९

662. महाराजा अश्वपति का अयोध्या राज

मुझे वह काल स्मरण है। महाराजा अश्वपति अयोध्या में राज करते थे। और उसका सर्वत्र भू मण्डल पृथ्वी पर राज्य हो गया था, उसका कारण क्या था, कि वह याग करते थे। वह वाजपेयी याग और अग्निष्टोम याग और अपने मानवीय जीवन को भी एक यज्ञशाला के रूप में स्वीकार करते रहते थे, तो राजा उसका अनुसरण करने लगा और जो महाराजा उच्चारण करते वह सर्वत्र.राजा स्वीकार का लेते थे। २९.०७.१९८९

663. महानन्द जी को प्रेरणा

मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हो रही कि हम याग के सम्बन्ध में, पूज्यपाद गुरुदेव के विचारों के ऊपर टिप्पणी करूँ, परन्तु टिप्पणी हमारे लिए सुशोभनीय नहीं है। मेरा अन्तरात्मा जहाँ हमारी यह वाणी जा रही है, आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक याग का आयोजन हुआ, याग सम्पन्न हुआ। मेरा अन्तरात्मा सदैव यज्ञमान के साथ रहता है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। ०५.०८.१९८९

664. याग और वाम काल

वर्तमान में जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक याग का आयोजन हुआ, मेरा अन्तरात्मा सदैव यज्ञमान के साथ रहता है, क्या जो वाममार्ग का काल, अब बना हुआ है, रूढ़िवादियों का काल बना हुआ है, ऐसे काल में, ऐसा द्रव्य का सदुपयोग करना, यह उसका सौभाग्य है, वह मेरा अन्तरात्मा कहता है, इनका सौभाग्य अखण्ड बना रहे, इसके साथ मैं अपने इन विचारों को शान्त कर रहा हूँ। ०५.०८.१९८९

665. महर्षि कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश

मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय, महर्षि कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि अपने आसन पर विद्यमान थे। तो महर्षि लोमश मुनि से एक समय महर्षि कागभुषुण्ड जी ने ये कहा कि-प्रभु अग्नि में कौन-सी अग्नि है, जिसका हम पूजन करें और जिसे हम अपने आचरण में लाए? तो महर्षि लोमश मुनि ने यह कहा कागभुषुण्ड जी, ऋषि ने कहा-हे ऋषिवर!संसार में सबसे जो महान अग्नि है, वह गृहपथ्य नाम की अग्नि है। क्योंकि गृहपथ्य नाम की अग्नि से ही गृह उज्ज्वल और पवित्र बना करते हैं और उसमें वास करने वाले भी महान बनते हैं। तो हमें स्मरण आता रहता है महर्षि कागभुषुण्ड जी बोले कि -प्रभु! मैं गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करना चाहता हूँ, अथवा अनुष्ठान करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा -बहुत प्रियतम! तो महर्षि कागभुषुण्ड जी अपने स्थान पर विद्यमान हो करके वायुमण्डल को पवित्र बनाने के लिए उन्होंने, अग्नि का चयन किया और उस अग्नि के समीप विद्यमान हो करके याग करने लगें, अपने विचारों को, एक धाराएं अग्नि की वृत्तियों

में रत्त कराके, द्यौ लोक में प्रवेश कराने लगे। वह द्यौ लोक में जाने लगीं, क्योंकि अग्नि ही एक ऐसी अग्नि है, जिसकी धाराओं पर शब्द विद्यमान हो करके द्यौ में प्रवेश करता रहता है और द्यौ में स्थित रहता हुआ वो शब्द अग्नि की धाराओं पर, गमन करता है। उस समय अग्नि, उस शब्द का अश्व बन करके गमन करता रहता है। जब यह विचार आता रहता है तो वेद के मन्त्र, अनन्य वेद के मन्त्र इस प्रकार के स्मरण आने लगते हैं, जहाँ ये अग्नि के सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार दिए हैं और यह जो अन्तरिक्ष है, द्यौ है यह सर्वत्र शब्दायमान हो रहा है, शब्दों की प्रतिभा में सदैव रत्त हो रहा है। तो महर्षि कागभुषुण्ड जी ने, अपना अनुष्ठान किया। ०९.१०.१९८९

666. महर्षि लोमश एवं पवित्र वायुमण्डल से साधना

महर्षि लोमश मुनि ने कहा अवश्य तो आप क्या कहना चाहते है? उन्होंने कहा मैं बारह वर्ष का एक अनुष्ठान चाहता हूँ, जिस आश्रम में मैं याग करता हूँ, उस आश्रम को मैं, वेद-मन्त्रों से और याग के परमाणुओं से भरण करना चाहता हूँ, जिससे मेरी साधना पवित्र हो जाए, मैंने आज यह अध्ययन किया है। अपने मानवीय जीवन का अध्ययन किया है। कि बिना तपस्या साधना के अन्तरात्मा के समीप संसर्ग में रहते वाले अवयव है। वह प्रकृति से ओत-प्रोत रहते है और वह प्रकृतिवाद का अन्धकार जब तक मेरे से समाप्त नहीं होगा, तब तक मैं साधना में नही पहुँचूगा और साधना तब तक नही होगी, जब तक वायुमण्डल पवित्र नही बनेगा, वायु मण्डल को पवित्र बनाना है और वायुमण्डल में प्रवेश करना है और वायु मण्डल को वातावरण को पवित्र बना करके तब मैं प्रभु के समीप जाने वाली साधना में साधना को विशुद्ध कर सकता हूँ। और बिना साधना के मेरा जीवन पवित्र नही बनेगा, हे प्रभु! मैं उस अपने सखा के द्वार पर, मैं पहुँच सकूँगा, जिस सखा के लिए प्रत्येक आनन्द के लिए पिपासी रहता है। एक पुत्र याग करने वाले, माता-पिता यह चाहते है। क्या हमारे सन्तान का जन्म होगा, तो हम एको बहुधा की प्रेरणा को पा करके वह इच्छित रहते है, कि मुझे सुखद प्राप्त होगा, मैं पितर यागी बन जॉऊ, मैं पितर बन जाऊँगा। ०१.१०.१९८९

667. योग सिद्ध आत्माएं

महर्षि कागभुषुण्ड जी और लोमश मुनि अपने में चर्चा करने लगे, उन्होंने कहा हे प्रभु! योग सिद्ध आत्माएं किसे कहते हैं, तो महर्षि लोमश मुनि बोले कि हमारे विचार में तो योग सिद्ध आत्माएं वह होती है, जो दोनों प्रकार के जगत का समन्वय कर लेती हैं, दोनों प्रकार का जगत क्या है भगवन! उन्होंने कहा दोनों प्रकार का जगत एक जड़ जगत है और एक चैतन्य जगत है, चेतना के मूल में ज्ञान और प्रयत्न रहता है और जड़ जगत में पिण्ड रहता है, क्रियाएं भी रहती है। परन्तु ज्ञान ओर प्रयत्न से वह शून्य रहता है। वह जड़ जगत कहलाता है, और दोनों प्रकार के जगत में वे परमपिता परमात्मा निहित रहते हैं। ये आश्चर्य जनक है क्या दोनों प्रकार का जगत है परन्तु दोनों प्रकार के जगत में वे परमपिता परमात्मा निहित रहते हैं। १३.१०.१९८९

668. गुरुदेव की तपस्याएँ

पूज्यपाद गुरुदेव का तो बड़ा अनुभव है, इन्होंने बहुत अध्ययन किया है, तपस्याऐं की है, तपस्या के प्रति भोग में अपने में बहुत दूरी ले जाते हैं, हमें विचार देने लगते हैं तो बहुत दूरी चले जाते है, दर्शनों में चले जाते है, तो दर्शनों की, याग में प्रवेश हो जाते है, मैं परमपिता परमात्मा से सदैव प्रार्थना करता रहता हूँ-हे यज्ञमान! तू सदैव महानता में गमन करता रहे। और जितने भी दुःखद हृदय में प्रवाह, उसकी दाह तेरे हृदय में नहीं रहनी चाहिए ये तो जन्म-जन्मातरों के संस्कारों की कड़ी है, ये बनी रहेगी। संस्कार विद्यमान होते हैं, जब तक यह जगत हैं और संस्कारों से जहाँ विहीन हुआ, वहीं परमात्मा से उसका मिलन हो जाता है। ०३.१२.१९८९

669. गुरुदेव के द्वारा अध्ययन और बलि स्वरूप

बाल्यकाल में, जब हम पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते रहें, उस काल में भी उड़ान बडी विचित्र उड़ी जाती थी, और याग के सम्बन्ध में जितना अध्ययन किया जाएं, उतना ही सूक्ष्मतम कहलाता है। परन्तु इसी याग पर, नाना प्रकार के आक्रमण भी हुए हैं, पूज्यपाद गुरुदेव तो उस आक्रमण को इतना नही जान पाते, परन्तु महाभारत के काल में और उसके पश्चात याग के ऊपर आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। और यागों में देखो, अर्थों को न जान करके याग के ऊपर उन्होंने एक अशुद्धिकरण का और अपने स्वार्थपरता का उन्होंने अपना एक परिचय दिया। जब मैं यह कहता रहता हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव से, प्रभु! आपने वाजपेयी याग का वर्णन किया है, अग्निष्टोम याग का नामोकरण उद्गीत गाया है, और अजामेध और अश्वमेध याग अपने यागों का वर्णन किया परन्तु महाभारत काल के पश्चात इन अर्थों को न जान करके, स्वार्थपरता में, वह अपने-अपने मन, अर्थों को ले करके, उन्होंने याग के ऊपर आक्रमण किया। जैसे अग्निष्टोम याग में बैल की बलि का वर्णन है, परन्तु बलि का अर्थ केवल पुरूषार्थ को न जान करके, मध्य काल में केवल उसको केवल बलि का स्वरूप किया और बलि का अर्थ पुरुषार्थ है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की भाषा में मैं आधुनिक भाषा नही कह रहा हूँ, जो पूज्यपाद गुरुदेव हमें विश्लेषण कराते रहते हैं, और हम भी उसका विश्लेषण करते रहे हैं। परन्तु आधुनिक काल में महाभारत के पश्चात वाममार्ग काल आया, और वाममार्ग ने यागों के ऊपर आक्रमण किया। क्योंकि याग जब तक जीवित है, संसार जीवित है, और याग अगर मृत्यु को प्राप्त हो गया तो संसार की भावना ही मृतक बन जाती है ऋषि-मुनियों की विचारधारा मृतक बन जाती है। जब इस प्रकार, अर्थो का अनर्थ हुआ, जैसे गो मेध याग में गो का वर्णन है, और अजामेध में बकरी की बलि का वर्णन है, अश्वमेध याग में अश्व घोड़े का वर्णन है, क्या उसकी इन्द्रियों की आहुति दी जाएं। २६.०१.१९९०

670. संस्कारों के कारण याग प्रवृति

जन्म जन्मान्तरों के संस्कारो में, एक याग की बड़ी प्रतिभा अन्तःकरण में वह क्रियात्मक होती रही है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नाना प्रकार के यागों का कर्मकाण्ड अथवा उस कर्मकाण्ड में जो प्रवृत्तियां रही है, उसके सम्बन्ध में ये अपने में ही विचारते रहे हैं। और हम इनके विद्यार्थी काल में विद्यालय में, प्रवेश रहे हैं, और विद्यालय में प्रवेश हो करके नाना प्रकार की विद्याएं, मानवीय मस्तिष्कों सदैव नृत्त होती रही हैं। ०४.०३.१९९०

671. अश्वपति के यहाँ गुरुदेव

मुझे स्मरण आता रहता है एक समय पूज्यपाद गुरुदेव और बहुत से ऋषि-मुनि एक समय महाराज अश्वपति के यहाँ पंहुचे। अश्वपति ने कहा-प्रभु आईए, अन्न ग्रहण कीजिए, भगवन! आप तो मेरे देवतव है। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा था क्या, मैं तुम्हारे अन्न को ग्रहण नही करूंगा, क्योंकि राष्ट्र का अन्न है, यह रजोगुण तमोगुण से सना हुआ है, इस अन्न को ग्रहण करने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी। मेरा ब्रह्मवर्चोसि समाप्त हो जाएगा, आधुनिक काल तो ऐसा महापुरूषों का है। ऐसे साधु महात्माओ का है, क्या राजा यदि उसके समीप आ जाए, तो अभिमान की मात्रा बलवती हो जाती है। और वह प्रत्येक स्थलियों में वह कहता है कि अमुक राजा मेरा शिष्य है, अमुक राजा, मेरा शिष्य है, अरे, वह शिष्य नही है, तुम्हारी अन्तरात्मा की आभा को नष्ट करने के लिए, तुम्हारे समीप आते रहें है, विचार आता रहता है, कि महापुरूषों की प्रतिभा एक महानता में परिणत होनी चाहिए, विचार केवल यह कि राजा अपने में ब्रह्मवेत्ता हो और राजा प्रत्येक रूढ़िवादों के आचार्यों के समीप विद्यमान हो करके उनसे शास्त्रार्थ और विचार-विनिमय होना चाहिए, जिज्ञासा में परिणत रहना चाहिए। ऐसा जो राजा वह समाज को ऊँचा बना सकता है, और जो राजा सम्प्रदायों को धर्म कहता है, वह राजा नहीं कहलाया जा सकता, वह ब्रह्मज्ञानी नही कहलाया जा सकता, नाना प्रकार की रूढ़ियों का नष्ट करना, एक आभा को जन्म देना, एकोकी ईश्वर को स्वीकार करना, महापुरूषों के वाक्यों का पालन करना। ०४.०३.१९९०

श्रृङ्गी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि याग

कौशल्या जी ने कहा, हे प्रभु! आपको प्रतीत है, हे मातेश्वरी! जब यहां महर्षि श्रृङ्गी ने यहां याग किया था, तो उस याग में दक्षिणा मेरे से स्वीकार की है, और यह कहा है कि ऐसी सन्तान को जन्म देना चाहिए, जिससे उनका ज्ञान और तपस्या में परिणत हो करके देवतव को प्राप्त हो जाएं। मेरा यह जो तप है और मैं इस तपस्या में तल्लीन हो रही हूँ। मातेश्वरी! मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नही करूंगी, क्योंकि संसार का ये नियम रहा है, क्योंकि जब भी मानव साधक बना है, या वह सुधार की वार्त्ता प्रगट करता है, उसी काल में मानव वह अपने में वह संकल्पोमयी अमृत को प्राप्त कर लेता है। ०१.०७.१९९०

672. गुरुदेव द्वारा बासठ प्रकार के याग

पूज्यपाद गुरुदेव का यह सर्वोपरि एक उपदेश रहा क्या याग करना चाहिए। क्योंकि याग के ऊपर उनका बड़ा अध्ययन है। बासठ प्रकार के जो यागों का जो क्रियाकलाप है वह यह मानो सर्वत्र मानो अपने में धारण करते रहें हैं। और उसके कर्म काण्ड और उसकी प्रतिक्रियाएं उसका उपचार उनके द्वारा रहता था तो इस सम्बन्ध में ने जाता हुआ, जैसे वृष्टि याग का या पुत्रेष्टि याग का इन्होंने वर्णन किया है, वह याग अपने में बड़े विचित्र और बड़े महान कहलायें जाते हैं। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में नाना प्रकार के यागों का चयन कराया है। १७.०७.१९९०

673. महानन्द जी का गुरुदेव द्वारा त्रेता काल में भ्रमण

मुझे वह काल स्मरण है जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार त्रेता के काल में भ्रमण करता रहा हूँ, तो उस समय राजा रावण के यहाँ चार प्रकार के सम्प्रदाय थे, जिसमें एक शैव मत था, परमात्मा के नाम पर जब भी मत बनेंगे अथवा विचार बनेंगे उसमें कुरीतियां होती रहेंगी। और जब यह नाना प्रकार की रूढ़ियों में यह समाज चला जाएगा। तो यह एक समय क्रांति का बहुमूल्य बन करके रहेगा, मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आधुनिक चर्चाएं की परन्तु जहाँ नाना प्रकार की सम्प्रदाय हैं। और वह सम्प्रदाय ईश्वर के नाम पर हैं। और वह एक दूसरे के रक्त के बहाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जब भी ईश्वर के नाम पर रूढ़ियाँ बनी हैं, उसी काल में यह समाज का विनाश होता रहा है। और राष्ट्रवाद की अपनी प्रणालियां नष्ट होती रहीं हैं, वह केवल पद को ही दृष्टिपात करता है। वह अपने लाभप्रदता को नहीं उसी को हमारे यहाँ वाममार्ग कहा जाता है। तो नाना प्रकार की रूढ़ियाँ समाप्त होनी चाहिए। १७.०७.१९९०

674. गुरुदेव की शिक्षा

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब बाल्काल में शिक्षा देते रहते थे, तो शिक्षा का एक ही मूल रहता है क्या हम सब आत्मा के अनूकुल मानव को अपने क्रियाकलापों में तत्पर रहना चाहिए। १७.०७.१९९०

675. पुत्रेष्टि याग

राजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि याग का आयोजन हुआ। जिसमें महर्षि व्रीति अंगिरस मुनि महाराज उस याग में विद्यमान हुए और महर्षि श्रृङ्गी ने उस याग को पूर्ण रूपेणता में परिणत कराया। तो जब मुझे वैदिक काल स्मरण आने लगता है, तो प्रायः हृदय गद्गद् हो जाता है। उन्होंने जब याग किया और याग करने के याग की उन्होंने भूमिका में आचार्यो ने यह उपदेश दिया, हे राजन! तुम अपने को ब्रह्म में पिरोया हुआ स्वीकार करो। क्योंकि ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यही होता है, कि जो अपने को उसमें में चरा देता है।

उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। याग की भूमिका जब, निर्माणित हुई तो निर्वाचन हुआ। क्योंकि हमारे यहाँ यागों में निर्वाचन की जो प्रणाली है, ये परम्परागतों से ही, मानी गई है। परन्तु इस प्रणाली में, मध्य काल में, कुछ अन्तर्द्वन्द्व भी हुआ, और मध्य काल में इसमें कुछ अन्धकार भी आया। परन्तु पुनः वह उसी प्रकार से निर्माणित हो जाता है। तो पुत्रेष्टि याग हुआ और राजा को उपदेश दिया गया। अंगिरस मुनि ने नाना प्रकार के साकल्यों को ले करके, श्रृङ्गी ऋषि की सहायता से, उन्होंने उस याग में औषधियों का एक पात बनाया, और पात बना करके वह औषधियों का पात उन देवियों को प्रदान कर दिया।

याग जैसे ही समाप्त हुआ, अब याग के पूर्ण होने पर एक दक्षिणा का प्रसंग आता है। हमारे यहाँ दणिणा का ये जो प्रसंग है ये मानवीयतव में परम्परागतों से ही, माना गया है। ये सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक एक एक नृत्य होता चला आ रहा है, और उसे कहते हैं दक्षिणा और दक्षिणा द्रव्य नहीं है। दक्षिणा में देना चाहिए, जो यज्ञमान के हृदय में या देवी के हृदय में, किसी प्रकार की त्रुटियां, या किसी प्रकार की न्यूनता मानी गई है। उसे वह आचार्य को प्रदान करते चले आए है। जब सभा परिपूर्ण हो और उस समय जबयाग सम्पन्न हो गया, चरू उनका निर्माणित हो गया, तो उस समय सबने अपनी-अपनी दक्षिणा के

लिए, ऋषि को आह्वान किया, और ऋषि से सबसे प्रथम राजा ने द्रव्य युक्त पूर्ण आहुति वह पूर्णता को प्राप्त कराई। परन्तु जब कौशल्या जी का वृत्त हुआ, तो कौशल्या जी ने कहा-हे प्रभु! मैं आपको दक्षिणा देना चाहती हूँ। उन्होंने कहा हे पुत्री! तुम क्या दक्षिणा दे सकती हो? उन्होंने कहा-जो भी दक्षिणा आप मेरे से स्वीकार करेंगे, मैं वहीं प्रदान करूंगी। क्योंकि दक्षिणा का जो समन्वय रहता है, वह हृदय से रहता है। दक्षिणा का समन्वय हृदय से है और हृदय का जो समन्वय है वह वह श्रद्धा से है। और श्रद्धा का जो समन्वय है वह हृदय, परमात्मा के अन्तर्हृदय से है और मानव के अन्तर्हृदय का जब समन्वय हो जाता है, तो वहाँ से दक्षिणा का प्रादुर्भाव होता है। हे प्रभु! हृदय, श्रद्धा और दक्षिणा इन दोनों का, एक दूसरे से परस्पर मिलान रहता है। तो उन्होंने कहा-प्रभु! जो भी आप दक्षिणा, मेरे से स्वीकार करना चाहते हैं, वह उद्गीत गाईए, मुखारबिन्दु से उच्चारण कीजिए। महर्षि अंगिरस गोत्रीय और महर्षि श्रृङ्गी वे दोनों शान्त हैं, परन्तु देवी ने चरणों की वन्दना करते हुए कहा-प्रभु! आप अपने मुखारबिन्दु से उद्गीत गाईए, कि आप क्या चाहते हैं दक्षिणा में? उन्होंने कहा-देवी! यदि तुम दक्षिणा दे सकती हो, तो हम तुम से स्वीकार भी कर पाएंगे, जो तुम देना चाहती हो। उन्होंने कहा-भगवन्! जो तुम मेरे से आग्रह करोंगे, आज्ञा दीजिए प्रभु! आप मेरे से दक्षिणा लीजिए। उन्होंने कहा-तो हे पुत्री! हम ये चाहते हैं, कि जिस भावना से हमने चरू को यज्ञशाला में परिपूर्ण कराया है, औषधियों का पिपाद बनाया, और वह तुम्हें प्रदान की है, तो हम यह चाहते हैं कि तुम्हारे गर्भ से ऐसे बाल्य का जन्म होना चाहिए जिससे राष्ट्र और समाज ओर महान से महान पवित्रता को प्राप्त होता रहे। उन्होंने कहा-ये कैसे हो सकता है?

महर्षि श्रृङ्गी ने कहा-हे पुत्री! एक समय मैं आचार्य के द्वारा अध्ययन करता था, जब अध्ययन करता था, तो मुझे स्मरण नहीं आता था, मेरी बाल्य काल में ही स्मरण शक्ति सूक्ष्म बन गई, तो मेरे आचार्यजन ने कुछ औषधियों को खरल बनाकर, उसका पिपाद बनाकर, उसका लेपन करते थे। उन्होंने कहा कि तुम मुडल व्रीति, ब्रीहि, मृचिका इन तीन औषधियों के, तीन वृक्षों के, पत्रों को पान करो और उनको पान करने से तुम्हारे मस्तिष्क की जो ग्रन्थियाँ हैं, उनका स्पष्टीकरण हो जाएगा। उन्होंने कहा कि अन्नादि तुम्हारा पवित्र होना चाहिए। मुझे जब अन्न के लिए कहा गया तो मैंने उसी अन्न को पान करना प्रारम्भ किया, कहीं उसको जल में, अग्नि में, तपा करके पान करना, मूल में कि उदर की पूर्ति करना और अध्ययन करना। जब अध्ययन के क्षेत्र में चले गएं, तो जो बुद्धि की ग्रन्थियाँ थीं, उनका स्पष्टीकरण होने लगा, क्योंकि बुद्धि से पूर्व मनन, मन पवित्र है और मन के पवित्र होने पर मेधावी प्राप्त हो जाती है। और जब मेधावी बुद्धि प्राप्त हो जाती है। तो ऋतम्भरा भी प्राप्त हो जाती है। जब ऋतम्भरा भी प्राप्त हो जाती है, तो बुद्धि, मेघा और ऋतम्भरा वे ऋतम्भरावी बनकर करके प्रभु की इस सृष्टि को निहारने लगती हैं। और जब सृष्टि को निहारा जाता है, परमात्मा के अमूल्य जगत को निहारने लगते हैं तो हमारे मस्तिष्क की अनन्तमयी जो ग्रन्थियाँ हैं, उनका स्पष्टीकरण हो जाता है, और जीवन तपस्या में परिणत हो जाता है।

तो ऋषि ने कहा-हे पुत्री! हम यह चाहते हैं कि तुम्हारे गर्भ से ऐसे बाल्य का जन्म होना चाहिए, जो राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाए और संसार में रूढ़ि न रह पाए, क्योंकि ईश्वर के नाम पर जो रुढ़ियाँ होती है, वह राष्ट्र और समाज का विनाश कर देती है। जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन कराया तो कौशल्या ने कहा-प्रभु! ऐसा ही होगा।

676. माता कौशल्या के गर्भ में राम

मुझे स्मरण आता रहता है, कौशल्या का जीवन जिन्होंने उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया। स्वयं कला कौशल करना, उन्होंने प्रारम्भ किया, और जो भी कला कौशल से द्रव्य आता उनको वह ग्रहण करती रहती। जब वह ग्रहण करती, तो उनके मस्तिष्कों में एक से एक महान तरंगें का जन्म होने लगा। एक समय जब माता भयंकर वनों में पहुंची तो महर्षि श्रृङ्गी से बोली-हे प्रभु! मेरे गर्भस्थल में तृतीय माह के अमृतां बाल्य वृत्तियों में प्राप्त हो गया है। हे प्रभु! मुझे कोई उक्ति उद्गीत गाईए, क्योंकि मेरा मस्तिष्क तो उस आहार से पवित्र बन गया हैं। प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ, कि अब मैं क्या करूं? उन्होंने कहा यह जो तुम्हारा प्राण है, इस प्राण को तुम व्यान में प्रवेश कर दो, और व्यान को समान में प्रवेश कर दो। और समान, प्राण को प्रवेश करके, तुम उदान में व्यान में परिणत करते हुए तुम वहाँ चित्त के मण्डलों का दर्शन करो, और चित्त के मण्डलों का दर्शन करते हुए, वह जो तुम्हारे गर्भस्थल में शिशु पनप रहा है। चतुर्थ माह में उस आत्मा से तुम वार्त्ता प्रगट कर सकती हो।

उस समय यह युक्तियां देवी को परिणत करा दी। और ये जब उन्होंने कहा-प्रभु! धन्य हैं। पन्द्रह दिवस ऋषि के आश्रम में उन्होंने प्राण विद्या को जाना। क्योंकि हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, एक प्राण विद्या का बड़ा नृत्य होता रहा है। प्राण विद्या का अपने में नृत्य करते-करते हुए, क्योंकि रूग्णों के रूप में यदि रूग्णों को नष्ट करना है, तो प्राण के द्वारा जैसे खेचरी मुद्रा प्राणायाम किया जाता है। तो उससे जो शरीर में अग्नि का काण्डव, अग्नि, प्रचण्ड हो गई है, वह अग्नि उससे शमन हो जाती है। वह अग्नि को अपने में शमन कर लेता है। और यदि शीतलता का प्रकोप आ गया है, तो उस समय शीतलता को शान्त करने के लिए वह सूर्य प्राण का आश्रय लेता है, सूर्य प्राणायाम करता है। जब माता को अपने में प्राणायाम करना हो और गर्भ की आत्मा से कुछ वार्त्ता प्रगट करनी हो, तो एकान्त स्थली में विद्यमान हो जाओ। और वह मन और प्राण दोनों का आश्रय ले करके और प्राण को उदान में प्रवेश करते हुए और उदान को समान में और समान को व्यान में प्रवेश करते हुए वह अपने गर्भ की आत्मा से वह मेरी प्यारी मां वार्त्ता प्रगट कर सकती है। और वह कहती है कतमोऽसि सम्भवः प्रह्वे कृतम हे आत्मा! तू कहाँ से आयी है? हे आत्मा! तू कौन है? वह अपनी आत्मा से आत्म परिचय लेती है।

महात्मा श्रृङ्गी ने उन्हें यह वार्त्ता प्रकट करायी। और प्रकट कराने के पश्चात उन्होंने कहा-धन्य है हे गार्गेय गोत्राणी ब्रह्मणा यह उद्गीत गाते हुए उन्होंने कहा प्रभु! पन्द्रह दिवस उन्होंने यह अभ्यास किया। अन्नादि का पान करती थी। पत्र पुष्पों के द्वारा, पन्द्रह दिवस के पश्चात वह पुनः अपने गृह में प्रवेश हो गयी।

जब गृह में आ पहुंची, तो राजा को कुछ समय में ये प्रतीत हुआ कि कौशल्या जी राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण नहीं कर रही हैं। एक समय राजा कौशल्या के कक्ष में पहुंचे और राजा ने कहा-हे देवी! मैंने ये श्रवण किया है कि तुम राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण नहीं कर रही हो। उन्होंने कहा-हां प्रभु! मैं ग्रहण नहीं कर रही हूँ। उन्होंने

कहा-क्यों नहीं कर रही हो? उन्होंने कहा-राष्ट्र का जो अन्न होता है, वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है। क्योंकि राष्ट्र का अन्न कोई पवित्र नहीं होता, इसलिए मैं इसको ग्रहण नहीं कर पाऊंगी। जो मेरे जो पूज्यपाद गुरुदेव, जिनको मैंने दक्षिणा प्रदान की है, अन्नादि के लिए।

अश्वपति के राष्ट्र में गुरुदेव ने अन्न ग्रहण नहीं किया

उन्होंने मुझे एक गाथा प्रगट कराई थी कि एक समय महर्षि शृङ्गी और अपने कुछ ब्रह्मचारियों सहित वह महाराजा अश्वपति के यहाँ पहुंचे। और महाराजा अश्वपति के राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं किया था। तो प्रभु! मेरी भी यह मनोकामना है, मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करना नहीं चाहती हूँ। क्योंकि मैं यह चाहती हूँ कि मेरे गर्भस्थल में, जो शिशु पनप रहा है, देवता उसकी रक्षा कर रहे हैं। तो हे प्रभु! मेरी अन्तरात्मा ये कहती है, कि मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण न करूं। राजा ने कहा-देवी! यह तो अपसरात हो जाएगा, क्योंकि राजा के राष्ट्र के अन्न को न ग्रहण करना, ये तो बड़ा अन्वित है। उन्होंने कहा-प्रभु! मैं तो संकल्पवादी हूँ, और संकल्प ही राजन बड़ा पवित्र होता है। क्योंकि तुम राजा जो हो, वह केवल संकल्पमात्र से हो और प्रभु! वह संकल्प ही तुम्हें राष्ट्रीय प्रणाली में ऊर्ध्वा को गमन करा रहा है। इसलिए ये जो ब्रह्माण्ड है, यह सर्वत्र एक प्रकार का यह जगत यह संकल्पमात्र कहलाता है। हे प्रभु! जब यज्ञमान यज्ञशाला में उपस्थित होता है, तो वह याग करने का, अपने में संकल्प लेता है। देवी से कहता है हे देवी! आओ, हम संकल्प करते हैं कि हम याज्ञिक बनेंगे। तो वह संकल्प करते हैं। वह अपने दिवस की प्रणाली का उद्घोष करते रहते हैं। तो वह संकल्पमयी हैं। जब पति और पत्नी का संस्कार होता है, तो वह भी एक संकल्पमात्र है और संकल्पमात्र से ही जीवन की प्रणाली, जीवन की लीला प्रारम्भ होती है, और वही जीवन की आभा शान्त हो जाती है। तो ये क्या है? केवल एक संकल्पमात्र है भगवन!

मेरे प्यारे!उन्होंने कहा-हे देवी! मैं तुम्हारे व्याख्यान को, व्याख्यान के द्वारा मैं तुम्हें ह्रास नहीं कर सकता, मेरी तो एक प्रार्थना है कि तुम अन्न को ग्रहण करो। देवी ने कहा-प्रभु! मैं अन्न को ग्रहण नहीं करूंगी। क्योंकि मैंने आचार्यो को दक्षिणा दी है, यज्ञ में, और वह दक्षिण का हृदय से ही समन्वय रहता है और हृदय से उद्घोष होता रहता है, हृदय में ही श्रद्धा का प्रादुर्भाव होता है प्रभु!, राजा ने विचारा कि यह तो अप्रता है, ये देवी मेरे वाक् को स्वीकार नहीं करेगी। मैं आज महात्मा वशिष्ठ और माता अरुण्धती के द्वार पर पहुंचूंगा और ये दोनों इनको अन्नादि ग्रहण करा सकते हैं।

तो मुझे स्मरण आता रहता है आज मैं तुम्हें ऐसे काल की चर्चा कर रहा हूँ, जहां एक दूसरा अपने में संघर्ष कर रहा है अपनी मानवीयता का संघर्ष कर रहा है, राजा ने सायंकाल के समय में, उन्होंने अपने आश्रम को प्रस्थान किया। और वह भ्रमण करते हुए, वह महात्मा वशिष्ठ के आश्रम में पहुंचे। तो महात्मा वशिष्ठ आश्रम में रात्रि छा गई थी। माता अरुण्धती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की विवेचना हो रही थी, अपने में चर्चा कर रहे थे। वे तपस्वियों की चर्चा करते रहते थे। पति पत्नी वे ही महान बनते हैं, जो जब रात्रि छा जाती है, चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो जाता है या प्रतिप्रदा से ले करके जो सायंकाल को, जब पति पत्नी विद्यमान हों, तो उनको महापुरुषों की चर्चा करनी चाहिए। कि महाराज अमुक तपस्वी कितना महान है और हम कितने निकृष्ट हैं। अपने में अपनेपन को भी विचारना चाहिए। माता अरुण्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज रात्रि को एकान्त स्थली में विद्यमान हो गए, और वह ये चर्चा करने लगे, पूर्णिमा दिवस, उस समय, वह जो दिवस था अष्टमी का था। अष्टमी के दिवस दोनों चर्चा करने लगे। उन्होंने कहा-प्रभु! यह अर्धभाग वाला जो चन्द्रमा है, ये कैसा प्रकाश दे रहा है और इसके प्रकाश का तो कोई द्वितीय, इसकी आभा प्रकट नहीं कर पाता। महात्मा वशिष्ठ मुनि बोले-हे अरुण्धती! ये जो चन्द्रमा अपना प्रकाश दे रहा है ऐसे ऐसे ऋषि हैं हमारे यहाँ जो सहस्त्रों चन्द्रमा भी आ जाएं और वह अपना प्रकाश देने लगे, तो तपस्या के आगे वह प्रकाश भी न होने के तुल्य होता है। माता अरुण्धती बोली कि-प्रभु! तपस्या किसे कहते हैं? जिसकी आप चर्चा कर रहे हैं, उसका मुझे आप निर्णय तो दीजिए।

677. तपस्या का स्वरूप

उन्होंने कहा-देवी! तपस्या उसे कहते हैं, जो मन, कर्म वचन से एक-सा उसका चलन रहता है वह तो उसके व्यवहार का तप बन गया, उससे आगे चल करके, आत्मा परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप को जानना और उसकी भिन्नता में जब वह रमण करता है, तो उसका यह मानसिक चिन्तन, मानसिक तप हो गया है। और हे देवी! जब आत्मा, परमात्मा से जब वार्त्ता प्रगट करने लगता है, तो आत्मीय तप बन गया है। तो हे देवी! इसका नाम तप है। उन्होंने कहा कि-प्रभु! यह तपस्वी क्या-क्या कर सकता है? उन्होंने कहा-हे देवी! जो मानव व्यावहारिक तप में पवित्र होता है, उनका यह लोक, यह जो पृथ्वी लोक है, वह इसे विजय कर लेता है। जैसे वह व्यवहार में उसके मन, कर्म, वचन उसकी प्रतिभा महान बन जाती है। वह मन से स्वच्छ रहता है, और मन, कर्म से स्वच्छ रहता है, मन से वह मनन करता है। इन विषयों को जो मनन करने वाला है, वह मानव बुद्धिमानों से वार्त्ता प्रकट करता रहता है। अपने को नम्र बना लेता है और नम्र बना करके यह जो पृथ्वी लोक है। उसमें वह विजय कर लेता है, सारथी बन जाता है। और उसके पश्चात जो मन, कर्म, वचन से पवित्र बनने वाली जो धाराएं हैं, वह जब उद्बुद्ध हो जाती हैं तो वहीं संसार की, आन्तरिक प्रतिक्रियाओं को जानने लगता है, और जान करके लोक लोकान्तरों की माला बना लेता है, और वह विज्ञानवेत्ता बन जाता है। और वह एक कण-कण में विज्ञान को ही दृष्टिपात करने लगता है। तो यह उसका द्वितीय प्रकार का, जब आत्मा परमात्मा और प्रकृति को जानने लगता है तो वह कहता है, आत्मा कहता है कि मैं कौन हूँ? वह कहता है-मैं आत्मा हूँ। वह कहता है-ये परमात्मा है, जो मेरा संचालन कर रहा है और आगे कहता है जिसकी गाड़ी में विद्यमान हो करके, वह जो प्रकृति रूपी गाड़ी है, जिसमें मैं विद्यमान हूँ और वह जो मेरा स्वामित्व कर रहा है, विज्ञानवेत्ता उसका सारथी बन जाता है और विज्ञान उसको महानता में रमण करने लगता है, वह परमपिता परमात्मा है और मैं प्रकृति के मण्डल में विद्यमान हो करके लोक लोकान्तरों की यात्रा कर रहा हूँ। ऋषि वशिष्ठ ने कहा-हे देवी! ये नाना प्रकार की धाराओं में जो मानव रत्त होता है, वही तो अपने अनाहद रूप में विद्यमान होता है। वशिष्ठ मुनि ने कहा एक समय देवी! मैं ब्रह्मा जी के द्वारा पर चला गया, और ब्रह्मा जी तपस्या में परिणत हो रहे थे। ब्रह्मा जी से मैंने कहा-प्रभु! यह आप क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा-मैं व्याकरण की पद्धति का निर्माण कर रहा हूँ। जब ऋषि ने ये कहा कि मैं व्याकरण की पद्धति को निर्धारित कर रहा हूँ, तो मैंने कहा-प्रभु! आप कैसे कर रहे हैं? तो वह एकान्त स्थान का जो सरगम होता है, प्राणों का अपान में जो सरगम होता है, अपान का जो समान में सरगम होता है, समान का व्यान में जो सरगम हो

करके मानो व्यान में प्रवेश कर जाता है तो वहाँ प्राणों की ध्वनियां प्रारम्भ हो जाती है, और उस ध्वनि को ऋषि मुनि परम्परागतों से ही, अनाहद के रूप में परिणत करते रहे हैं। और वह जो स्वर ध्वनि हो रही हैं, मस्तिष्क में जो स्वर ध्वनि हो रही है, जैसे लोक लोकान्तरों की एक तरंग दूसरी तरंगो से तरंगितत होती रहती है। एक दूसरी तरंगे जैसे चन्द्रमा की जो तरंगे हैं। वह सूर्य तरंगित हो जाती हैं और सूर्य की जो अदिति तरंगे हैं वह और नाना लोक लोकान्तरों में प्रवेश कर जाती है। और वह एक-दूसरे की तरंगों में तरंगित हो करके, ये ब्रह्माण्ड ध्वनि-धारक बन जाता है। ध्वनित होने लगता है। इसी प्रकार जो महान साधक हैं, ऋषिजन हैं जो व्याकरण की पद्धति को जानना चाहते हैं, स्वर ध्वनियों में, उसमें सम्भवः प्रह्वाः वह अपने में ध्वनित हो जाते हैं। और ध्वनित कैसे होते हैं? वह अनाहद की स्वर ध्वनि को सरगम को अपने में धारण करने लगते हैं। ३१.०७.१९९०

678. ब्रह्माण्ड को प्रेरणा

आज मेरा हृदय हर्षित हो रहा है, जहाँ हमारी यह वाणी जा रही है, वहाँ एक याग का आयोजन हुआ। इसीलिए मैं अपने ब्रह्माण्ड को प्रेरित करता रहता हूँ, कि याग के सम्बन्ध में विवेचना होनी चाहिए। ब्रह्माण्ड, उसको स्वीकार कर लेते है। केवल मेरा तो एक ही मन्तव्य रहता है, कि याग होने चाहिएं। जैसा ब्रह्माण्ड नाना प्रकार की घोषनाएं करते रहते है। मैं घोषणा में नहीं, केवल विचार-विनिमय कि मेरे आचार्यजन परम्परागतों से ही, वैदिक साहित्य की पूंजी कहलाते है, और वेद के मन्त्रों के आधार पर अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं। हमारा जो यह वाक्य है, यह मृतमण्डल में, जहाँ याग को आयोजन हुआ, मैं यह कहता रहता हूँ, मेरा अन्तरात्मा यज्ञमान के साथ रहता है, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सदैव सौभाग्य अखण्ड बना रहे! क्योंकि जिस गृह में अग्नि को देवताओं का माध्यम बना करके अग्नि के मुख में जो हूत कर रहा है, उसका चित्र और उसका शब्द, द्यौ में रमण कर जाता है। वह अग्नि की धाराओं में जो शब्द आता है, वेदमन्त्र जाता है, उसके साथ में तो वह द्यौ में प्रवेश हो जाता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो मुझे ये वाक्य वर्णन नहीं कराना है। केवल मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उद्गीत गाता रहा हूं, हे पूज्यपाद! यह संसार बड़ी वृत्तियों में रत्त हो रहा है। मैं यह कहता रहता हूँ कि पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत-सी वार्त्ताएं स्मरण कराते रहते हैं और यह ज्ञान के सागर में ले जाते हैं, जहाँ हम शान्ति की स्थापना में परिणित हो जाते हैं। आज, मैं अपने यज्ञमान को केवल एक अपने दो शब्द उच्चारण करने के लिए कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और तेरे गृह में सदैव द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। क्योंकि जो यज्ञमान बनता है, याज्ञिक कहलाता है। वो ही तो द्यौ में रमण करता है और द्यौ से वो ही पृथ्वी में गमन करता है और वही पृथ्वी से द्यौ में चला जाता है। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे प्रकट कराते रहते हैं, तो इसीलिए याज्ञिक बनना चाहिए। ०२.१०.१९९०

679. याग से प्रसन्नता

जहां हमारी ये वाणी जा रही है वहां एक याग हुआ है वहां साम गान को अपने में ग्रहण कर रहा था मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न रहता है। १०.१०.१९९०

680. कात्यायन के यहाँ गुरुदेव

एक समय हमारे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि हे ब्रह्मचारियों! भ्रमण करने चलें। भ्रमण करते हुए मगध राष्ट्र में कात्यायन के गृह में वास किया और वहाँ से और वहाँ से प्रातःकाल में भ्रमण करते हुए महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में पंहुचे। महाराजा अश्वपति ने कहा कि आईए भगवन्! कुछ भोज्य ग्रहण कीजिए। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि नहीं, राजन तुम्हें प्रतीत है, कि हम राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही करते हैं क्योंकि राष्ट्र का अन्न दूषित होता है। वह रजोगुण, तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है, इसीलिए हम उसको ग्रहण नही कर सकते। पूज्यपाद गुरुदेव ने जब ऐसा कहा तो राजा ने कहा कि हे प्रभु! मेरा अन्न पवित्र है, अतः आप उसे पान कीजिए। आप मेरे यहाँ अतिथि बन करके आए हैं इसीलिए हमारा कर्तव्य है कि हम आपका पूजन करें। पूजन का अभिप्रायः है कि हम आपके अन्न इत्यादि से तृप्त करें। ०४.०१.१९९१

681. माता कौशल्या के गर्भस्थल में आत्मा

मुझे स्मरण आता रहता है जब माता कौशल्या के गर्भस्थल में आत्मा विद्यमान था, राम जैसा शिशु विद्यमान था, तो माता कौशल्या ने अपने मन ही मन में यह विचारा कि मुझे क्या करना है, तो एक समय वह अंगिरस गोत्र में एक ऋषि थे, उनके द्वार पर पंहुची उन्होंने कहा हे ऋषिवर! आपने मेरा पुत्रेष्टि याग किया, और मेरे गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश हो गया है, उन्होंने कहा यह महर्षि शृङ्गी से उनके द्वार पर जाओ, उनसे यह प्रश्न करो, मैं इस सम्बन्ध में इतना नही जानता हूँ, तो उन्होने ऋषि के द्वार पर जा करके, यह प्रश्न किया, तो उस समय उन्होंने कहा हे दिव्या! तुम्हें अपने गर्भ में शिशु को कैसा बनाना है तो तुम त्याग तपस्या वाले अन्न को ग्रहण करो और त्याग तपस्या वाला अन्न वह है, जिन विचारों से तुम अन्न को भोजनालय में तपाओगे और जिस विचारों से वह अन्नाद होगा, उसको तपा करके पान किया जाएं, उसी अन्नाद के जो रस हैं, उसी से माता के गर्भस्थल में पिण्ड का निर्माण होता है, प्रभु कितना विज्ञानवेत्ता है, वही पिण्ड चन्द्रमा की किरणों से वही सूर्य की ऊर्ज्वा से वही वह वायु की गति से वही अग्नि की उष्ण शक्ति से वही पृथ्वी की अवृत्ति में पिण्ड बनता है, अन्न के रूप में पिण्ड आ जाता है, उसमें जल का सहयोग है, अग्नि का सहयोग है, और चन्द्रमा सूर्य, समुद्रों का सहयोग है, और ऋतुओं का भी सहयोग है वह नाना साकल्य बन करके एक पिण्ड बन गया है, वह अन्न के रूप में पिण्ड आया, माता ने उसे उसी पिण्ड को भिन्न-भिन्न रूपों में खरल करके उसी को पान किया और उसी से यह मानव शरीर के पिण्ड का निर्माण हो गया। वाह रे प्रभु! तू कितना विज्ञानवेत्ता है। जब मैं तेरे विज्ञान की प्रतिभा में रत्त होता हूँ तो हे प्रभु! कोई मेरे अन्तर्हृदय में अथवा आत्म तत्त्व में कोई वृत्तियाँ नही प्राप्त होती। १८.०२.१९९१

682. अश्वपति के यहाँ गुरुदेव

मुझे स्मरण आता रहता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब विद्यालयों में अध्ययन कराते रहते थे, तो एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ पंहुचे। राजा अश्वपति ने कहा

कि आईए भगवन! भोज कीजिए। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे राजन्! मैं तेरे राष्ट्र का अन्न नही ग्रहण करूंगा, क्योंकि राष्ट्र के अन्न से महापुरूषों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ओर मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नही कर पाऊंगा। ऋषि ने जब ऐसा कहा तो राजा बोले कि-प्रभु! मैं स्वयं कामधेनु गऊ का दुग्ध आहार करता हूँ, और मैं स्वत:अपने में मेरी देवी, हम दोनों यहाँ कृषक उद्यम करते हैं, उससे उत्पन्न जो अन्न माता वसुन्धरा देती है, और हम उस अन्न को पान करते है। हम केवल प्रजा को सात्विकता में रमण कराते है। विचार देते हैं, ब्रह्म ज्ञान देते हैं और विद्या का अध्ययन कराते हैं कृषक का अन्न है, वह विद्यालयों में परिणत हो जाता है, तो विचार आता रहता है, ऋषि कहता है, पूज्यपाद गुरुदेव ने जब यह श्रवण किया, राजा ने यह वर्णन किया कि-प्रभु! मैं राष्ट्र में उस अन्न के द्वारा जो मैं अपने में उद्बुद्ध करता हूँ, तुम्हारा अतिथि करना चाहता हूँ, उन्होंने उस अन्न को पान कराया विचार आता रहता है कि इस प्रकार का जो अन्न जब ऋषि और राजा पान करेंगें तो तपस्या बनेगी, रूढ़ियों का विनाश होगा। क्योंकि ईश्वर के नाम पर यह जो रूढ़ियाँ हैं, ये विनाशता को पंहुचाती हैं, इसीलिए रूढ़ि नही रहनी चाहिए। यह राजा जब स्वयं तपस्वी बन जाता है, तो रूढ़ियाँ समाप्त होती हैं और रूढ़ियाँ तब ही समाप्त होती हैं, जब ज्ञानी, ज्ञान का बखान करता है, ब्रह्म ज्ञान में परिणत हो जाता है। राजा जनक के यहाँ जैसे नाना प्रकार के ब्रह्मयाग होते रहे हैं इसी प्रकार मैं राष्ट्रों की चर्चा तो विशेष नही, केवल यह कि वेद मन्त्रों में इस प्रकार की विचारधाराएं आ जाती है, राष्ट्र के लिए और समाज के लिए, ब्रह्म ज्ञान में परिणत होना ही हमारा कर्तव्य है। १९.०२.१९९१

683. गुरुदेव को रुग्ण

मुझे स्मरण आता रहता है पूर्व कालों में जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव रूग्ण हो करके वह अपने में रूग्ण जब समाप्त हो गया तो उन्होंने यह विचारा कि मैं अपने शरीर को त्यागूंगा, तो वह अपने शरीर को अपनी वृत्तियों को शुक्ल पक्ष में ले गएं, यहाँ शुक्ल पक्ष का अभिप्रायः यह है क्या हमें ज्ञानी बनना चाहिए और जब वह आध्यात्मिकवेत्ता बन जाता है और आध्यात्मिक विज्ञान को जान लेता है, उस समय वह प्राणायाम के द्वार वह अपनी उस विद्या को जान करके प्राण के द्वारा प्राणायाम के द्वारा जब शुक्ल पक्ष में अपनी वृत्तियों को अपने ज्ञान को ले करके ज्ञान का नाम ही शुक्ल पक्ष है, जब ज्ञान में चले गएं तो अपने शरीर को प्राणायाम के माध्यम से, अपने शरीर को त्यागते रहे।

तो विचार आता रहता है तो यह अपने में तुम्हें यह महाभारत काल की वार्त्ता भी मैंने कई कालों में प्रगट की है इसी प्रकार मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को और यहाँ नाना ऋषि-मुनि अपने में विज्ञान और विवेक में ले गएं है जब वह अपने को और वह जब शुक्ल पक्ष उनके जीवन में आ गया है, शुक्ल पक्ष का अभिप्रायः प्रकाश है, और कृष्ण पक्ष का अभिप्रायः मानो देखो, अन्धकार कहा जाता है। आध्यात्मिकवाद में और और भौतिकवाद में वह शुक्ल पक्ष चन्द्रमा, अपनी कलाओं से अमृत देता रहता है, और उस अमृत को अपने में बिखेरता रहता है एक दिवस वह आता है, कि वह अमावस्य के दिवस एक भी अंकुर चन्द्रमा का नही होता, और एक दिवस ऐसा आता है, क्या अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो करके पूर्णिमा का चन्द्रमा बन करके, वह अमृत को सोम को देता रहता है, वह सोम को देना ही प्रतिपदा से ले करके पूर्णिमा तक अपनी पन्द्रह दिवस, शुक्ल पक्ष के देता है, और कृष्ण पक्ष वह अपने में अपने को सूक्ष्म बनाता रहता है, और पूर्णिमा के दिवस प्रतिपदा आती है, वह एक कला चली गई द्वितीय आती है, तो दो कला चली गईं, इसी प्रकार कलाओं से विस्मृत हो जाता है, और वह अमावस्या का दिवस बन करके वह अन्धकार में परिणत हो जाता है, वाह रे मेरे प्रभु! तेरा विज्ञान किनता अनुपम है, तेरे विज्ञान का जो मैं बखान करने लगूं, तो हे प्रभु! मुझे कोई मार्ग प्राप्त नही होता है, कि मैं क्या उद्गीत गाने लगूं, तेरे सम्बन्ध में हे प्रभु! तेरा इतना अनुपम यह रहस्यतम जगत है, इसका जो व्यवधान है, वह बड़ा विचित्र है, मैं चन्द्रमा के ऊपर ही अपने विचार देता रहूँ, तो वर्षों चला जाएगा, परन्तु, यह चन्द्र विज्ञान मेरे समाप्त नही हो सकेगा, हे प्रभु! इतना विशाल इस मण्डल मैं क्रियाकलाप होते रहे हैं, प्रकाश आता रहा है, एक दूसरे से समन्वय होता रहा है, वेद की आख्यिका यह कहती है, कि यह शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों अपने को बड़े पूर्णता को प्राप्त होते रहे हैं, जब एक पदा चली जाती है, उसमें अमृत की सूक्ष्मता द्वितीय चली गई, अमृत की सूक्ष्मता और दिवस आता है, तो अमृतमयी चला जाता है। २०.०२.१९९१

684. महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग का वर्णन होता रहा और वृष्टि याग जब महर्षि वैशम्पायन उनके याग में सम्मिलित होते उनके याग में रमण कराते और महर्षि विभाण्डक मुनि का बड़ा अध्ययन था, इस सम्बन्ध में तो नाना प्रकार का चरू बना करके, और चरू बना करके वेदमन्त्रों का उद्घोष करते रहे, और वृष्टि याग के मन्त्रों का जब उच्चारण करते, तो वह स्वाहा कहते तो वृष्टि प्रारम्भ हो जाती, और वह अकाल प्रवृत्ति समाप्त हो जाती,

मुझे वह काल स्मरण है, राजा जनक के यहाँ जहाँ नाना प्रकार के यागों का चयन होता रहा, वहाँ आध्यात्मिक याग का भी चयन होता रहा, वहाँ अग्निष्टोम याग और समावेश होता रहा है। तो वह वेदमन्त्रों का उद्घोष करते और उसमें स्वाहा उच्चारण करते, इस वायुमण्डल को भरण कर देते, जिससे दुषित वायुमण्डल दूषित न हो जाएं, वह महान बन करके उसमें हूत करना और हूत करने के पश्चात, वह महान वेदमन्त्रों का उद्गीत गाते रहते, और उसमें कुछ मन्त्र उनको हम यह उच्चारण करते रहे हैं, और वह इस प्रकार के वेदमन्त्रों का यज्ञमान के द्वार उद्गीत गवाया जाता और पुरोहित, उद्गाता उद्गीत गाता है, और उद्गीत गाता हुआ उन परमाणुओं को जन्म दे देता है क्योंकि साकल्य और चरू उसी प्रकार का और यज्ञशाला उसी प्रकार की निर्माणित की जाती है। २३.०२.१९९१

685. पुत्रेष्टि याग

स्मरण आता रहता है, जब राजा दशरथ के यहाँ अयोध्या में याग होता था, पुत्रेष्टि याग तो उस समय भयंकर वनों से ऋषियों को लाया गया, और भयंकर वनो से कजली वनों से जो मानो एक सौ पैंसठ वर्षो प्रायः जो अखण्ड ब्रह्मचारी थे, उनके द्वारा जब पुत्रेष्टि याग कराया गया, उन्होंने चरू बनाया, तो वह चरू का विज्ञान बड़ा अनुपम है इसी प्रकार वृष्टि यागों में भी, तपस्वियों की आवश्यकता होती है, और तप उसे कहते हैं, जो प्रत्येक इन्द्रियों को विषयों को जानने वाला हो, प्रत्येक इन्द्रियों को विषय को ज्ञान और विज्ञान हो तो वह तपस्वी कहलाते हैं। २३.०२.१९९१

686. याग का अंकुर, बरनावा भूमि

पूज्यपाद गुरुदेव का वह जन्म-जन्मान्तरों का जो वह संस्कार हैं, वह यागों के माध्यम से वह प्रगट होने जा रहा है, और वह जो प्रगट हुआ, वह यागों के रूप में ही प्रगट हो सकता था। क्योंकि अन्तःकरण में इस प्रकार के अंकुर विद्यमान थे। लोक-लोकान्तरों के उनमें याग का एक-एक अंकुर स्थली पर याग कर रहा है। हृदय में जो एक-एक परमाणु याग कर रहा है, वह याग जन्म-जन्मांतरों की आभा में रत्त हो करके पुनः से वह उपजने लगता है। इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के अन्तर्हृदयों में वह उपजने लगा, और उपज करके ध्वनियों का प्रसार हो रहा है, ध्वनित होता हुआ, अपने में ध्वनित हो रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की प्रशंसा करने नही आया हूँ, मैं केवल वास्तविक जो स्वरूप है, उसको मैं वर्णन करता रहता हूँ, समय-समय पर वर्णन करता रहता हूँ। मेरे पूज्यपाद का जो संस्कार है, वह जागरूक हुआ। २४.०२.१९९१

हमारे अन्तःकरण में जन्म-जन्मातरों के संस्कार विद्यमान होते हैं। ०५.०३.१९९२

वशिष्ठ एक उपाधि है, इसी प्रकार श्रृङ्गी भी एक उपाधि मानी जाती है, और उपाधि का अभिप्रायः यह जो पुत्रेष्टि याग और वृष्टि याग में जो पारायण होता हो उसे श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि प्रदान की जाती है। इसी प्रकार यहाँ नाना प्रकार की उपाधियों से, ये संसार अपने में अलंकृत रहा है। ०७.०५.१९९१

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और भी नाना श्रृंग उपाधियों को प्राप्त होने वाले और अपने मानवीय जीवन कल्याण करने लगते हैं। ०८.०५.१९९१

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और भी नाना श्रृंग उपाधियों को प्राप्त होने वाले और अपने मानवीय जीवन कल्याण करने लगते हैं। १७.०५.१९९१

687. अश्वपति के यहाँ गुरुदेव

बहुत पुरातन काल की वार्त्ता स्मरण हैं महाराजा अश्वपति के यहाँ एक समय पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पंहुचे तो महाराजा अश्वपति की देवी ने यह कहा कि-प्रभु! हमारा जीवन राष्ट्र में होते हुए त्याग और तपस्या में हैं मैं यह चाहती हूँ, कि मेरा बाल्य एक ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए और ब्रह्मवेत्ता बनाने की कोई युक्ति मुझे उसकी बताईए, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा-देवी! यदि तुम्हें ब्रह्मवेत्ता को जन्म देना हैं, तो ब्रह्मवेत्ता तो वह होता है, जो ब्रह्म का बखान करना जानता हैं, उन्होंने यह कहा कि ब्रह्मवेत्ता तो वह होता हैं, जो व्यष्टि और समष्टि को दोनों को जान करके अपने में क्रियात्मकता को धारण करता हैं। उन्होंने कहा ब्रह्मवेत्ता तो वह होता हैं, जो ब्रह्म को अपने में ब्रह्म को अपने में जो समावेश कर लेता हैं, उन्होंने कहा-प्रभु! मैं ऐसा ही चाहती हूँ, उन्होंने कहा-देवी! ब्रह्मवेत्ता वह होता है, जिसको मोह नही होता, वह मोह ममता से रहित होता हैं। उन्होंने कह-प्रभु! वही तो ब्रह्मवेत्ता होता हैं। १८.०५.१९९१

688. गुरुदेव के चरणों में

मुझे बहुत समय स्मरण आ रहा है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के चरणों में विद्यमान हो करके इस प्रकार अयोध्या पुरी को जानने में लग जाते, तो गुरुदेव चरणों में ओत-प्रोत करा करके उसका अनुभव कराते रहते। प्राण के द्वारा उसका अनुभव किया जाता हैं। अपान के द्वारा उसी में पुट लगाई जाती है। और व्यान में गति व्राण सुत हो जाती हैं। और, समान में वह व्याप्त रहती हैं और उदान में वह चित्त के मण्डल के ऊपर वह अस्वार हो जाती है। २०.०५.१९९१

689. ब्रह्मवेत्ता राजा अश्वपति

मुझें वह काल स्मरण आता रहता है, जब राजा अश्वपति के यहाँ राजा ब्रह्मवेत्ता है, देवी भी ब्रह्मवेत्ता है और पुरूषार्थी है, वह अपने में क्रियाकलाप करके, पुरूषार्थ करके अन्न को उत्पन्न करते थे, मुझे अपने पूज्यपाद गुरुदेव के साथ कई समय महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। २१.०५.१९९१

690. गुरुदेव के साथ राष्ट्र भ्रमण

कई समय पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा राज्यों में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैं यह उच्चारण कर सकता हूँ, कि यह जो प्रणाली है, यह कोई विचित्र नही हैं, मैं इस प्रणाली को पामर प्रणाली कहता रहता हूँ, यह जो ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियाँ पनप रही हैं, ये रक्तभरी क्रान्ति का अवशेष बन जाती हैं, मेरे हृदय में दाह बनी हुई है, कि राजा पुरूषार्थी हो, ब्रह्मवेत्ता हो, अपने कर्तव्यवाद में रमण करने वाला हो, ऐसा राजा राष्ट्र को उन्नत बना सकता है। २१.०५.१९९१

691. महानन्द जी की इच्छा

मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे यह उनकी इच्छाएं रहती है। २१.०५.१९९१

692. द्रव्य सदुपयोग से गृह पवित्र

जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह गृह पवित्र कहलाता है। वह गृह विष्णु युक्त कहलाता है, तो इसीलिए यह देखो, मैं तुम्हें पूज्यपाद गुरुदेव से अपने विचार देने के हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। क्योंकि द्रव्य का सदुपयोग होना बहुत अनिवार्य है, जिन गृहों में द्रव्यों का सदुपयोग होता है, वह गृह पवित्र होते है। वह गृह महान बनते है, और जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग नहीं होता है, वह गृह आज नहीं तो कल अवश्य अग्नि के मुखार बिन्दु में चले जाएगा। ०६.०७.१९९१

693. गुरुदेव के संस्कार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के जन्म-जन्मांतरों के संस्कार अपने में जागरूक रहते है, और उन्हीं जागरूक हो करके यज्ञ अपने में याग में परिणत होते रहे है। पुरातन काल का जो समय था, जब पूज्यपाद गुरुदेव का भयंकर वनों से राजा अपने अपने में धारण करते अपने राष्ट्र में लाते और वह यागों में परिणत कराते, परन्तु वह अपने में अपनेपन को न ध्यानावस्थित होते हुए कोई त्रुटियां भी जीवन में होती है, तपस्याएं भी होती है, तपस्याएं में भी बाधाएं हो जाती है, परन्तु उसका परिणम प्रायः हम दृष्टिपात करते रहते है। ०६.०७.१९९१

694. याग प्रेरणा

हम सदैव यह प्रेरणा देते रहते हैं, कि याग के ऊपर अपना विचार दिया जाए। तो याग अपने में बड़ा अनूठा एक क्रिया कर्म है, जिस क्रियाकलाप को परम्परागतों से ही, सृष्टि के प्रारम्भ से ही ऋषि मुनियों ने इसके ऊपर अन्वेषण किया अनुसन्धान किया। २२.०७.१९९१

695. वर्तमान का गुरुदेव को ज्ञान नहीं

इस संसार में वर्तमान में पूज्यपाद गुरुदेव आप तो जानते नहीं। २८.०७.१९९१

696. हिंसक भी अहिंसक

मुझे स्मरण आता रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की चर्चा करता रहा हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव के समीप जब अध्ययन करते थे, तो कोई सिंहराज सर्पराज आ जाता, तो पूज्यपाद गुरुदेव बड़े मग्न होते और हमें भी मग्न कराते रहते, क्योंकि सर्प भी हिंसक नहीं होता, वह हिंसक नहीं कहलाता है, वह वायुमण्डल में प्राणी मात्र का सहयोगी है।

697. वेदज्ञ

तब पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि वेदज्ञ वह होता है। जो वेद की ही चर्चा करता रहे, प्रकाश की ही चर्चा करता रहे और प्रकाश में ही अपने को ले जाए, वह प्राणी मात्र में जो परमात्मा का दर्शन करता है, वह वेदज्ञ कहलाता है, जब हम सर्पराज में भी हम सर्पराज में आत्मा परमात्मा का दर्शन करते है। तो वह कण-कण ब्रह्मे व्रतम वह हमारे कण्ठ में शोभित हो जाता है।

698. महर्षि लोमश, साधना के लिए सविता की उपासना

महर्षि लोमश मुनि से ये कहा कि हे प्रभु! मैं साधना में प्रवेश करना चाहता हूं, क्योंकि मेरे पूज्यपाद मेरी माता सुमेखा ने ये कहा था कि हे ब्रह्मचारी! तू यहां से गमन कर रहा है आश्रम से, तुझे साधना में प्रवेश होना है, और अपनी आत्मा को, सविता देव आत्मा को जानना है और देवतव को प्राप्त होना है। तो भगवन! मैं साधना में प्रवेश करना चाहता हूं और मैं उसमें प्रवेश हो करके, और मैं अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करना चाहता हूं। माता ने अमृतं जब लोमश मुनि ने ये श्रवण किया, तो उन्होंने कहा-बहुत प्रियतम सविता देव के द्वारा, तुम यागिक बन जाओ। १५.०२.१९९२

तो वह साधना के लिए सविता देव की उपासना करने लगे यज्ञमान कहता है कि हे सविता! देव! जिस आसन पर मैं वास करता हूं, वह आसन मेरा हिंसा से रहित हो जाए, वह आसन मैं कर्म वचन से किसी प्रकार की हिंसा न करूं, हिंसा का एक परमाणु भी न रह पाए। मेरे आश्रम को मेरी वह तरंगे न छू पाएं, तो ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि लोमश जी ने जब ये उपदेश दिया, तो कागभुषुण्ड जी अपने में याग करने लगे जब वो सविता देव के याग में परिणत हो गए, सविता देव की उपासना करने लगे तो जहां तक उनकी वाणी जा रही थी, वाणी का वाक् गमन कर रहा था, तो निकटतम आसन रहने वाला एक विद्यालय था, वहां महर्षि श्वेतकेतु रहते थे, तो श्वेतकेतु के यहां से वह ब्रह्मचारियों के द्वारा वो अहिंसा विचार की जब तरंगों में प्रवेश होने लगे, तो जहां वो कागभुषुण्ड जी के आश्रम में वाणी जा रही थी। १५.०२.१९९२

699. महर्षि लोमश

मुझे वह काल स्मरण हैं जब महर्षि लोमश और कागभुषुण्ड जी दोनो अपने में अनुसन्धान करते रहे तो अनुष्ठान किया, अनुष्ठान करने से जब, उन्होंने याग किया, और याग में इस प्रकार का जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाएं, तो वायु मण्डल पृथ्वी की गन्ध को शोधन करना हैं, शोधन करने वाला, साधक साधना करता है तो उसकी साधना पूर्ण होती हैं, इसीलिए महर्षि जन जब राजा भी अपने राष्ट्र को त्याग करके भयंकर वन में तपस्या करते रहे हैं, उस तपस्या का परिणाम यही होता रहा है कि वायुमण्डल को पवित्र बनाना, जिससे प्रत्येक इन्द्रियों में एक ओजस्तव उत्पन्न हो, जिससे परमात्मा के समीप जाने का हम प्रयास करें और हृदय को हृदयग्राही बना करके हृदय को पवित्रता की वेदी पर ले जाएं। ०९.०१.१९९२

700. गुरुदेव के द्वारा अध्ययन काल

मुझे स्मरण है कि जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते थे तो अध्ययन के उपरान्त सांयकाल आचार्यजी का कुछ उपदेश होता, तो एक पंक्ति में ब्रह्मचारी हैं एक पंक्ति में मृगराज है, एक पंक्ति में सिंहराज, सब उपदेश पान कर रहे हैं, क्योंकि प्रत्येक प्राणी के हृदय में आत्मा होती है इनके हृदय में भी आत्मा है और सर्पराज में भी आत्मा है और वह आत्मा ज्ञान चाहता है आत्मा प्रभु की प्रशंसा को जानना चाहता है। पुत्र माता के ऊँचे विचारों को अपने में धारण करना चाहता है, पुत्र माता के ऊँचे विचारों को अपने में धारण करना चाहता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि जब मैं अपनू पूज्यपाद गुरुदेव से कहता था कि भगवन! हम तो आपके शिष्यगण हैं प्रभु यह क्या कारण है, जो हिंसक प्राणी भी आपकी वन्दना कर रहा है और वह कहा करते थे कि हे ब्रह्मचारियों! सात्विक ज्ञान का आत्मा से जितना समन्वय होगा, उतना आत्मा वाले प्राणी इसको श्रवण करके प्रसन्न हो जाते हैं। यह मानव का एक मार्ग है, इस मार्ग में गमन करने वाला मानव विचलित नही होता। वह जहाँ मन को चाहता है कि मेरा मन यहाँ लग जाएं, वही मन स्थिर हो जाता है, मानव का मन दुरित में जाने से रूक जाता है। क्योंकि अध्ययन से, विद्या में तपा हुआ मन मस्तिष्क है, प्राण है। वह उसमें तपा हुआ होता है, इसीलिए उसका मन स्थिर होता है, जब इस प्रकार की प्रणालियां होती हैं, तो उन प्रणालियों से ही समाज में एक महानता का जन्म होता है। मैंने बहुत समय को दृष्टिपात करते हुए यह कहा कि आचार्य तपे हुए विचार, माता के विचार, तपस्वियों के विचार बड़े महान होते हैं। ११.०१.१९९२

701. महर्षि लोमश मुनि

मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कागभुषुण्ड जी जी ने महर्षि लोमश मुनि महाराज से कहा कि मैं तपस्या में प्रवीण होना चाहता हूं, मैं तपस्वी बनना चाहता हूँ। उन्होंनें कहा बहुत प्रिय, तुम तपस्वी बनो। कागभुषुण्ड जी ने कहा कि मैं

तपस्वी कैसे बनूं? लोमश ऋषि ने कहा कि तुम अनुष्ठान करो, याग करो। संकल्प करके जब याग का नाम, याग का दिनांक निश्चित हो जाता है, तो उसको अनुष्ठान कहते हैं अनुष्ठान करो, तो अनुष्ठान की पद्धति को अपनाते हुए अनुष्ठित हो जाओ। अनुष्ठान में जो भी तुम्हें आहार करना है, व्यवहार करना है, जो भी तुम्हारा क्रियाकलाप है, उसके आधार पर तुम अपने में निष्ठित हो जाओ। कागभुषुण्ड जी ने कहा कि-प्रभु! बहतु प्रिय, मैं वायुमण्डल को सबसे प्रथम जानना चाहता हूँ। लोमश ऋषि ने कहा कि वायुमण्डल वह है, जहाँ हम श्वास लेते हैं और श्वास हमारे मन-मस्तिष्क को ऊर्ध्वा में ले जाता है। श्वास को जब हम बाह्य जगत में लाते हैं, तो वही अशुद्ध परमाणुओं को बाह्य जगत में प्रवेश कर देता है तो बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों, उसकी महानता में परिणित हो गए और उसी में वह निहित हो गया है तो दोनों प्रकार की आभाओं को ले करके सक्षम करो।

ऋषि ने ज्ञान से जान लिया, कि अनुष्ठान, संकल्प को कहते हैं और संकल्प में जो क्रियाकलाप हो रहा हैं, जो उसमें वृत्त है, वह अपने में धारण करना है। उन्होंने लोमश ऋषि से कहा कि तपस्वी बनने के लिए आहार क्या है, व्यवहार क्या है?

लोमश ऋषि ने कहा कि ज्ञान और कर्म हैं। एकान्त में विद्यमान हो करके लोमश और कागभुषुण्ड जी यह विचारते रहे, कि तपस्या करने से पूर्व हम उपासक बनना चाहते हैं, तो उपासना का एक ही अभिप्राय होता है कि हमें जानना है। जैसे जल की उपासना का अभिप्राय यह है कि हम जल को देखें, कि उसका कहाँ उपयोग होता, तो यही जल हमारा उपास्य है। हम इसकी उपासना करेंगे, तो उसका करेंगे, ज्ञान में, विज्ञान में प्रवेश करेंगे तो वहाँ हम जल को क्रियात्मकता में परिणित करेंगे। वह कृषि को, आनन्द को देने वाला जल है, तो जल का उपयोग उसकी पूजा का माध्यम माना गया है, वह पूजा कहलाई जाती है। हम पूजक बनें, हम पुजारी बन करके ही अपने को ऊंचा बनायें। जब तक हम क्रियाकलाप में प्रवीण नहीं होगे, तो जीवन में ज्ञान और कर्म दोनों को नहीं जान सकेंगे और यदि कर्मकांड ही कर्मकांड है, ज्ञान नहीं है तो कर्म नहीं हो सकेगा, उसकी उपासना नहीं कर सकते। यदि ज्ञान ही ज्ञान होता है, कर्म नहीं है, तो वह एक रूपक माना जाता है। ज्ञान और कर्मकांड दोनों ही मानव को ऊर्ध्वा में ले जाते है। १२.०१.१९९२

702. द्रव्य का सदुपयोग

मेरे परमपूज्य गुरुदेव यह कहा करते हैं, कि जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, वहाँ द्रव्य उसको नहीं त्यागता और जहाँ द्रव्य की अवहेलना होती है, वहाँ द्रव्य एक समय उसको त्याग देता है। १२.०१.१९९२

703. गुरुदेव से कर्म कांड

परम पूज्य गुरुदेव ने नाना प्रकार का ज्ञान, विज्ञान और कर्मकांड दिया है। हम वैसे ही कर्मकांडी बने, धर्मवृत्ति को अपनाने का प्रयास करें। हे यज्ञमान! जब तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो, तो मन को एकाग्र कर। मन में जो ज्योति जागरूक हो रही है, प्राण के माध्यम से जो अग्नि अपना स्वरूप दे रही है, साकल्य दे रही है, तेरे चित्रों को द्यौ में प्रवेश कर रही है, चित्राम ब्रह्मणा बन करके अग्नि की धाराओं पर वायुमण्डल को दर्शा रही है, आज तू उसकी उपासना कर। मैं अपने परमपूज्य गुरुदेव से यह कहता रहता हूँ कि पूज्यपाद इस प्रकार के ज्ञान और विज्ञान में ही हमें ले जाते हुए जब गागर में सागर भरते हैं तो वे प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों के मध्यम में विद्यमान हो करके क्रियात्मकता में ले जाते हैं और मन और प्राण को एकाग्र करके अपनी इस दे हके द्वारा एकाग्र हो करके सांत्वना को प्राप्त होते हैं, अग्रम ब्रह्मा, वे प्राणायाम करते हैं, जिससे हमारे अन्तःकरण में प्रवेश हो गई अशुद्धता समाप्त हो जाए और अन्तःकरण पवित्रता को प्राप्त होता रहे।

704. द्रव्य का सदुपयोग

इसी प्रकार विचार आते रहते हैं, मैं अपने परमपूज्य गुरुदेव से कोई वाक्य प्रकट करने अथवा कोई व्याख्यान देने नहीं आया हूँ। मैं केवल यज्ञमान के समीप आया हूँ और अपने हृदय से यही कहता रहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे तीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, क्योंकि द्रव्य सद्मयी कहलाता है और द्रव्य का दुरूपयोग होना, अज्ञान कहलाता है। सदुपयोग वही है जो मोक्ष की पगडंडी को दर्शा देता है और दुरूपयोग नरक बना देता है। १२.०१.१९९२

705. गुरुदेव के साथ महानन्द जी लोमश जी के आश्रम में

मुझे जब पूज्यपाद गुरुदेव! महर्षि लोमश मुनि के आश्रम में विद्यालय काल में ले जाते थे, तो वहाँ कागभुषुण्ड जी की उनकी चर्चाएं होती रहती, वह अनुपात बनाते रहते। तो वह काल भी मुझे प्रायः स्मरण आता रहता है। ३१.०१.१९९२

706. राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करते गुरुदेव

पूज्यपाद गुरुदेव जब किसी राष्ट्र में जाते थे, तो राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं करते थे। क्योंकि राष्ट्र का अन्न किस-किस प्रकार का होता है, बुद्धि समाप्त हो जाती है। राजा वह ब्रह्म वेत्ता बन सकता है, जो अपने यहां स्वयं पुरुषार्थ करके जिस अन्न को पान करता है, राष्ट्र का क्रियाकलाप करता है, वह राजा अपने में ब्रह्मवेत्ता बन सकता है। जो उसका अन्न ही पवित्र नहीं होगा, तो आज तब इन्द्रियां कैसे पवित्र हो सकेंगी। जब महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में जाने का पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जाने का गर्भ सौभाग्य प्राप्त होता, तो वह स्वयं, कृषि का उदगम करते और वसुन्धरा के गर्भ से जो अन्न उत्पन्न होता, उसको पान करते। कामधेनु गऊ के दुग्ध का आहार करते और राष्ट्र मे अपने में क्रियाकलाप करते थे। राष्ट्र प्रसन्न रहता, प्रजा प्रसन्न रहती, परन्तु जब ज्ञान ही नहीं है, तो अज्ञान की यही, रक्त भरी क्रान्ति में समाज परिवर्तित होता जा रहा है। उसका मूल केवल यह ही मैं जान पाया हूँ, कि नाना प्रकार की जो ईश्वर के नाम पर रूढ़िया है, वह रूढ़िया समाप्त होनी चाहिए। ०४.०२.१९९२

707. गुरुदेव के साथ अध्ययन काल

जब अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन के लिए जाते, तो जब अध्ययन करते मस्तिष्कों का अध्ययन किया जाता, तो पूज्यपाद कहते इतने समय तक गायत्री का जाप करो, वेदों का अध्ययन करो, और मन्त्रों की रात्रि समय इतने समय विश्राम करना है। इतने समय अध्ययन करना है, जब आचार्य इस प्रकार उद्गीत गाते,

तो वह ऐसा ही किया जाता, तो विद्यालय सजातीय बन जाता। १४.०३.१९९२

708. महाराज अश्वपति के यहाँ गुरुदेव का अध्यापन

, मुझे ऐसा स्मरण आता रहा है कि मुझे महाराज अश्वपति के यहाँ कुछ समय तक अध्यापन का कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैं उसमें क्योंकि परम्परागतों से क्योंकि निर्वाचन पद्धति प्रायः मानवीय मस्तिष्कों में निहित रही है। २६.०३.१९९२

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते हैं, कि धर्म मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है। २९.०३.१९९२

709. गुरुदेव का गम्भीर अध्ययन

साधकों के लिए और याज्ञिक पुरूषों को प्रेरणा दायक और साधारण समाज के लिए श्रद्धामयी तो इस प्रकार के जो उदगार है, वे प्रायः वैदिक साहित्य में प्राप्त होते रहे हैं, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो अध्ययन है वह इस सम्बन्ध में बड़ा गम्भीरता में रहा है। २१.०७.१९९२

710. राज अन्न में दोष

राज अश्वपति के यहाँ, एक समय हमने यह विचार बनाया कि चलो, पूज्यपाद गुरुदेव के समीप हम चलते हैं, और महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में भ्रमण करेंगे, तो महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में, जब पंहुचे, तो महाराज ने ऋषि का स्वागत किया और स्वागत करने के पश्चात, उन्होंने कुछ अन्न इत्यादि को लाने का प्रयास किया, तो ऋषियों ने कहा कि नही, भगवन! हम तुम्हारे अन्न को ग्रहण नही करेंगे, उन्होंने कहा-भगवन! क्यों नही करोगे? क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न है, और राष्ट्र का जो अन्न होता है, वह दूषित है, वह रजोगुण, तमोगुण से सना हुआ होता है और रजोगुण, तमोगुण से सने हुए, अन्न को पान करने से, हमारा ऋषित्व समाप्त हो जाता है और अपनी बुद्धि को अमृतमयी लाना चाहते हैं।

तो महाराजा अश्वपति उनकी देवी ने नतमस्तिष्क हो करके यह कहा-प्रभु! हमारा जो अन्न है, उसके लिए हम स्वयं कला कौशल करते हैं, और उसके बदले जो अन्न आता है, उसको हम पान करते हैं, प्रभु! वही हम अतिथि को देते है, और आप हमारे अतिथि हैं। १३.०३.१९९२

711. गुरुदेव अश्वपति के यहाँ

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और महर्षि समीर मुनि महाराज महाराजा अश्वपति के यहाँ पहुंचे, तो उनके राष्ट्र कोष में जो द्रव्य आता था, वह कुछ तमोगुणी अन्न आ गया। जब तमोगुणी अन्न आ गया, तो उसे भोजनालय में तपाया गया। तपाए जाने के पश्चात उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस स्थली पर पहुंचे। राजा ने नमस्कार करके कहा कि भगवन्! आप भोजन कीजिए, आप कुछ पान कीजिए आप अतिथि हैं। उन्होंने तथा समीर इत्यादि ऋषियों ने कहा-हे राजन! हम तुम्हारा अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। राजा ने कहा कि महाराज! ऐसा क्यों? तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा जो अन्न है, वह राष्ट्रकोष का है, और वह तमोगुणी अन्न होता है और अन्न का दोष जो होता है, राजा के राष्ट्र में वह सर्वत्र बुद्धि को विनाशता की तरफ ले जाता है। वही अन्न वैज्ञानिकों को दिया जा रहा था। वैज्ञानिक भी उस अन्न को पा करके यथार्थता को उच्चारण न करके मौन रहते थे। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव की वार्त्ता, राजा ने अनसुनी प्रकट की। उन्होंने कहा, हे राजन! हम तुम्हारा अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। राजा ने नतमस्तक होकर के कहा महाराज! मेरा जो अन्न है, वह वास्तव में तमोगुणी अन्न है, दूषित है। हो सकता है वह तुम्हारी प्रवृत्तियों को दूषित न कर दे। मैं अभागा बन जाऊँ, मैं अभागा बन करके, उस अन्न को उन्होंने पान नहीं किया। राजा अपने गृह में ले गए। अपनी पत्नी से बोले, हे देवी! तुम ऋषि को भोजन कराओ। जो कृषि का अन्न होता था, वह पान कराया और पान कराने का परिणाम यह हुआ कि बुद्धि स्वच्छ रही। तो इसी प्रकार पुरातन का जो महापुरुष होता है ऐसा वैज्ञानिक और ब्रह्मवेत्ता बनता है। २३.०२.१९८०

712. गुरुदेव के आश्रम में गुरुदेव

मैं पुरातन काल में जब अपने पूज्यपाद गुरु आश्रम में प्रविष्ट होता था तो मुझे स्मरण है, जैसे पुत्रियाँ माताएं, सब गुरुवर के चरणों को स्पर्श किया करती थी, जिस प्रकार हम करते, उसी प्रकार मृगराज आ करके मार्ग से वे भी चरणों को ओत प्रोत किया करते थे। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक समय कहा प्रभु! यह क्या है? मृगराज मानव का भक्षण कर जाता हैं, परन्तु आपके चरणों को स्पर्श कर रहा हैं, उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक् कहा था हे पुत्रवत! तुम्हें यह प्रतीत हैं, क्या इसी का नाम तो अहिंसा परमोधर्म कहा गया हैं। मानव का अन्तरात्मा सुन्दर होता हैं, मानव को जो आत्मिक विचार होता हैं, आन्तरिक जो संकलन होता हैं, वाणी भी पवित्र हो जाती हैं, वाणी के कारण वायुमण्डल ओत प्रोत हो जाता हैं, जहाँ तक हमारा यह आश्रम हैं, आश्रम अहिंसा परमोधर्म परमाणुओं से यहओत प्रोत हो रहा हैं। इतना हिंसक प्राणी को भी अपना अहिंसा परमोधर्म विचार बनाना ही होगा, उसका मूल कारण क्या है? मानव का विचार मानव की वाणी का प्रभाव,, इसीलिए ऋषियों ने कहा है कि वाणी अशुद्ध नही होनी चाहिए, मानव की जब वाणी अशुद्ध हो जाती हैं कहीं कहीं तो वाणी का बहुत ही वाणी बड़ी विशाल बन जाती है। ६९.७७.००१

713. महानन्द जी की प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी की सुन्दर सुन्दर प्रेरणाएं आती रहती हैं, उन प्रेरणाओं के आधार पर, आज मैं तुम्हें त्रेता के काल में ले जाना चाहता हूँ। ६९.७७.००६

714. दक्षिणा से महानन्द जी को भय

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव से तो मुझे किसी काल में यह भय होने लगता हैं क्या गुरुदेव की जब दक्षिणा का काण्ड चलता हैं, दक्षिणा के सम्बन्ध में जब यह प्रकरण जब भी किसी काल में होने लगता हैं, चलता है, तो यह भय मुझे होने लगता है कि कोई गुरुजी पर आक्रमण न कर दे सम्बन्ध में, क्या यह तो दक्षिणा को ही नष्ट कर रहे हैं। द्रव्य ही नही प्रदान करने देते, तो इसका अभिप्रायः केवल यह है कि ब्राह्मण की इतनी निष्ठा होनी चाहिए क्या उसका प्रारब्ध उसका जो संस्कार होता हैं उसे वह वस्तु प्राप्त होती हैं। ६९.७७.०१२

715. अयोध्या में गुरुदेव का प्रथम आगमन

वह जो ब्रह्मचारी गएं थे, परन्तु वह नहीं हैं ऋषि ने कहा वह कजली वन में गएं, ब्रह्मचारी नहीं थे और वह ब्रह्मचारी नहीं थे, वह तो अप्सरा थी, अप्सरा कौन होती हैं, अप्सरा वह देवियां थी, देवियां किसे कहते हैं? देवी उसे कहते हैं, जिससे पुत्र उत्पन्न किया जाता है, वह भोला ब्रह्मचारी यह नहीं जानता था कि पुत्र की विद्या क्या होती है, उन्होंने कहा कि पुत्र की विद्या होती है, कोई उन्होंने कहा अवश्य अप्सराओं को कहा गया, कि तुम विद्या जानती हो, पुत्र उत्पन्न करने की ? कि महाराज! अवश्य जानते हैं परन्तु सूर्य के प्रकाश में नहीं और वही प्राणी, वह भोला ब्रह्मचारी जो ब्रह्मा बना है, वशिष्ठ ने कहा कि कुछ समय के लिए, अब तू शान्त हो जा, विद्या को पान करना है, पुत्र बनाने की नहीं, तो तप अभ्यन्त कर रहा हूँ।

वशिष्ठ ने कहा था भगवन! ऐसा न कीजिए, आप एक पग पर हो जाईएं और सूर्य की याचना कीजिए वह भोला ब्रह्मचारी एक पग पर स्थित हो गया और सूर्य की तपस्या करने लगा, वह शान्त हो गया, इतने में महर्षि विभाण्डक कजली वन से आ पंहुचा, अपने पुत्र को खोजता खोजता, राजा दशरथ अपनी तीनों पत्नियों के द्वारा, वह अपनी यज्ञशाला में विराजमान थे, उस उसम महर्षि विभाण्डक ने देखा अपने पुत्र को, पुत्र से कहा अरे, यह तुमने क्या प्राप्त किया है बेटा! वह ब्रह्मचारी बोला कि महाराज! मैं पुत्र बनाने की विद्या जानने के लिए एक पग पर स्थिर हो रहा हूँ, आप भी पुत्र बनाने की विद्या के लिए एक पग पर स्थिर हो जाईएं, आप हाय हाय वह नहीं जानता था, उन्होंने कहा कि पुत्र! मैं जानता हूँ जब यह वाक् सुने तो नेत्रों में जल आ भर आया, जल भर आया, तो उस ब्रह्मर्षि ने यह कहा था देवी अरे, जैसे मैं पुत्र के वियोग में अभ्रान्त हो करके यहाँ से जा रहा हूँ, ऐसे ही पुत्र के वियोग में आ करके तेरे प्राणान्त हो जाएंगे दशरथ! तो हे प्रिय कौशल्या! आज मेरा वह समय आ चुका है, आज मेरे प्राणान्त होने वाले हैं, आज मेरा वह समय आ चुका है, जब मैं परमात्मा के यहाँ को जाने वाला हूँ, तो वियोग में ऊपर ले स्थान से नीचे आ पंहुचे प्राणान्त हो गएं दशरथ के। ६९.७७.०२१

716. गुरुदेव का जीवन और कर्मप्रबंधन

मुझे स्मरण रहता है जो महाराजा अश्वपति के यहाँ आत्मा का उपदेश दे सकता है, आज वह एक मानव एक सूक्ष्म से कष्ट में, अपार कष्ट में, रमण कर सकता है यह प्रभु की विचित्रता नहीं है तो क्या है? यह मानव का कर्म फल नहीं तो और क्या है? मुझे स्मरण है परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते हैं, हे महानन्द! तू किसी काल में भी शोकयुक्त नहीं होता, परन्तु उस समय मैं यह कहा करता हूँ कि मैं शोक युक्त क्यों हो जाऊं? क्योंकि प्रभु ने जब मुझे जन्म दिया था, माता के गर्भ में आया, जब मैं केवल्य आया, परन्तु यहाँ ऋणबन्धा संसार बन गया, स्वार्थी जगत बन गया, लोलुपता वाला जगत बन गया, यहाँ एक प्रपंच बना लिया मैंने, इस प्रपंच में मैं क्यों जाऊं। क्योंकि शोक करूंगा, तो प्रपंच मेरे द्वार पर आयेगा, उसी में मैं तो सदैव मग्न रहता हूँ। मग्न क्योंकि मानव का यातायात मानव का आवागमन चल रहा है, आ रहा है, कोई जा रहा है, परम्परागतों से ही, यह सिद्वान्त बना हुआ है। प्रकृति का आज यह प्रभु का चक्र है, जो चक्र चल रहा है, परन्तु किसी ममता के पुत्र के प्रति होती है, वह ममता मुझे आज तक यह प्रतीत नहीं हुआ कि आत्मा शरीर को त्यागा, परन्तु उसकी ममता कहाँ चली गई? ममता का मूल प्रकृति है। क्योंकि जिसका मिलान होता है, वही तो ममता है, और ममता मिलान से विच्छेद होते ही ममता समाप्त हो जाती है।

परिणाम यह कि यह सिद्धान्त है विचार है, आज आत्माओं में प्रायः ऐसा होता रहता है। परन्तु उसी अश्वपति को जब पुरोहित जी का निधन हुआ, उसके पश्चात महाराजा श्वेति नाम के राजा हुए। उन्होंने पुनः से दूसरे जन्मों में भी प्रायःउन्होंने पुरोहित रहने के पश्चात वह त्रेतकेतु नाम के मन्त्री हुए, उन्होंने प्रायः ऋषियों में निष्ठा रहती थी, प्रायः वह आध्यात्मिक यज्ञ में निष्ठा, परन्तु आत्मा के ऊपर और शोक के ऊपर अति मानस की चर्चा करते थे। आज मैं यह विचित्रता है, जो मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ, मुझे यह प्रतीत होता है, क्या संसार में यह ममता क्या है, मिल करके कोई वस्तु मिली बिछुड चली वह समाप्त हो गई, उसका विच्छेद हो गया। जिनको शोक कहते है, वास्तव में मानव, आत्मा के लिए शोक करता है। आत्मा तो सदैव रहने वाला है, हे मानव! ये पंच महाभूतों से यह शरीर रचा है, यह शरीर भी परमाणुओं में लय हो जाता है, इसके लिए शोक यह शरीर भी, परन्तु रहा यह कि इसके गुणों के लिए शोक है अहा, गुणों के लिए भी जो अच्छाई उसके गुण थे, अन्य गुण ग्राही बने थे, आज वह गुण भी समाप्त हो गया। परिणाम यह क्या गुण भी मानव का ज्यों का त्यो बना हुआ है। परमाणु भी ज्यों का त्यों, आत्मा कदापि समाप्त नहीं होता, तो मानव को शोक क्या, गुणों का वस्तु मिली बिछुड़ गई, बिछुड़ विकृत हो गई। विकृत हो जाने का नाम ही तो अपार कष्ट माना गया है। परन्तु मैं इसको वास्तविक शोक नहीं रमण कराता हुआ, नहीं जाना चाहता हूँ। ६९.७७.०३२

717. महानन्द जी का जीवन

बहुत परम्परा से ही मुझे स्मरण है अपना जीवन क्या मेरे पिता ने यह कहा कि इस महानन्द का संस्कार करा देना चाहिए, परन्तु उस संस्कार के आधार पर अब कौन धारा मैं जब पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आया, मुझे ब्रह्मवेत्ता बनाने का प्रयास किया, मैं ब्रह्मवेत्ता बना, परन्तु वह ममता भी चली गई, वह संस्कार भी चला गया, जितना भी मानव अपने मन में चाहेगा, निष्ठित करना चाहता है। निष्ठित कर देता है, वहीं उसकी निष्ठा हो जाती है, वहीं वह प्रक्रियाशील बन जाता है, ब्रह्म में निष्ठा कर देता है, तो ब्रह्म को प्राप्त प्रकृति में निष्ठा है, तो प्रकृति को प्राप्त, कुकर्मो में निष्ठा से मन वहां स्थित हो जाता है। तो वहाँ भी अप्रत हो जाता है। ६९.७७.०३२

718. गुरुदेव के आश्रम में अध्ययन

मुझे स्मरण आता रहता है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में अध्ययन के लिए जाते थे, लाखों वर्षों का वाक् है, लाखों वर्षों का साहित्य है मुझे उसे पुनरूक्ति करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान हैं द्वितीय पंक्ति में मेरी प्यारी माताएं ओर तृतीय पंक्ति में मृगराज ओत प्रोत हैं जब हम सभा विसर्जन होती, तो माताएं चरणों को छुआ करती, उसके पश्चात मृगराज आ करके बारी बार चरणों को छू करके अपने आसन पर जाते थे।

मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन किया कि प्रभु! यह क्या कारण है, कि जो हिंसक प्राणी मानव को निगल जाते हैं, आपके चरणों को छू रहे हैं,

आपके चरणों में विराजमान है, हे पुत्र! उन्होंने जैसे ही तुम उच्चारण कर रहे हो, हमारा यह आश्रम है यह सुन्दर विचारों से भरा है, जिसमें तुम विराजमान हो। जिसमें हम विराजमान हैं, यह सुन्दर विचारों वाला है जैसे अहिंसा परमोधर्म में इतना परिणत हो गया है, इतना महानता में ओत-प्रोत हो गया है, कि यहां कोई हिंसक नाम का कोई परमाणु नही रहा है, हिंसक प्राणी आत्मा की पिपासा के लिए चलते है। तो अहिंसा परमोधर्म के जो विचार हैं वह वास्तव में वह हिंसक प्राणी अपने हिंसक भाव को त्याग करके, वह जो अहिंसा परमोधर्म का पालन करने लगते हैं वह मुझे स्मरण है कि जब उनके चरणों को छूते, तो वह मग्न होते थे, हिंसक प्राणी अपनी मानव आप्तो को जानते हैं, परन्तु जो हिंसा परमोधर्म को जानता है, वह केवल अपनी इन्द्रियों से भी पाप कर्म नही करता, वह अहिंसा परमोधर्म प्राणीतव को प्राप्त हो सकता है, वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों ओर कर्मेन्द्रियों से स्वप्नवत में भी हिंसा नही करता। ६९.७७.०३६

महानन्द जी द्वारा वर्णन

त्रेता के काल में मुझे एक समय एक काल मे, मुझे महानन्द जी ने मुझे प्रगट कराया। परन्तु जब मैं त्रेता के काल की, उन वार्त्ताओं में प्रवेश करता हूँ। जहां एक अलंकार को, मेरे प्यारे महानन्द जी के कथनानुसार, आधुनिक काल में उसको साहित्य में लिया जाता है। या उसको इतिहास में अलंकृत किया गया है, जैसे हमारे यहां ये आता है, अहिल्या का वर्णन अहिल्या का वर्णन एक आलंकारिक रूपों में अलंकृत किया गया है हमारे यहां यह आया है। ७८.९२.०१९

719. याग प्रेरणा

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं, इनकी प्रेरणा का सूचक ये कह रहा है, कि यागों के सम्बन्ध में कुछ अपना चिन्तन किया जाएं। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यज्ञों के सम्बन्ध में नाना प्रकार के यागों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचनाएं की हैं, आज मैं उस क्षेत्र में जाना नही चाहता हूँ, परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी बारम्बार बाध्य करते रहते हैं, कि उस क्षेत्र में जाना चाहिए। मैनें बहुत पुरातन काल में कहा है, कि संसार में प्रत्येक प्राणी याग कर रहा है, और याज्ञिक बना हुआ है जितनी भी शुद्ध प्रेरणा है, शुभ कामनाएं हैं, उन सब तरंगों का नाम याग को प्राप्त हो जाता है। ७८.९२.०४८

720. गुरुदेव द्वारा वैशम्पायन शाखा का उच्चारण

आज मैं इस मन्त्र को उच्चारण कर रहा हूँ। जिस वैशम्पायन की चर्चा कर रहा हूँ, वैशम्पायन लाखों वर्षो से पूर्व इस संसार में थे, मेरे हृदय में भी विद्यमान है। उनका स्वरूप भी विद्यमान है। क्योंकि जिस संहिता का मैं पठन-पाठन करता हूँ, जिस शाखा के मन्त्रों का उच्चारण करता हूँ, वह पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा लाखों वर्षों पूर्व अध्ययन किए, परन्तु वही शुद्ध बन करके द्यौ लोक में विद्यमान हैं। जब चित्त का आवागमन होता है। चित्त का परिवर्तन होता है, आत्मा, प्राण उदान के साथ में तो वही जो चित्त है, उस चित्त में वो जो विचार है। जो अन्तरिक्ष में विद्यमान हैं, वह आने प्रारम्भ हो जाते हैं। और प्रारम्भ हो करके मानव उन वाक्यों को उच्चारण करने लगता है। परन्तु मन, बुद्धि, चित्त अहंकार ये सब मन की धारा हैं, तो ये भी प्रत्येक मानव को भी विचारना है कि ये मन की ही धारा है। ७८.९२.०४८

721. याग में गुरुदेव

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने में ही अपनेपन को धारण करा करके, बहुत समय हो गया। परन्तु मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से ये कहा करता हूँ, कि ये आज मै यज्ञमान, ब्रह्मा जो याग हुआ और ऐसी स्थली पर याग हुआ है, जहां द्वापर के काल में पूजा का स्थान रहा है। एक पूजा का स्थान रहा है और इसमें दो वृत्तियां नही हैं कि आज भी वह पूजा का स्थान है, जब मैं द्वापर के काल में प्रवेश करता हूँ, तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ क्या हे पूज्यपाद! ये वही स्थली है जहां महाराजा द्रोण ने ब्रह्मचारियों को बहुत-सी शिक्षाएं दीं, जहां यागों का चयन हुआ, जहां ऋषि-मुनि एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके और अपनी विचारधारा को व्यक्त करते है। और जब महाभारत के काल में यही राज सभाओं में राज्य को जो अपनी नीति को धारण करता है, उसमें वह निहित है। ७८.९२.०६४

722. अश्वपति के यहाँ गुरुदेव

मुझे स्मरण आता रहता है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा एक समय महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में पंहुचें, तो अश्वपति ने जब ये कहा कि महाराज! भोज्य कीजिए? तो उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ये कहा कि मैं भोज्य नही करूंगा, तुम्हारे यहां, क्योंकि हम तपस्वी है, हम अतपस्वी नही हैं, हम वायु का सेवन करते हैं, इसीलिए हमें तुम्हारे अन्न की आवश्यकता नही हैं, अन्न की इच्छा, परन्तु हम जल की भी इच्छा नही करते, मैंने उसे अपने प्राणों के द्वारा ही सिंचन कर लेते हैं। ७८.९२.०६४

723. प्रेरणा

आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है, क्योंकि प्रत्येक मानव संसार में प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है, प्रेरणा प्राप्त करता रहता है। प्रेरित होता रहता है, और अपने क्रियाकलापों में वह सदैव तत्पर रहता है। ७८.९२.०६५

724. बरनावा भूमि

जिसके ऊपर मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय देता रहता हूँ, इनकी प्रेरणा ही मुझे प्रेरित करती रहती है, एक याग हुआ मेरा अन्तर्हृदय बड़ा प्रसन्न रहता है, मेरा अन्तरात्मा ये कहता रहता है कि भूमि के सौभाग्य से, इस भूमि पर क्या-क्या होता रहता है, और क्या-क्या बन जाता है। तो मैं जब इस जहां हमारी आकाशवाणी जा रही है। जिस स्थली पर, उस स्थली के सम्बन्ध में जब ये विचार देना जब प्रारम्भ करता हूँ। ७८.९२.०८६

725. स्थली पर याग

जिस स्थली पर यह वाक् प्रसारण हो रहा है। यह हमारी आकाशवाणी हमारा यह आकाश मण्डलं एक मेधावी बना हुआ रहता है, परन्तु आज मैं यागों की महिमा,

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रगट कराते रहते हैं। मैं तो अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ अनुभव की अथवा इस भौतिक जगत की कुछ वार्त्ताएं अथवा इनको परिचय करता रहता हूँ। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ परिचय कराने के लिए आया हूँ। और वह परिचय यह है कि जहां हमारी वाणी जा रही है वहां एक याग की प्रतिभा का दर्शन हो रहा था, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न रहता है। जहां देव पूजा देवताओं को जहां हवि प्रदान की जाती है, यह हवि वायु मण्डल में प्रसारण हो जाती है। जहां प्रभु के जगत में नाना प्रकार की वनस्पतियों से यह संसार सुगन्धित होता है। प्रभु का जगत सुगन्धित होता है, वहां ऋषि-मुनियों ने बहुत परम्परागतों से एक याग की रचना का एक नृत्त किया है। ७८.९२.०३८

726. गुरुदेव कागभुषुण्ड जी के आश्रम

मुझे जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव किसी काल में भ्रमण कराते हुए, जब कागभुषुण्ड जी के आश्रम, में अपना एक रात्रि विश्राम करते थे, रात्रि समय निद्रा को प्राप्त दोनों ऋषि नही होते थे, परन्तु वह चर्चाएं ब्रह्म ज्ञान की करते रहते, यागों की चर्चाएं करते रहते। ७८.९२.०३८

मुझे स्मरण आता रहता है। श्रृङ्गी ऋषि महाराज इतने विज्ञान में रत्त रहते थे, कि वो पृथ्वी के ऊपर ही वायुमण्डल में जो तरंगे गति करती रहती थी, उसको जानते रहते थे और जानने के पश्चात उसको बाह्यजगत में लाते रहते थे। तो परिणाम क्या? यह जो प्राण शक्ति है, उसके ऊपर हमारा अधिपथ्य होना चाहिए। इसमें जो देवता विद्यमान है, एक कश्यय विद्यमान है, एक मित्राणेस्ति विद्यमान है, एक चन्द्रस्वर कहलाता है। एक सूर्यस्वर कहलाता है। एक में शीतल गति हो रही है, एक में ऊष्ण गति हो रही है, इन दोनों गतियों को जानने वाला वो महान बना रहता है, वो महान कहलाता है। ७८.९२.०३८

727. इन्द्रियों की मृत्यु

जो हमारा वेद पाठ चल रहा है वह यजूिन्ष मुनि संहिता के मन्त्रों का पाठ चल रहा है। वह संहिता भी बड़ी महान है और उदारता के लिए हमें बारम्बार प्रेरित कर रही है। आज का पाठ वेद पाठ हमें पुनः से उदारता के लिए संकेत कर रहा है। मैंने कल भी उदारता के सम्बन्ध में कहा था। ७८.९२.०३८

मैं कल महानन्द जी से प्रार्थना करूंगा। ७८.९२.०३८

728. महर्षि लोमेश

वहाँ से वह महर्षि लोमेश मुनि के द्वार जा पहुंचे। लोमेश मुनि बोले कि इस समय मुझे प्रतीत हो रहा है, कि आप बहुत चिंतित हो रहे हैं। तब उन्होंने कहा कि मैंने अपनी पत्नी से कहा है, कि ऋषि मेरी पूजा करते हैंऔर जिन्होंने मुझे ठुकराया है उन्हें मैंने विनाश के लिए वाक्य कहा है। महर्षि बोले कि महाराज! आपने यह बड़ा कटु शब्द कहा है। यह नहीं उच्चारण करना चाहिए था। जब मानव मान-अपमान में आ गया, तो उस समय ऋषि का ऋषित्व समाप्त हो जाता है। आज तेरा ऋषित्व कहाँ है, जब तू मानियों में मानी है और अपमानियों में अपमानी है।

महर्षि लोमेश के जीवन की घटना मैं पूर्व उच्चारण कर चुका हूं। आज भी स्मरण आ गई। कहते हैं कि एक समय महर्षि लोमेश एक सूक्ष्म सा आसन लिए भ्रमण कर रहे थे। उस समय कुछ आदि ऋषियों ने उनकी पूजा की और कुछ ने अपमान किया। ऋषि एक रस रहे और आनन्द से मार्ग चलते रहे। उन्होंने उस मार्ग को अपना लिया था, जिसमें कोई बाधा नहीं थी। जब वह आसन लिए जा रहे थे, तो महर्षि पापडी मुनि महाराज उनसे बोले कि महाराज यह क्या है? यह आसन आप क्यों ले रहे हैं? वह बोले यह आसन इसलिए ले रहा हूँ, कि जब मेरी इच्छा होती है, इस पर विराजमान होकर विश्राम कर लेता हूँ। उन्होंने कहा कि महाराज आपको विश्राम की आवश्यकता क्यों है?

लोमेश बोले महाराज! सूक्ष्म-सी अवस्था है, जिसके लिए मैंने एक सूक्ष्म सा आसन ले लिया है, और उस आसन को अपनाया है, जो मान और अपमान दोनों को सहन करने वाला आसन है। मैं इस आसन को जो चुभने वाले पदार्थ हैं, वहाँ गिरा देता हूँ। वह मेरे नहीं चुभते और जहाँ पुष्प होते हैं, वहाँ इसको विराजमान कर देता हूँ, तो पुष्प मुझे अपनाते नहीं। आज मैं मान-अपमान को नहीं अपनाना चाहता।

ऋषियों ने कहा कि महाराज इस आसन को लेने के लिए आपकी कितनी अवस्था है? उन्होंने कहा कि मेरी इतनी अवस्था, कि संसार में, जिसको ब्रह्म कहते हैं और उसका जो दिवस है, और जब उसकी सौ वर्ष की अवस्था हो जाती है, तो उसके पश्चात मेरे शरीर का एक लोम शांत हो जाता है। ऋषि बड़े आश्चर्य से बोले कि महाराज! आप कैसे लोमश है? उन्होंने कहा कि मैं वह लोमश हूँ, जो प्रभु के आँगन के लिए ललाहित रहता हूँ। आज मुझे मृत्यु का भय नहीं, मान-अपमान का भय नहीं।

क्या है? यह मुक्ति का प्रकरण है। किसी द्वितीय काल में इसे प्रकट करूंगा। जहाँ मनुष्य में मान-अपमान व्यापता है, वहाँ मनुष्यत्व समाप्त हो जाता है, ऋषित्व नहीं रहता। वहाँ केवल राजस्वी भाव आ जाता है। आज हमें राज्य के काण्ड को नहीं जाना है। आज तो हमें आध्यात्मिक विज्ञान के काण्ड में जाना है, ज्ञान का प्रदर्शन करना है, जिससे हमारा विकास होगा, जीवन ऊँचा बनेगा। ७८.९२.०३८

729. महानन्द जी कुछ प्रेरणा

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ प्रेरणा दे रहे हैं कि हमें अपने हृदय का मिलान करने की सदैव प्रेरणा होनी चाहिए। हमारा जीवन एक दूसरे के हृदय के प्रति महान और पवित्र होना चाहिए। जब हमारे हृदय में एक मानवता का सुन्दर दिग्दर्शन होता है, हमारी मानवता एक सुन्दरता में परिणत करती रहती है।

78-92-दीपावली

गुरुदेव का क्रोध से जीवन

जब मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा दृष्टिपात करता रहता हूँ, तो हे मानव! मानव इस प्रकार का भी बन जाता है। अभिमान न करो क्रोधित न हो। परन्तु मानव को जो प्रवृत्ति बन जाती है, पूज्यपाद गुरु देव के एक क्रोध के कारण। क्या से क्या दशा बनी। क्रोध के कारण मानव की क्या से क्या दशा हो जाती है। एक महान

प्रतिमा मानव के समीप होनी चाहिए। व्याकुल होना पड़ता है। जब मैं अपने पूज्य गुरु देव को दृष्टिपात करता रहता हूँ। ७८.९२.०४२

730. गुरुदेव से दिव्य वाणी

मैं एक वाक्य और प्रकट करने जा रहा हूँ कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की जो अलौकिकता है, हमारी जो यह वाणी है, जो मृत मण्डल में जा रही है, यह ईश्वरीय देन है, आत्मा की देन है, यह सदैव प्रकाशवान होती रहेगी। आज कोई मानव इसकी शान्त करना चाहे, इसको आज कोई पृथ्वी में आरोपित करना चाहे, तो यह मिट नहीं सकेगी, क्योंकि यह प्रभु की देन है, कर्मों का फल है। आज कर्मों के फल को, प्रारब्ध को मानव नष्ट नहीं कर सकता, मानव का जो प्रारब्ध है, वह अमिट होता है। किसी काल में उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। इसीलिए हे आकाशवाणी के श्रवण करने वाले प्राणियों! मैं एक ही वार्त्ता उच्चारण करने आया हूँ, कि इनका प्रारब्ध बड़ा ही विचित्र है। आज इसको नष्ट करने से प्रारब्ध नष्ट नहीं होता। प्रारब्ध सदैव कर्मों से बना हुआ होता है। कर्म की जो विचारधारा है वह जब तक रहती है जब तक उसका एक-एक अंकुर अन्तःकरण में विराजमान रहता है। ७८.९२.०४२

731. गुरुदेव द्वारा निर्वाचन

मुझे अपने जीवन में प्रभु की अनुपम कृपा से १०७ राजाओं का निर्वाचन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। ७८.९२.०४५

732. गुरुदेव का अध्ययन काल

एक समय जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता था, तो उनके चरणों की धूलि को मस्तिष्क के ऊपर जब मैं अकृत करता, तब पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे। कि संसार में जितना भी मानवीय विज्ञान है, वह मानव के हृदय में है। तो विचारना यह है कि इस मानव के शरीर में मन और प्राण दोनों के मिलान का, दोनों के समन्वय का नाम योग कहलाता है। आज तो मानव योगी बनना चाहता है। वह योगी बनने से पूर्व संसार की जो नाना प्रकार की प्रक्रियाएं हैं, प्रकृति का जो वातावरण है प्रकृति में जो चंचलताओं को अपने हृदय में समाहित करना होगा। मन और प्राण के द्वारा इन्द्रियों के विषय का विरोध करता हुआ, जब मन और प्राण दोनों का समन्वय हो जाता है। तो उस समय मानव योग सिद्ध हो जाता है। वह योगी कहलाता है। इसीलिए योगी जनों के लिए, किसी लोक लोकान्तर का ज्ञान असम्भव नहीं रहता। नाना प्रकार के सौर मण्डल का क्या जितना भी प्रकृतिवाद है, उसके ऊपर वह अधिकार कर लेता है, प्रकृति को वश में कर लेता है।

गुरुदेव द्वारा पञ्चाङ्ग

मुझे स्मरण आता रहता है जिस समय यौगिक क्षेत्र में जाने का हमने प्रयास किया, तो पूज्यपाद गुरुदेव ६-६ माह तक नाना के वृक्षों का पञ्चाङ्ग पान कराते रहते थे। जैसे बटवृक्ष है, पीपल वृक्ष है, स्वाति वृक्ष है, शनि वृक्ष है। इनके पञ्चाङ्ग को पान कराते रहते थे। तो इन्द्रियां वैसे ही शोधन होती हैं। जब इस प्रकार का तप किया जाता है। इस प्रकार का अध्ययन किया जाता है। ७८.९२.०३९

733. गुरुदेव का जीवन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यज्ञ के सम्बन्ध में नाना विचार दिए हैं, क्योंकि इनका यज्ञों का बहुत विषय रहा है। कई प्रकार के यज्ञों के विषयों को वे जानते रहते हैं। बहुत अनुसन्धान किया है। मुझे स्मरण है कि इन्होंने यज्ञ कराते हुए जीवन मुक्त होने तक प्राणियों को अकृत किया है। ७८.९२.०३९

734. गुरुदेव के आश्रम में

यह हमारा लाखों वर्षों का अनुभव रहा है। लाखों वर्षों से इस पर बड़ा अनुसन्धान करते रहे हैं। आज तो अपने आपत्तिकाल के कारण कुछ नहीं कहा जाता है, न इस की परिस्थिति को जान पाते हैं, परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरूदेव यह कहा करते थे, कि उच्चारण न करने से कुछ करना बहुत ही सुन्दर है। वह समय कितना भव्य और महान था, जिस समय में मध्य रात्रि होती, उस समय अपने अन्तःकरण के प्रकाश से साधारण अक्षरों का बोधिक किया जाता था। जो मानव हृदय की गति जान लेता है, वह अन्तरिक्ष में भी जा सकता है। जिस हृदय से दिव्य आत्मा आपस में अपना समन्वय करती हैं, आपस में उनका सत्संग होता है। उसको दिव्य हृदय कहा जाता है

मन और प्राण का मण्डल सूक्ष्म जो इन्द्रियों का स्वाभविक चेतना है, उस चेतना का सम्बन्ध दिव्य चेतना से होता हुआ, उन धाराओं में दिव्य आत्मा कटिबध हो करके, वही एक आसन स्थित करके अपना सत्संग अपना ब्रह्म विचार, आत्मविचार, सर्वज्ञ किया करते हैं।

आज के समाज में इस प्रकार की गति होती रहती है, नृत्य होता रहता है।

735. हृदय में गतियाँ

मैं अपने प्यारे ऋषि से कहा करता हंकि संसार में जब हृदय की गतियों को नहीं जानते, हृदय में एक हजार पांच सौ बावन तरंगों का जन्म होता है। वह जो हृदय में जन्म होता है उसमें लगभग 84 प्रकार की योग तरंगों का जन्म होता है जिससे साधक योग की प्रणालियों में जान करके उन हृदय की को 1, 552 तरंगों जानने वाला बनता है। वह जो तरंगें हैं, उनमें से एक-एक तरंग में से 72-72 धाराओं का जन्म होता है, उन धाराओं का सम्बन्ध दिव्य शरीरों से होता है, उन्हीं धाराओं के समूह का नाम दिव्य शरीर माना गया है। यह जो योग का विषय है, यह एक भयंकर वन है, उन धाराओं में सतोगुणी धारायें लोक लोकान्तरिक धारायें, विमुख धारायें, कितनी ही प्रकार की धारायें होती हैं। उनकी कितनी मन की धारायें हैं कितनी प्राण की धारायें हैं। अग्नि में भी लगभग 1, 552 तरंगों का जन्म होता है इसी प्रकार इतनी तरंगें वाणी में होती हैं और एक-एक तरंग में से 72-72 तरंगों का जन्म होता है, वह जो वाणी की 72वीं तरंग होती है वह वाणी का एक वैश्य रूप होता है, जहाँ उस वाणी से दिव्य आत्मा मिलान करती है।

736. गुरुदेव का कर्म और दिव्य जीवन

मैं यह स्मरण कराता हूँ पूज्यपाद गुरुदेव तो जानते ही हैं। परन्तु मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ वो समय था, जब ऐसे-ऐसे याग होते थे। पुत्रेष्टि याग होते, वृष्टि याग होते अग्निष्टोम याग होते, वाजपेयी याग होते। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को कजली वनों में से, जहाँ सिंह अपनी ध्वनियाँ करते रहते हों, गज अपनी ध्वनियाँ करते रहते हों, कजली वनों से ला-ला करके ब्रह्मचारी के द्वारा यागों की रचना होती रहती थी। परन्तु आधुनिक काल का जब मुझे पूज्यपाद गुरुदेव का वह जीवन वर्तमान और पुरातन काल का जीवन स्मरण आता है, तो मैं प्रभु को ही धन्यवाद क्या? प्रभु की कृतिका का वर्णन करने लगता हूँ। प्रभु! तू अनुपम है। तेरी महिमा कैसी विचित्र है? तू मानव को कहीं का कहीं पहुंचा देता है कर्म की आभा के ऊपर।

737. उपाधियाँ

जैसे हमारे यहाँ इन्द्र नाम उपाधि है 'शिव नाम भी उपाधि है, ब्रह्म नाम भी उपाधि मानी गई हैं विष्णु भी उपाधि है और ऋषियों में वशिष्ठ भी उपाधि है और जमदग्निं भी एक उपाधि है, अत्रि भी एक उपाधि मानी गई है, हमारे यहाँ ऋषि-मनि जब अपनी लेखनियाँ करना प्रारम्भ करते हैं, तो वाणी को अत्रि कहते हैं, यह एक उपाधि से अलंकृत है अत्रि उसे कहा जाता है, जो अति अपनी वाणी का उपयोग करके और वह सिद्धान्तों से अपने वाक्यों को उदगीत रूप से गाता है, तो साधक जब अपनी साधना में प्रविष्ट होता है और वह साधना करने लगता है और वह चित्त मण्डल को दृष्टिपात करता है, तो यह जो बाह्य जगत है, बाह्य चित्त है वह प्रभु का चित्त है, यह आन्तरिक जगत एक आत्मा का चित्त माना गया है। यह आत्मा के क्षेत्र में आत्मतत्व में रत होता रहा है। उस दूसरे क्षेत्र में क्षेत्रित बना हुआ है। क्षेत्रज्ञ वह कहलाता है जिसके ऊपर ऋषि मुनियों ने टिप्पणियां की है।

तो विचार विनिमय हैं कि यह चित्त का मण्डल, यह जो बाह्य चित्त मण्डल है, इसमें मैं उद्गीत गा रहा था कि जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागता है, तो यह चित्त के मण्डल में अपने सूक्ष्म शरीर को लेकर के गमन करता है, चित्त के मण्डल को लेकर के यह गमन करता है सूक्ष्म शरीर। तो यह सूक्ष्म शरीर वाला जो आत्मा है वह ऐसे वायु मण्डल में चला जाता है जहाँ 'इन्द्र' नाम की एक वायु है एक 'मृतिका' नाम की वायु है एक 'ऋधिप' नाम की वायु है और एक 'स्वेता' नाम की वायु है और इन वायु में सूक्ष्म शरीर का मन्थन होता है और मन्थन होकर के प्रभु के नियम के अनुसार जिस जन्म को त्याग कर के आया है, जिस स्थूल शरीर को, उस स्थूल शरीर में जितनी स्मरण शक्ति है, वही स्मरण शक्ति चित्त के आन्तरिक जगत में समाहित हो जाती है और बाह्य जगत में स्मरण से शून्य हो जाता है। वह स्मरण शक्ति उसकी ऐसे क्षेत्र में चित्त मण्डल में चली जाती है और पुनः वह अनुशासन में रह कर के चित्त की वृत्तियों का निरोध करता हुआ साधना करता है। उसका अहंकार वायुमण्डल में समाहित हो जाता है। खेचरी मुद्रा से जल को अपने में प्राणापान के द्वारा अपने में सिंचन करता है। तो उन अनुष्ठानों से वे जन्म जन्मान्तरों के संस्कार उसके रूप में आ जाते हैं। प्रायः मैं इस जगत में जाना नहीं चाहता। यह बड़ा विशाल जगत है

738. दिव्य हृदय

मैं तो यह कहा करता हूँ, कि जो मानव यह जान लेता है, कि यह जो हृदय है? इसकी जो गति है, वह अन्तरिक्ष में भी जा सकती है। ऐसा भी माना है, कि जिस हृदय से दिव्य आत्मा आपस में अपना समन्वय करती हैं, आपस में उनका सत्संग होता है। उसको दिव्य हृदय कहा जाता है। परन्तु है वह भी मन और प्राण का मण्डल सूक्ष्म जो इन्द्रियों का स्वाभविक चेतना है, उस चेतना का सम्बन्ध दिव्य चेतना से होता हुआ, उन धाराओं में दिव्य आत्मा कटिबध हो करके, वही एक आसन स्थित करके अपना सत्संग अपना ब्रह्म विचार, आत्मविचार, सर्वज्ञ किया करते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रायः यह कहा है कि यह संसार आज मुझे 'प्रभो'! पाखण्डम ब्रह्मे लोकम प्रभा अस्ति सुप्रजा' आज के समाज में इस प्रकार की गति होती रहती है, नृत्य होता रहता है। मैं अपने प्यारे ऋषि से कहा करता हूं।

739. कजली वनों में गुरुदेव

यहाँ से कुछ दूरी पर कजली वनों में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भारद्वाज मुनि की चर्चा करते रहते हैं। भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला जो उनका विज्ञान सूर्य में गति करना, मंगल में गति करना, बुध में गति करना, नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में गतियाँ होती रहती थीं। वह भी यहाँ से दूरी नहीं। उन कजली वनों में तपस्या की और विज्ञान की एक भूमिका बनती रहती थी।

मैं आज पुनः से पूज्यपाद गुरुदेव को इतने समय के पश्चात कुछ वाक्यों का परिचय दे रहा हूँ। जिनको ऋषि-मुनियों को लाखों लाखों वर्ष हो गए हैं। हे पूज्यपाद गुरुदेव! यह स्थली हमारी आकाशवाणी उनका चरित्र उनके चित्र वर्तमान में भी मानव के हृदय में गमन कर रहे हैं। मानव के हृदयों में मानव की पृष्ठभूमियों में उपस्थित हो रहे हैं।

740. गुरुदेव द्वारा अध्ययन

मैं उस यज्ञमान को कहाँ तक इन वाक्यों को प्रगट करता रहूँगा, यह विषय पुत्र बहुत गहन विषय है। जब मैं किसी काल में अध्यापन का कार्य करता रहता था, तो ब्रह्मचारियों को यह अध्ययन कराता रहता था। ब्रह्मचारियों के अध्ययन की शैली इतनी विचित्र रही है, इतनी आभा में रही है कि उसको निर्णय करना यह असुत कहलाया जाता है।

741. गुरुदेव को याग बोध

गुरुदेव बहत्तर यागों का कर्म-काण्ड जानते रहते थे।

742. मानव का श्वांस

मानव जब श्वास लेता है, तो श्वास के साथ में उस मानव का आकार गति बन जाता है। इसमें लगभग दो खरब परमाणु होते हैं और उनमें एक-एक परमाणु के साथ-साथ में करोड़ों करोड़ों परमाणु होते हैं। कैसा विचित्र परमात्मा का निर्माण है। जब एक-एक बिन्दु मानव का जाता है, तो जैसा आकार है उसी क्षेत्र में वह

परमाणु रहते हैं। उतने ही आकार का चित्र ले करके अन्तरिक्ष में गति करते हैं। ०३.०३.१९७६
एक समय तुमने मुझे मुहम्मद और ईसा की चर्चा प्रकट कराई और तुमने वर्णन किया कि ईसा आयुर्वेद के सिद्धान्त को लेकर चला, आयुर्वेद से चिकित्सा करता हुआ ब्रह्मचर्य का पालन करता उनमें कोई सूक्ष्मता हो सकती है परन्तु वह आगे मुहम्मद के विषय में तुमने एक चर्चा का निर्णय की, कि जहाँ उनकी जन्मभूमि थी वहाँ अप्रिय वस्तु को पान करना प्रत्येक गृह में व्रजो के देवालय, द्रव्य के बदले अधिक द्रव्य लेना आदि, उन सबका एक आदेश देने वाला यह जो व्यक्ति हुआ, वह कोई न कोई वेद के अंग को लेकर चला। यह हो सकता है कि राष्ट्रवाद में उनकी प्रवृत्ति अधिक रही, परन्तु आगे उनके मानने वाले रूढ़िवाद में चले जाओ, उसमें वेद का कोई दोष नहीं।
इसी प्रकार महात्मा महावीर की चर्चा प्रकट की 'अहिंसा परमोधर्मः' का नाद लेकर चले, तो यह वेद में आती हैं, अब रही यह बात कि आगे चलकर उनके मानने वाले रुढ़िवाद में चले गये तो वेद का कोई दोष नहीं और न वेद के किसी अंग का कोई दोष है। इसी प्रकार आगे तुमने वर्णन कराया, कि महात्मा बुद्ध भी अहिंसा परमोधर्मः को लेकर चले, उनके जीवन में, उनकी लेखनी में कोई सूक्ष्मता हो सकती है परन्तु वेद उनका जो संकेत था, वह वेद का था और वेद के संकेत को लेकर चले।

743. महानन्द जी व उनके प्रश्न

आज का हमारा मुख्य उद्देश्य देवताओं के सम्बन्ध में था, हमारा यह वाक्य अभी पूर्ण तो नहीं हुआ। यह मूर्ख महानन्द पता नहीं कहाँ से आ जाता है, इनके प्रश्नों की पोथी की पोथी बन जाती है, उन पोथियों को उच्चारण करना नहीं चाहते, देवताओं का कुछ विवरण रह गया है, समय मिलेगा तो द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ काल में प्रकट करेंगे। २८.०७.१९६३

744. गुरुदेव के व्याख्यान पूर्व जीवन

पूज्य महानन्द जीः धन्यवाद! आज हमारा हृदय प्रातः मना रहा है, कि आज हमारे गुरुजी का आदेश हुआ। जिज्ञासु या शिष्य का पूर्व जन्मों का संस्कार होता है, जो ऐसे महान गुरु हमारे समक्ष, अपने महान विचारों को नियुक्त किया करते हैं और हमारी आत्मा तृप्त किया करते है। आज गुरुजी का आदेश मिला। हम इस योग्य तो नहीं हैं, कि इस सूर्य के समक्ष आ करके हम अपना प्रकाश दें। इनके समक्ष हम अपने क्या विचार प्रकट कर सकते हैं, परन्तु आज हृदय बड़ा गद् गद् हो रहा है, कि जो आज गुरुजी का ऐसा आदेश मिला और ऐसा प्रतीत हो रहा हे, जैसे हमारा पूर्वजन्म होने वाला हो। जब गुरु का ऐसा आदेश मिला हो, तो हमारा कर्तव्य है कि हम अपना वाक्य अवश्य प्रकट करें। हमारा उच्चारण करना क्या है? हम नित्यप्रति मृतमण्डल का भ्रमण किया करते हैं, अन्तरिक्ष में रमण करते हैं। गुरु जी के समक्ष जब आना चाहते हैं, तो उस समय अन्तरिक्ष में वायु के समक्ष बहुत से विद्वत समाज को आकर्षित कर लेते है। आज यह एक आश्चर्यजनक वाक्य हो रहा है। यह कोई नवीन वाक्य नहीं, यह तो हमारे गुरु जी का न प्रति पूर्वजन्म का कौन सा अभागा समय बन गया है, जो विद्वत समाज को ऐसा होना पड़ रहा है। यदि वह पूर्व को भान्ति विद्वत समाज में होते या वह विद्वत समाज इनका होता, तो आज इनकी यह स्थिति ही क्यों होती। यह बड़ा खेद का वाक्य है। वास्तव में हमारे वाक्य जहाँ मृतमण्डल में जा रहे हैं, वहाँ के मानव के लिए यह बड़ा आश्चर्यजनक एक वाक्य बन रहा है। परन्तु कोई आश्चर्य नहीं है। रही यह वार्त्ता, कि आधुनिक काल के व्यक्ति, विद्वत समाज, कहता है कि यह कोई वाक्य नहीं, परन्तु यह महान हमारे गुरु जी का मनोहर शरीर है, जिसके द्वारा हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, यह बालक जो अपनी सुषुप्ति अवस्था में वेदों का व्याख्यान दे रहा है, यह वेदों का वाक्य नहीं? परन्तु जब हम किसी विद्वान से प्रश्न करते हैं, तो प्रश्न के उत्तर में उसकी मधुवाणी शान्त हो जाएगी।
तो हमारे गुरुजी के पिता विभाण्डक ऋषि ने यह सोचा कि मैं अपने महान बालक को ब्रह्मचारी बनाऊंगा। उसी बालक की आत्मा का आज मृतमण्डल में प्रसार हो रहा है। जिसे मुनिवरों! १७८ वर्ष तक देवकन्या का ज्ञान भी नहीं था, आज यह बालक बना बैठा है। क्या करें, आज का समाज तो कुछ नहीं। आज का संसार तो बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत हो रहा है। हमारा भाग्य है, दुर्भाग्य है, कि ऐसे काल में ऐसी वार्त्ताएं, अपवाक्य प्रकट हो रहा है। हम कहाँ तक इस वाक्य को प्रकट करें। गुरुजी के समक्ष हम उच्चारण करने के तो योग्य नहीं। हम ११२७ संहिताओं का प्रसार कर रहे थे। आज हमने संसार का बहुत सा भ्रमण किया और आधुनिक वेदमन्त्रों को चारों वेदों में भगवन्! लगभग बीस हजार मन्त्र हैं।
पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा!

745. प्रवचनों में गुरुदेव

पूज्य महानन्द जीः ओ३म मना वर्णं ब्रह्मणाः देवं दधि ब्रह्मणा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, ऐसी विचित्र गाथाएं वर्णन की हैं, जिसको हम विद्यालय में अध्ययन करते थे, इनके चरणों में विद्यमान हो करके जब अध्ययन की प्रतिक्रियाएं चलती रहती थी, उस समय यह उद्गीत रूप में गाते रहते थे, इस प्रकार की विचारधाराएं, ऋषि-मुनियों का अध्ययन ये वर्णन करते रहते थे। परन्तु आज बहुत समय के पश्चात इसको इन्होंने पुनः से उच्चारण किया है, हमारा अन्तर्हृदय तो प्रशंसनीय हो रहा है, और हम अपने में यह अनुभव कर रहे थे, जैसे हम त्रेता के काल मे या किसी अनन्य काल में हम पूज्यपाद गुरुदेव के उस काल की, उस काल में ही हम विद्यमान हैं आधुनिक काल में जहाँ यह हमारा आकाशवाणी हमारे यह उदगार जा रहे हैं ऐसे उदगम ऐसा समय ऐसा वायुमण्डल है इस वायुमण्डल में दूषित आरोपण हो रहा है, दूषिता छा रही है। मैं केवल विशेष चर्चा नही पूज्यपाद गुरुदेव ने बड़े अध्ययन की चर्चा की, आज मैं निम्न चर्चाएं करूं या राष्ट्रवाद की चर्चाएं करूं, यह मैं बारम्बार उद्गीत रूप में गाता रहता हूँ। आज मैं केवल यह जो यज्ञमान के जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, मेरी यह मनोकामना रहती है, कि गृह में, सदैव सदुपयोग होता रहे, जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह गृह सौभाग्यशाली है, उस यज्ञमान के लिए मैं सदैव, अपनी सुकामना के साथ, ये विचारता रहता हूँ, कि हमारे यहाँ याग एक ऐसा क्रियाकलाप है, जो द्यौ लोक में जाता है, याग एक ऐसा

शुद्ध, हृदयग्राही क्रियाकलाप है, जो ममतव को धारण न करता हुआ, त्याग और वृत्तियों में गमन कराता रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के इन शब्दों के ऊपर आगे कोई अपना शब्द उद्गीत रूप में गाना नही चाहता हूँ। विचार केवल यह कि आज मेरा हृदय यज्ञमान के साथ रहता है, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, देवतव को प्राप्त होते रहें, तेरे द्रव्य, साकल्य के द्वारा बन करके, अग्नि उसे द्यौ लोक में पंहुचाने वाली हो क्योंकि शुद्ध हृदय और तपस्वी और उनका यह साकल्य अग्नि के मुखारबिन्दु में प्रवेश हो करके द्यौ लोक में प्राप्त होता है। आधुनिक जगत एक वाममार्ग का काल है वाममार्ग के काल में मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि वाममार्ग उसे कहते हैं, जो उल्टे मार्ग पर गमन करता है, जो सुरा में अपनी रसना के आनन्द में लगा हुआ है, वह द्रव्य का दुरूपयोग कर रहा है। रसना के आँगन में उस काल को हमारे यहाँ राष्ट्र और प्रजा दोनो ही एक सूत्र में आ जाएं। उस काल को वाममार्ग कहते हैं। परन्तु देवयान का मार्ग क्या है? जो याग करते हैं, अग्नि होत्र करते हैं, अध्ययन करते है, दर्शनों का प्रभु का चिन्तन करते हैं, और अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हैं। वह देवयान का एक मार्ग हैं, उसे अपनाते रहें, यह मेरी सदैव कामना है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, यह है आज का हमारा विचार मैं विशेष चर्चा नही प्रगट करूंगा, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज बड़े गम्भीर अपने विचार दिए हैं, जब यह विचार देते थे, बाल्यकाल में जब हम अध्ययन करते रहते थे, लाखों वर्षों पूर्व जब यह विचार देते थे, उन विचारों को पूर्व से उद्गीत रूप में गा रहे थे, बड़ा अध्ययन क्रियात्मक विचार इन्हें प्रगट किया आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन।

746. प्रवचनों में गुरुदेव

इस आदेश को पाकर महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि इससे बढकर भी एक पदार्थ है, और वह है वाणी। आज तुम वाणी की उपासना करो, यथार्थ उच्चारण करो, जो भी वाक्य बोलो, वह यथार्थ बोलो। यथार्थ उच्चारण करने से वाणी में ओज और तेज आ जाएगा। यह वाणी, वह पदार्थ है कि महर्षि श्रृङ्गी ऋषि महाराज ने ८४ वर्ष तक मिथ्या का कोई भी वाक्य उच्चारण नहीं किया, जो कहा करते थे, वहीं यथार्थ हुआ करता था। यदि किसी मनुष्य को यह कह दिया कि मृत्यु को प्राप्त हो जा, तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। हे नारद! अनेक ऋषियों का ऐसा प्रमाण मिलता है। महर्षि अत्रि मुनि का एक आदेश मिला। महर्षि अत्रि मुनि ने अपने जीवन में १२० वर्ष तक सत्यता का पालन करके देखा। यदि वह मार्ग में उड़ते हुए पक्षी को यह कहते कि यह पक्षी मेरे द्वार पर आ जाए, तो वह उड़कर उनके द्वार आ जाता था। हे नारद! यह वाणी बड़ा ऊँचा पदार्थ है, इससे मिथ्या उच्चारण न करो। तुम्हारी वाणी में ओज और तेज उत्पन्न हो जाएगा। यह वाणी वह पदार्थ है, जो तुम्हें परमात्मा से मेल करा देगी। यह वह अमूल्य पदार्थ है, जो हमें समुद्र रूपी सागर से पार ले जाती है। आज तुम वाणी की उपासना करो, वाणी से यथार्थ उच्चारण करो।

747. प्रवचनों में गुरुदेव

कल हम किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देंगे।

पूज्य महानन्द जीः हास्य-- वह तो आपको देना ही नहीं चाहिए ! गुरु जी कोई ऐसा गम्भीर वाक्य आपके मुखारविन्द से न हो जाएं **पूज्यपाद गुरुदेवः** तो बेटा यदि तुम प्रश्न न करोगे तो गम्भीर वाक्य न होंगे !

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी हमें तो विश्वास नहीं, कि आपके मुखारबिन्द से गम्भीर विषय हो सकता है, जब तक हम प्रश्न न करें।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा न होगा तो देखा जाएगा। !

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन आप तो अपार हैं। जब आपसे प्रश्न करते हैं !, तो उत्तर देना भी आपका कर्त्तव्य हो जाता है, वह तो हम आपकी नम्रता को जानते हैं।